सान्निध्य

पूज्य बाबा श्री ए. नागराज जी

(1920-2016)

से प्राप्त प्रेरणा व मार्गदर्शन के संस्मरण

प्रकाशक
अशोक गोपाला भाई
व
सुरेंद्र पाल भाई

संस्करण
प्रथम (वर्ष 2020)

संकलन
सुरेन्द्र पाल भाई, शीला गोपाला बहन, राकेश अग्रवाल भाई,
सुप्रिया बैद बहन व उम्मेद नहाटा भाई

पेज सेटिंग व लेयआऊट
अशोक गोपाला भाई

भूमिः स्वर्गताम् यातु, मनुष्यो यातु देवताम्।
धर्मो सफलताम् यातु, नित्यम् यातु शुभोदयम्।।

उपरोक्त सर्वशुभ कामना श्रद्धेय बाबा जी (श्री ए. नागराज जी) द्वारा अनुभव ज्ञान में जागृत होने के उपरान्त उदघटित किया। इस शुभकामना को साकार करने की बाबा जी की यात्रा में अनेक लोग उनके संपर्क में आये और उनसे जुड़े। ऐसे कुछ साथियों द्वारा, बाबाजी के साथ बिताया समय, उनसे मिली प्रेरणा व मार्गदर्शन के छोटे-बड़े संस्मरणों का एक संकलन इस पुस्तक के रूप में प्रस्तुत है।

प्राक्कथन

सान्निध्य नाम से इस संकलन रूपी पुस्तक के इलेक्ट्रोनिक प्रारूप को आज पूज्य बाबा जी (श्री अग्रहार नागराज जी) के सौवें जन्मदिवस 14 जनवरी 2020 के दिन आप सबको समर्पित करते हुए संकलन टीम को हर्ष महसूस हो रहा है।

आपको स्मरण होगा ही कि 5 मार्च, 2016 को श्रद्धेय अग्रहर नागराज जी के देहावसान के उपरांत से ही कुछ मित्रों के मध्य यह संवाद बना रहा कि आदरणीय बाबाजी के जन्म शताब्दी वर्ष उत्सवों के दौरान एक पुस्तक का भी विमोचन हो। जिसमें श्रद्धेय बाबाजी से जुड़े साथियों के संस्मरण का संकलन हो जिससे पाठक जागृति के लिए प्रेरित हो पायें। यों तो श्रद्धेय नागराज जी द्वारा प्रतिपादित मध्यस्थ दर्शन ही नहीं बल्कि उनकी सम्पूर्ण शरीर यात्रा-जो अति संक्षेप में अपनी जिज्ञासा के प्रति इमानदारी, साधना के प्रति निष्ठा व सर्वशुभ के लिए समर्पण के इर्द गिर्द है- ही मानव जाति के लिए प्रेरणा का स्रोत है, किन्तु उस जागृत मानव के सान्निध्य में आए जिज्ञासुओं में स्वीकार हुए प्रत्यक्ष प्रभाव भी आने वाली पीढ़ियों के लिए महत्वपूर्ण प्रेरणा स्रोत रूप में स्वीकार हुआ।

इसी क्रम में, सर्वप्रथम इस संस्मारिका की जिम्मेदारी अजय दायमा भाई जी व उम्मेद नाहटा भाई जी ने ली और बहुत ही उत्साह के साथ उन्होंने इस कार्य का शुभारंभ किया। संकलन के प्रथम चरण में सुप्रिया बैद दीदीजी का महत्वपूर्ण योगदान रहा जिससे वर्तमान स्वरुप तक पहुँच पाए। संजय गुप्ता भाई जी का भी सहयोग रहा। कुछ समय पश्चात, नियति क्रम में यह जिम्मेदारी सुरेंद्र पाल भाई जी के पास आई। जिसे सुरेंद्र पाल भाई जी, अशोक गोपाला भाई जी, शीला गोपाला दीदी जी व राकेश अग्रवाल भाई जी सबने साथ मिलकर मुकाम तक पहुँचाया है। इस प्रकार अनेक साथियों के योगदान से यह कार्य संपन्न हो पाया है, इन सभी का बहुत-बहुत आभार। अत्यधिक आभार उन सभी भाइयों व बहनों का जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर अपने संस्मरण को लिख इस पुस्तक हेतु दिया। जिससे यह प्रयास संभव व सफल हो पाया।

इस पुस्तक में प्रस्तुत विचार व भाव प्रस्तुतकर्ता (लेखक) के व्यक्तिगत ही हैं और संकलन टीम ने कई स्थानों में सहमत न होते हुए भी उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया है। हमने प्रधानत: तथ्यों, भाषा, प्रस्तुति सज्जा व समन्वय पर ही ध्यान दिया है। किन्तु सावधानी के उपरांत भी कुछ त्रुटियाँ संभव है जिनका आप हमें ध्यानाकर्षण करायेंगे, यह अपेक्षा है। इसके लिए तथा जो साथी अभी भी अपना संस्मरण भेजना चाहें, इन इमेल (surendrapal@hotmail.com ; ashokgopala@gmail.com) पर भेज सकते हैं। इनका समावेश अगले अंक में कर लेंगे।

क्योंकि इस संकलन को मुद्रित करने (छापने) में किन्ही कारणवश काफी विलम्ब हो चुका है और साथ ही भविष्य में मुद्रित होने कि संभावना नहीं दिख रही है, संकलन टीम ने इसके इलेक्ट्रोनिक प्रारूप को इंटरनेट पर व्यक्तिगत जिम्मेदारी के आधार पर प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। इस पुस्तक के पीछे किए गए लेखन व संकलन के श्रम के सम्मान हेतु इस निर्णय को हमने लिया है। साथ में अपने ही साथियों के सान्निध्य संस्मरणों को पढ़कर हम सबके चहरों पर मुस्कान आएगी व प्रेरणा प्राप्त होगी, इसी आशा और समस्त शुभकामनाओं के साथ,

संकलन टीम की ओर से

सुरेन्द्र पाल व अशोक गोपाला

अनुक्रमणिका

संस्कार.....4
शारदा शर्मा (अम्बा)

बाबाजी की एक कर्मस्थली - अभ्युदय संस्थान 5
बी. आर. अग्रवाल

प्रथम परिचय.....8
साधन कुमार भट्टाचार्य

प्रबल हस्तक्षेप.....12
सुरेन्द्र पाल

मध्यस्थ दर्शन 15
गणेश बागड़िया

बाबा जी का साथ 17
अशोक गोपाला (सपरिवार)

मार्गदर्शक व संरक्षक.....24
अनीता शाह

सुख का पथ.....27
सुशील कुमार सिंह

पीड़ा से उत्सव की ओर ०००.....29
नीति कोठारी

अध्ययन और अभ्यास.....38
अनामिका वरु

बाबाजी के साथ हुये संवाद के कुछ बिन्दु 40
कल्पेश वरु

प्रेरणा 41
हरजिंदर सिंह (सोनू)

कुशल नाविक.....43
अनुराग सहाय

एक महामानव को श्रद्धांजलि 45
पवनकुमार गुप्त

प्रभाव से प्रेरणा तक.....49
सुप्रिया बैद

प्रतीक से पार 51
फ़ाख़रा सिद्दीकी
अग्रहार नागराज "एक सम्पूर्ण मानव".....52
पवन कुमार
गागर में सागर 57
डॉ॰ बी॰ एल॰ दायमा
बाबाजी और नागपुर – कुछ संस्मरण। 59
हेमंत मोहरीर एवं परिवार
श्री ए.नागराज जी के दर्शन व उनसे प्राप्त प्रेरणा व कार्यक्रम.....62
केशव साहू
तत्सान्निध्य 65
राहुल अग्रवाल
रुलाई 68
विवेक चतुर्वेदी
बाबाजी और मेरा जीवन.....69
नंदकुमार
अनुमति, मार्ग दर्शन और आशीर्वाद 71
संकेत ठाकुर
मध्यस्थ दर्शन- मेरी नजर में.....75
श्याम कुमार
श्रद्धाँजलि स्वरुप संस्मरण 76
रामजी भाई
दिल में बसे बाबाजी की कुछ यादें.....77
संजीव जैन
विश्वास स्रोत.....79
शालू अग्रवाल
दिव्य मानव का संग 80
अरुण सिद्धू
दिव्य मानव - श्रध्देय ए. नागराज जी (बाबा) 81
डॉ. इस्माइल टाक
बाबाजी के साथ बिताए क्षणों की स्मृति.....83
कुमार संभव

मानव चेतना की चमक 84
विचित्र गंगवार
'जीवन' को समझा क्या? 87
अमीर उल हक
बाबा 92
अनुराधा
ज़िम्मेदारी का अहसास 94
डा० ज़िया उल बद्र
बाबाजी से मुलाकात और प्रभाव 96
रेणु भाटिया
जागृति के प्रणेता 98
दिनेश राठोड़
कहाँ रहोगी? 100
निशा संगल
बाबाजी का सानिध्य 102
प्रशांत एम.येवले
हर व्यक्ति महत्वपूर्ण है 103
सुषमा अग्रवाल
बाबा जी के साथ के संस्मरण 105
अशोक सिरोही
The Minimum Beautiful 107
Shriram Narasimhan
A New Reference for Human Thinking 114
Rakesh Gupta
Shraddhanjali to Great Soul 117
Ramancharla Pradeep Kumar
Encountering a Master 120
Gowri Srihari
RAISE ME UP TO ALL THAT I CAN EVER BE 125
Himanshu Dugar
My time with Baba's earthly life 130
Laj Utreja

संस्कार

पूज्य पिताजी के साथ मैं उनके संरक्षण में साठ वर्ष रही। इन साठ वर्षों में उनसे मुझे काफ़ी प्रेरणा मिली। अब उनके सशरीर न रहने पर मुझे उनकी काफ़ी कमी लग रही है। 5-6 वर्ष की आयु से मुझे स्मरण है कि मैं पिताजी को साधना व ध्यान करते देखती थी। माताजी भी अपने अनुसार थोड़ी -बहुत पूजा -अर्चना करती रहती थीं। दिनचर्या में कोई काम तो था नहीं। भोजन की चिंता थी नहीं। सप्ताह में दो-तीन दिन पिताजी व माताजी हम तीनों भाई-बहन को लेकर जंगल चले जाते थे। वहीँ जो फल व कंद मिल गया, उसे ही खा लेते थे। शाम को वापस आते समय पिताजी व माताजी कुछ लकड़ी लेकर आते थे। जंगल में वनौषधियों की भी पहचान हमें कराते थे।

सन् पचास में जब पिताजी व माताजी यहाँ आए तब स्थानीय जन काफ़ी कम थे; अधिकांश पुजारी परिवार के लोग थे। पिताजी उन्हें अभिभावक मानते थे तथा उनका सम्मान करते थे। हम भी थोड़ा बड़े होने के बाद उनको परिवार के रूप में स्वीकारते रहे। हम जैसे-जैसे बड़े होते गए हमारी आवश्यकताएं बढ़ी नहीं, बल्कि यथावत सामान्य रहीं। माताजी सामान्य भोजन बनाती थीं, कभी चावल बना लीं, कभी रोटी और कभी दलिया। तेल घी का प्रचलन ज़्यादा था भी नहीं। यहाँ किसी के पास रहता भी नहीं था। जैसे जैसे हम बड़े होते गए, मुझे यह लगा कि हमारे यहाँ कोई भी दिखावा या रहस्यता नहीं था। जो भी भोजन बना है, यदि कोई अतिथि आ गए तो माताजी थोड़ा भी परेशान नहीं होती थीं, जो बना रहता था उसे ही खिला देती थीं। यह सब हमें बहुत अच्छा लगता रहता था। पिताजी ने हमें यहाँ के स्थानीय स्कूल में पढ़ाया, स्वयं भी हम तीनों को पढ़ाते थे।

संयम के बाद पिताजी ने मध्यस्थ दर्शन को समझाने व लिखने का कार्य प्रारम्भ किया। घर में काफ़ी लोगों का आना शुरू हुआ। पूरे समय सिर्फ दर्शन की ही चर्चा होती थी। पिताजी स्वयं प्रातः चार बजे उठकर लिखते थे। कभी मुझसे भी लिखवाते थे। कभी घर में जो आते थे दर्शन समझने, उनसे भी लिखवाते थे। माताजी व पिताजी घोर श्रम व सेवा करते थे; मुझे यह बहुत ही अच्छा लगा। मुझे भी श्रम करना व सेवा करना बहुत ही अच्छा लगता है। मुझे तो स्मरण ही नहीं है कि माताजी-पिताजी के साथ हम कभी सूर्योदय के बाद सोकर उठे हों।

जीविकोपार्जन के लिए एक छोटा सा खेत था, जो अभी भी है। उसमें पिताजी कृषि करते थे। हमें भी खेत में लेकर जाते थे। पिताजी खेत में स्वयं काफ़ी मेहनत करते थे जो हमारे लिए काफ़ी प्रेरणादायी रहा। वर्तमान में परिवार में जो सौहार्द्र और समृद्धि है उसके मूल में पिताजी व माताजी का घोर श्रम है। हम तीन भाई व एक बहन हैं। मैनें विवाह नहीं किया, मेरी तीन भाभियाँ तीन राज्य की हैं।

मुझे ऐसा लगता है कि अप्रत्यक्ष रूप में पूज्य पिताजी का संरक्षण रहेगा ही। मध्यस्थ दर्शन मेरे लिए प्रेरणादायी है। मैं पूरे वांगमय का अध्ययन करुँगी व इसी के अनुसार जीने का प्रयास कर रही हूँ।

शारदा शर्मा (अम्बा)
श्री भजनाश्रम, अमरकंटक

बाबाजी की एक कर्मस्थली - अभ्युदय संस्थान

पेशे से मैं इंजीनियर हूँ, किन्तु मेरी रूचि इंजीनियरिंग से ज्यादा मानव जाति के स्वभाव में, विचारों में सार्थक बदलाव होने में है। सन् 1990 में मेरा रायपुर आना हुआ, रायपुर आकर सर्वप्रथम मेरी मुलाकात गायत्री परिवार के एक कार्यक्रम में अंजनी भाई से हुई। अंजनी भाई बेहद ही नेक, सेवाभावी, उदार व्यक्तित्व के धनी थे। अधीरता उनमें अधिक थी जो कि कभी उनके सद्गुण के रूप में दिखती थी, कभी मुसीबत भी लगती थी। खैर, अंजनी भाई का पूरा परिवार ही अत्यधिक उदार, सेवाभावी और स्नेही है। अंजनी भाई के परिवार में उनके माता-पिता तथा छोटे भाई रंजीत एवम् राजा तथा तीनों भाइयों की पत्नियाँ मीना, अलका एवम् मधु यथासंभव सक्रिय रूप से भागीदारी करती रही हैं। धीरे-धीरे मैं और मेरा परिवार अंजनी भाई के परिवार के साथ इतना घुल-मिल गये कि अन्य लोगों को सगे भाई ही जान पड़ते थे। हमें लगता था विश्व के जनमानस में सकारात्मक सुधार के लिए गायत्री परिवार के कार्यक्रम अत्यन्त सहायक हैं। इस तरह हम लोग तन-मन-धन से कई वर्षों तक लगे रहे।

इसी बीच सोम भाई-निताशा भाभी से हम लोगों की मुलाकात हुई। सोम भाई भी आदिवासियों के बीच कुछ करने की प्रबल चाह लेकर दिल्ली से अपनी कम्प्यूटर साइंस की नौकरी छोड़कर बस्तर जाने के लिए आये थे। मूल में हम सबके लक्ष्य एक ही थे (इसलिए दोस्ती हुई, फिर दोस्ती से परिवार का हिस्सा जैसे बन गये।

गायत्री परिवार के कार्यक्रमों में हमारी जोर-शोर से भागीदारी चल ही रही थी। इन्हीं दिनों डॉ. संकेत ठाकुर से हम लोगों का मिलना हुआ। उनका लक्ष्य देश में किसानों की दशा में सुधार लाना था जिसके लिए उन्होंने कई नौकरियों को नकार दिया या छोड़ दिया था। संकेत भाई का साथ मिलने से हमारे कार्यक्रम में किसानों को खेती तथा कुटीर उद्योगों के माध्यम से आत्मनिर्भर बनाना और जुड़ गया। संकेत भाई के साथ एग्रीकल्चर कॉलेज तथा इंजीनियरिंग कॉलेज के कुछ मित्र भी हमारे कार्यक्रम में भागीदारी करने लगे। किसानों के कार्यक्रमों के परिप्रेक्ष्य में हमारा केन्द्र आंवरी होता था (जहाँ पर अर्चना दीदी और उनके सहयोगी अत्यन्त स्नेहपूर्वक स्वागतभाव से सभी की खातिरदारी करते थे)। सभी भाई-बहन अत्यंत परिश्रमी तथा सेवाभावी हैं।

सन् 1996 के दिनों की बात है- अपने बारे में मुझे लगने लगा कि हम लोगों में जिस पवित्र विचारों और स्वभावों की स्थापना का प्रयास कर रहे हैं उतने तो अभी हमारे में भी नहीं हैं। इससे मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि अभी तक मेरे जो प्रयास थे, उनकी सीमा यहीं तक है (आगे विकास (आत्मिक) के लिए कुछ और मार्गदर्शन चाहिए। इसी बीच हम लोगों की मुलाकात बाबाजी (श्रद्धेय नागराज, प्रणेता मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद, अमरकंटक) से हुई। बाबाजी से शिविर के बाद की पहली मुलाकात ने हमारी कल्पना की उड़ान, जिसमें हमने जागृति को बहुत हल्के में लिया था, को ज़मीन पर लाया तथा जागृति के राजमार्ग पर चलने का पथ दिखाया और हौंसला भी बढ़ाया। बाबाजी से मिलकर पहली बार सह-अस्तित्व का अर्थ समझ में आया। बाबाजी ने कहा, "जब हमारे विचार में, मन में सह-अस्तित्व होता है तब हम जो भी योजना बनाते हैं, जो भी क्रिया कलाप करते हैं, उसमें सबका ख्याल व पूरकता समायी रहती है।" उससे पहले हमने सुना हुआ था कि संघर्ष से ही आगे बढ़ेंगे, प्रतियोगिता से ही सफल होंगे, आदि। सह-अस्तित्व उसके बिलकुल विपरीत है। पहली बार ज़िंदगी में सब कुछ

घूमता-सा लगा, सब शून्य हो गया। बाबाजी के पास बैठते, तो उनकी अधिकांश बातें हमें समझ में नहीं आती थी (किन्तु इतना भास-आभास होता था कि ये ज्ञानी व्यक्ति हैं। कई बार हमारी आस्थाओं पर बाबाजी के प्रहार भी होते थे, जो असहनीय भी लगते थे (हमारी ये अज्ञानता ही थी)। बाबाजी से मिलने के बाद सन् 1997 में साधन भाई, डॉ. यशपाल सत्यजी, रणसिंह आर्यजी एवं गणेश बागड़ियाजी से मुलाकात हुई। डॉ. यशपाल सत्यजी ने मध्यस्थ दर्शन को बताना शुरू किया था।

हम सब लोगों ने सपरिवार गणेश भाई और रणसिंह भाई के कई जीवन विद्या शिविर रायपुर और आंवरी में किये। जीवन विद्या शिविरों के माध्यम से मध्यस्थ दर्शन को पढ़ना, चर्चा करना और समझने-समझाने का क्रम प्रारंभ हुआ। साप्ताहिक गोष्ठियाँ होती थी। मध्यस्थ दर्शन से अपने विकास की तथा समस्त मानव जाति के कल्याण का रास्ता दिखने लगा तथा विश्वास हुआ। परस्परता में तथा बाबाजी के साथ चर्चा करने का कोई भी अवसर हम लोग छोड़ते नहीं थे। इसी क्रम में बाबाजी ने मध्यस्थ दर्शन के वांग्मयों को छपाने का दायित्व हम लोगों को सौंपा। बाबाजी द्वारा लिखित वांग्मयों को क्रमशः टाइप कराना, टंकण त्रुटियों को सुधारना तथा विषय वस्तु पर बाबाजी के साथ बैठकर शोध करने का क्रम चलता रहा और क्रमशः सभी वांग्मयों को प्रकाशित किया गया। वांग्मयों के प्रकाशन में बाबाजी के मार्गदर्शन में साधन भाई, सोम भाई, अंजनी भाई और मैंने समय लगाया।

बाबाजी से समझने और वांग्मयों के संबंध में चर्चा के लिए हम लोगों का कई बार अमरकंटक जाना होता रहा। बाबाजी, पूजनीया माताजी, अम्बा दीदी, साधन भाई तथा सभी भाई-भाभी एवम् बच्चों का अतिथियों के प्रति स्वागतभाव, स्नेह एवम् आतिथ्य भाव अद्वितीय है। बाबाजी का परिवार मानव कल्याण के उद्देश्य के लिए एक संस्थान के रूप में ध्वनित होता है।

रायपुर में जीवन विद्या शिविरों के आयोजन के लिए एक संस्थान की आवश्यकता लगने लगी। छत्तीसगढ़ की इस टीम के मुखिया के रूप में आदरणीय राजन महाराज की स्वीकृति रही। उनके नेतृत्व में टीम तथा भाई धीरेन व अनिता शाह के संयुक्त प्रयास से अछोटी ग्राम में अभ्युदय संस्थान की स्थापना के बाद अंजनी भाई एवं मंजीत भाई परिवार सहित रहना प्रारंभ किये। बाबाजी के मार्गदर्शन में अभ्युदय संस्थान की गतिविधियाँ एवम् जीवन विद्या शिविर प्रारंभ हुए। चेतना विकास मूल्य शिक्षा योजना के क्रियान्वयन के उद्देश्य से बाबाजी ने रायपुर में छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री डॉ. रमन सिंहजी, शिक्षा मंत्री श्री बृजमोहन अग्रवालजी एवं तत्कालीन शिक्षा सचिव श्री नंद कुमारजी तथा शासकीय इंजीनियरिंग कॉलेज के प्राचार्य डॉ. श्री राजेश पाठकजी, डॉ. श्री डी. एस. बलजी एवं प्राध्यापक श्री समीर बाजपेयीजी से कई बार अभ्युदय संस्थान में भेंट कर, कार्ययोजना बनाई। इसके फलस्वरूप छत्तीसगढ़ के स्कूल शिक्षा विभाग में कक्षा एक से पाँच तक चेतना विकास मूल्य शिक्षा की पुस्तकों को शिक्षा में शामिल किया गया। स्कूल शिक्षा विभाग के विभिन्न अधिकारियों, प्राचार्यों तथा अध्यापकगणों के जीवन विद्या शिविर तथा अध्ययन शिविर सम्पन्न हुए। इस कार्यक्रम को अभ्युदय संस्थान तथा शिक्षा सचिव श्री नंद कुमार जी ने व्यक्तिगत रुचि लेकर क्रियान्वित किया।

प्रदेश के इंजीनियरिंग कॉलेजों के प्राध्यापकों तथा छात्रों के जीवन विद्या शिविर किये गये। रायपुर का शासकीय इंजीनियरिंग कॉलेज (बाद में एन. आई. टी. रायपुर) में इस कार्यक्रम को काफ़ी सघनता से किया

गया। छात्रों में हुए सार्थक बदलाव की जानकारी तात्कालीन राष्ट्रपति श्री अब्दुल कलाम आज़ाद जी को होने पर उन्होंने रायपुर एन. आई. टी. में आकर छात्रों और प्राध्यापकों से बातचीत की तथा मध्यस्थ दर्शन से प्रभावित होकर बाबाजी तथा अन्य लोगों को राष्ट्रपति भवन आने का निमंत्रण दिया। बाबाजी तथा अन्य दस प्रबोधकगण राष्ट्रपति भवन में राष्ट्रपति जी से मिले तथा मध्यस्थ दर्शन के आधार पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा की संभावनाओं से उन्हें अवगत कराया।

अध्ययन-अध्यापन तथा संस्थान के संचालन में कल्पेश, संदीप, अनुराधा, दीपक, राजेश मानव, सुखचैन भाई ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। श्री योगश-सुवर्णा शास्त्री जो मूलतः महाराष्ट्र के रहने वाले हैं, सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में शहडोल में सक्रिय थे। उन्होंने मध्यस्थ दर्शन के अध्ययन-अध्यापन के क्रम में अछोटी, अभ्युदय संस्थान में रहने का निर्णय लिया। तब से वे संस्थान के कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

संस्थान में निवासरत परिवारों के स्वावलंबन के लिए देशी गायों की (गीर गाय) गौशाला तथा जैविक खेती का कार्य भी हो रहा है (जिसमें श्री अनिल राठौड़ जी एवं परिवार की महती भूमिका है)। संस्थान में हो रहे उत्पादों को लोगों तक पहुँचाने के क्रम में रायपुर में "समृद्धि" का शुभारंभ बाबाजी के मार्गदर्शन में हुआ।

अभ्युदय संस्थान अछोटी में बाबाजी, साधन भाई, अम्बा दीदी का वर्ष में लगभग पाँच से छः बार आना होता रहा। इस संस्थान की प्रत्येक गतिविधि व निर्णयों से बाबाजी अवगत होते रहते थे तथा स्नेहपूर्वक गलतियों को सुधारने हेतु तथा अध्ययन करने हेतु प्रेरित करते रहे। शिविरों के प्रबोधन के लिए संस्थान में देश के विभिन्न स्थानों से प्रबोधक आते रहते हैं। अभी तक संस्थान में कई जीवन विद्या शिविर सम्पन्न हो चुके हैं।

चेतना विकास मूल्य शिक्षा आधारित विद्यालय की शुरूआत करने के लिए बाबाजी मार्गदर्शन एवं प्रेरणा देते रहे। विद्यालय का स्वरूप, पाठ्यक्रम, पढ़ाने की शैली आदि सभी बातों के मूल मर्म तथा छोटी-छोटी बातों को समझाते रहे। बाबाजी की प्रेरणा को स्वीकारते हुए अनीता दीदी, चानी, ज्योति पुराणिक, निताशा त्यागी, नीति जैन, अनामिका, पूनम साहू, शालू अग्रवाल, सुचित्रा, ज्योति अग्रवाल आदि ने विद्यालय प्रारंभ करने का निर्णय किया एवं इसे अभिभावक विद्यालय का स्वरूप दिया।

अभ्युदय संस्थान के संचालन में, परिवर्धन में परोक्ष-अपरोक्ष रूप से सैकड़ों भाई-बहनों का सहयोग है जिससे यह संस्थान कृत-कृत्य हुआ है। उनमें से कुछ नामों का ही उल्लेख किया जाना संभव है :- रंजीत-अलका, राजा-मधु, श्री सदारामजी अग्रवाल एवं परिवार, डॉ. पूर्णिमा चारू बाजपेयी, डॉ. ओम तिवारी, सुरेश चंद्राकर, दिनेश कुमुद राठौड़, विकास-ममता जैन, सुषमा-तरूण अग्रवाल, सुधीर-रंजना उप्रीत, दिनेश उपाध्याय, श्री पुराणिक जी एवं परिवार, संतोष-पूजा मिश्रा, सोनू-रोजी, गणेश-अवधेश वर्मा, प्रेम भाटिया, विनय-पिंकी पारेख, हिना चावड़ा, रविकांत, हेमलाल, मोहनलाल जी अग्रवाल (बरगढ़), बसंत-पूनम, बलवंत भाई एवं परिवार, विधि-बालमुकुंद मीणा, निधि-प्रवेश महाजन, सपन-सपना अग्रवाल (बरगढ़), राकेश अग्रवाल, जग्गू-सोनालिका अग्रवाल, विनय गोयल। संस्थान को जिन्होंने अपना परिवार मानकर महत्वपूर्ण योगदान किया, ऐसे स्कूल शिक्षा विभाग के प्राध्यापक व शिक्षक भी इस सूची में शामिल हैं (जिनके नामों का यहाँ पर उल्लेख नहीं हो पाया।

अभ्युदय संस्थान में जीवन विद्या शिविरों और अध्ययन शिविरों तथा अभिभावक विद्यालय की जानकारी धीरे-धीरे छत्तीसगढ़ के अलावा मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, कर्नाटक, दिल्ली आदि प्रदेशों में आने लगी। जिज्ञासुगण शिविरों में आने लगे हैं। इस तरह आदरणीय बाबाजी ने जिस संस्थान का शुभारंभ किया और सतत् मार्गदर्शन देते रहे। वह संस्थान मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद को लोगों तक पहुँचाता रहे, यही सभी अभ्युदयवासियों का संकल्प है।

बी. आर. अग्रवाल

(अभ्युदय संस्थान, अछोटी)

प्रथम परिचय

पूज्य बाबाजी श्री ए. नागराज जी से मेरी प्रथम भेंट अनायास ही हुई और दर्शन से पूर्व जानता नहीं था कि किनसे मिल रहा था। सन 1990 के अंतिम दिनों की घटना है - संभवतः नवम्बर। उस दिन नंदिनी नगर में, मैं अपने माता-पिता के घर में था। अचानक पूज्य राजन महाराजजी से मिलने का मन हुआ। लगभग दोपहर 12 बजे का समय था। सामान्यतः भोजन का समय होने के कारण यह किसी के घर जाने / मिलने का समय नहीं था। निर्धारित स्थान पर पहुँचकर देखा, पूरा कमरा लोगों से भरा हुआ था और कोई प्रौढ़ सज्जन कुछ बोल रहे थे। द्वार से कमरे के अन्दर झाँका, श्रोताओं के मुखमंडल के भाव से मैनें यह निष्कर्ष निकाला कि उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था। तभी 1-2 लोगों ने मुझे बैठ जाने का संकेत दिया। मैं घर के बाहर, द्वार पर ही बैठ गया, जहां 4-6 लोग और बैठे हुए थे। वहां से न कुछ दिखता था न ही सुनाई पड़ता था।

कुछ मिनट बैठने के बाद, भीतर बैठे भाई सुरेश चंद्राकरजी ने मुझे पहचाना व अन्दर बुलाया। मैं उनके पास बैठकर सुनने लगा। मुझे लगने लगा कि नागराज महाराज ही वक्ता हैं। इसके पूर्व मैंने उन्हें देखा नहीं था, न ही कोई चित्र देखा था। यहाँ मैं अपनी पृष्ठभूमि को बताना चाहता हूँ। उन दिनों शिक्षा पूरी कर अन्यमनस्क बैठा था। अर्थोपार्जन ही जीने का एकमात्र उद्देश्य है – यह बात स्वीकार नहीं हो रही थी; कोई विकल्प भी नहीं था। अब तक की शिक्षा से 'ज्ञान' कुछ हुआ नहीं था। इसके पूर्व औपचारिक शिक्षा के अतिरिक्त अपनी रुचि या योग-संयोगवश कई प्रकार के विषयों से मेरा परिचय हो चुका था; जैसे ज्योतिष, दर्शन, परम्परागत साधना विधियों के प्रारम्भिक चरण, आदि। चर्चा में ईश्वर, आत्मा जैसे शब्दों का प्रयोग भी करता था।

इसके पूर्व पूज्य बाबा नागराजजी का नाम मैंने पूज्य राजन महाराजजी से ही सुना था। उनसे सुना था, "नागराज जी वेद व दर्शन के विद्वान हैं, ईश्वर को देखें हैं और विज्ञान को भी पूरा समझते हैं। उनके पास अनेक सिद्धियाँ हैं।" वो कुछ सिद्धियों (घटनाओं) का वर्णन भी करते थे। उनकी बाबाजी में अगाध श्रद्धा थी, उनसे मिलने अमरकंटक जाते रहते थे। इस घटना के पिछले तीन वर्षों से मैं पूज्य राजन महाराजजी के सान्निध्य में रहा। कुछ पुस्तकें पढ़ीं। उनसे लम्बी-लम्बी वार्ताएं की, जिज्ञासा की, भारतीय दर्शन व ज्ञान को समझने की चेष्ठा भी की।

उनके सरल स्वभाव, मीठी वाणी व आत्मीयता ने भारतीय ज्ञान परम्परा पर मेरी आस्था को स्थापित कर दिया था। मैं ऐसे ही जीने की सोचता था किन्तु रहस्यवाद, भिक्षावृत्ति, समाज का उत्थान करने जैसे महत कार्यों का आडम्बर, सिद्धियों के दावे, ज्ञान होने की प्रामाणिकता व मापदंड को लेकर गंभीर हिचकिचाहट भी थी।

एक बार पूज्य बाबाजी द्वारा लिखित 'मानव व्यवहार दर्शन' पढ़ने के लिए लेकर गया था। 2-3 अध्याय पढ़कर मुझे इसकी नूतनता, गहराई या प्रामाणिकता का कोई भास नहीं हुआ, बल्कि यही लगा कि जो लोग विज्ञान नहीं पढ़े हैं वे सभी 'सत्य' को बताने के लिए विज्ञान का सहारा लेते हैं। यह भी उसी प्रकार का कोई प्रयास है। ऐसे लोगों के प्रति मेरी कोई श्रद्धा नहीं रहती थी। पुस्तक बिना पढ़े ही मैंने लौटा दी थी। उन्हीं दिनों कल्याणी बहन पूज्य राजन महाराजजी की सुपुत्री, जो मेरी हमउम्र भी हैं, पूज्य नागराज बाबाजी के मार्गदर्शन में साधना कर रही थीं। उन्होंने भी बाबाजी के बारे में बहुत सी बातें बताई थी। किन्तु 'ज्ञान' जैसे बिंदु पर कोई चर्चा नहीं हुई थी। लगभग घंटे भर में उद्बोधन पूरा हुआ। पूरे मनोयोग से सुनने के उपरान्त भी मुझे कुछ समझ नहीं आया, जबकि सारे शब्द मेरे सुने व प्रयोग किये हुए थे। मैं हतप्रभ रह गया। यह तो समझ गया कि सभी शब्द नए अर्थ में प्रयोग किये जा रहे हैं। उन शब्दों के अर्थ क्या हैं ? कैसे समझू उन्हें ? ऐसा पहली बार हुआ कि किसी व्यक्ति को देखकर मुझे ऐसा भास हुआ कि इन्हें जो ज्ञान है, उसे मैं अपनी पात्रता से नहीं पा सकता। ये सभी शब्द तो मैं भी बोलता हूँ किन्तु उनके पास जो दृढ़ता व आत्मविश्वास है वो मेरे पास नहीं है।

सभा विसर्जित होने पर कल्याणी बहन बाबाजी के पास जाकर कुछ पूछने लगीं। बाबाजी का उत्तर मुझे बहुत तर्कसंगत लगा, "स्वयं पर विश्वास, लक्ष्य पर विश्वास और इन दोनों को जोड़ने वाले साधना विधि पर विश्वास। जिस क्षण ये तीनों हो जाते हैं उसी क्षण ज्ञान होता है। तुम्हारा लक्ष्य और साधना विधि पर विश्वास है ही, स्वयं पर विश्वास के लिए 'जीवन विद्या' समझ लो।" सुनकर मुझे लगा, मेरा न कोई लक्ष्य है न साधना विधि। स्वयं पर विश्वास जो मानता था वह एक घंटे के उद्बोधन को सुनकर लुप्त हो गया था। अकस्मात् प्रश्न उठा, "क्या उनसे वार्तालाप कर सकूंगा ? क्या मेरी ऐसी योग्यता है ? क्या वे वार्ता के लिए तत्पर होंगे ?" भोजन का बुलावा आ चुका था। पूज्य बाबाजी द्वार पर पहुँचे। मैं द्वार के बीचों बीच खड़ा हो गया, दोनों हाथ चौखट पर रखकर मार्ग अवरुद्ध कर दिया। पूज्य बाबाजी मेरे सम्मुख खड़े थे। इतने निकट कि उन्हें छू सकता था। उनकी आँखों में देखते हुए मैंने अपनी जिज्ञासा रखी, "महाराजजी स्वयं पर विश्वास कैसे करें ?" जिज्ञासा का प्रारम्भ शिष्ट और स्पष्ट शब्दों में हुआ, किन्तु बोलते ही मुझे अपनी दीनता व तुच्छता का आभास हुआ। जिज्ञासा की पृष्ठभूमि को पहचानकर ग्लानि व अपमान से व्यथित हो गया। ये मेरे मुँह से क्या निकल गया ? किसी अभेद कवच से ढ़की दुर्बलता प्रकट हो रही थी। उनकी आँखें अब सूर्य की तरह प्रदीप्त लग रही थीं। मेरी आँखें चौंधियाने लगीं, अँधेरा छाने लगा। ऐसा लगा कि चक्कर खाकर गिर जाऊँगा। तभी पूज्य बाबाजी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा जैसे सहारा लेकर खड़े हो रहे हों और उत्तर दिया "एक शिविर लगाएंगे, उसमें बताएंगे।" मैंने रास्ता छोड़ दिया, उनके साथ द्वार से बाहर आया, पश्चात् पीछे चलने लगा। कुछ क्षणों के बाद स्पष्ट हुआ कि उत्तर पूरा हो चुका था, पर मेरे लिए उत्तर नहीं हुआ था।

भोजन व विश्राम के अनंतर दूसरा सत्र प्रारम्भ हुआ। मेरा मन नहीं लगा। कुछ भी सुन-समझ नहीं पाया। सत्र पूरा भी हो गया। स्थानीय परम्परानुसार लोग पुष्प-फल अर्पित कर प्रणाम करते हुए विदा हो रहे थे। मेरी भी बारी आई। प्रणाम किया। इस बार प्रश्न किया, "महाराज जी, आपने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।" बाबाजी बोले, "बताया तो था शिविर लगाएंगे।" तत्क्षण राजन महाराज जी से पूछकर शिविर का समय निर्धारित कर दिया - 21, 22, 23 और 24 जनवरी 1991। उसी स्थान पर, नंदिनी नगर, गायत्री शक्ति पीठ के प्रांगण में। मेरे, (एक अपरिचित के) एक बार पूछने पर; मेरे पास ही आकर समझाने के लिए तत्पर हो गए। उनकी इस विशालता ने मेरे ऊपर अमिट छाप डाला।

अपने महत्व को जानने की यात्रा प्रारम्भ हो चुकी थी।

सान्निध्य

पूज्य बाबजी के सुदीर्घ सान्निध्य में उन्हें मध्यस्थ दर्शन को जीते व व्यक्त करते देखा। उनका व्यवहार सदा मर्मस्पर्शी रहा। "मैं संपूर्ण अस्तित्व को समझा हूँ, समझदार हूँ, प्रामाणिक हूँ" इस उद्घोष से व्यक्त होते समय सामने उपस्थित व्यक्ति को भी उसी स्तर पर बैठाकर बात करते थे। मैं भी समझदार व आप भी समझदार। जब कोई व्यक्ति समझदार पद में न रहने की घोषणा करता तो 'समझदार होना चाहते हो' यह कहकर एवं मानते हुए बात करते थे। उनके लिए मानव की दो ही श्रेणी रही- समझदार एवं समझदारी के लिए इच्छुक। किन्तु व्यवहार करते समय 'समझदार' मानकर बात प्रारम्भ करते।

उन्हें सदा प्रसन्न, जागरूक, आत्मविश्वास से भरपूर एवं शिष्ट व्यवहार करते हुए देखा। सदा जीवंत, अतिथि सत्कार में तत्पर देखा। परिवार प्रदत्त घोर परिश्रम, घोर सेवा एवं अर्जित विद्वत्ता पूर्ण व्यक्तित्व के स्वामी थे। रुचिकर भोजन करने एवं कराने में उनकी स्वीकृति थी। कभी अकेले भोजन किया ही नहीं। जो भी भोजन परोसा गया, पूरी रुचि से भरपेट खाया एवं 'ब्रह्म रसायन' ही कहा। अमरकंटक प्रवास के प्रारम्भिक साढ़े तीन वर्ष वन के कंद-मूल एवं फल-पत्ते का भोजन किया। उन प्रसंगों की चर्चा होने पर उस समय के भोजन को भी सदा स्वादिष्ट कहा।

सन् 2011 या 12 में शीत ऋतु के प्रातः साढ़े पांच बजे की एक घटना है। घने अँधेरे व पानी जमा देने की ठण्ड में नागौद (सतना) से एक सज्जन ट्रक चलाकर बाबाजी से मिलने आए थे। मैं उन्हें अन्दर बैठाकर बाबाजी के पास गया। उन दिनों पैर की शल्यक्रिया व निश्चेतक दवाओं से उनका शरीर प्रभावित था। मैंने एक-दो बार पुकारा, वे जगे नहीं जबकि शल्यक्रिया के पूर्व प्रथम ध्वनि में जगे ही मिलते थे। कमरे के बाहर आ गया। उनके स्वास्थ्य को देखकर पुनः जगाने का मन नहीं हुआ। आशा लेकर आए व्यक्ति को लौटा भी नहीं सकता था। सोचने लगा कि आवश्यक कार्य होगा, तो कुछ देर रुक जाएंगे। पास पहुँचा तो उन्होंने कहा कि कम समय है मेरे पास, दर्शन करा दीजिये। उनके आग्रह से मेरा मन बदल गया। जाकर पुनः बाबाजी को जगाने का प्रयास किया। वे उठ गए तो मैंने आगंतुक की सूचना दी। उन्होंने सहजता से कहा, "बुलाओ।" आकर उन्होंने बाबाजी को प्रणाम किया। बाबाजी ने उन्हें अपने पास बैठाकर अम्बा दीदी को उच्च स्वर में पुकारा। अम्बा दीदी के आते ही कहा, "नर्मदा जी का प्रसाद (हलवा) बनाओ। इन्हें जल्दी जाना है और हाँ, प्रसाद में घी अधिक डालना।"

इस बीच वार्तालाप चलने लगा। मैं बैठकर सुनता रहा। तीस वर्ष पूर्व पूज्य बाबाजी एक बार उनके घर गए थे। उसका वर्णन कर रहे थे। घर में कहाँ बैठे थे, कितने लोग थे, सामने कौन बैठा था, बाजू में कौन बैठा था। घर में कितने कमरे थे, फिर भोजन में क्या था- सब बताया। भोजन की प्रशंसा की। आज घर का स्वरुप कैसा है, यह भी पूछा। इस बीच हलवा आ गया। अपने पास बैठाकर हलवा खिलाया। अन्धेरा छँटने के पूर्व ही उन्हें विदा किया। प्रत्येक व्यक्ति उनके लिए महत्त्वपूर्ण था। मानव-मानव के बीच विश्वास बना रहे यह उनका प्रथम उद्देश्य था।

इसी प्रकार एक घटना का स्मरण आ रहा है। एक बार उन्होंने 'राष्ट्र' शब्द की परिभाषा लिखा, मुझे सुनाकर पूछा। इस परिभाषा को उन्होंने संस्कृत भाषा के विद्वान्, विज्ञान के प्रोफेसर और अनेक व्यक्तियों को सुनाकर उनका मंतव्य जाना। एक बार एक ठेठ किसान को भी परिभाषा सुनाकर उनका मंतव्य ध्यान से सुना। किसान के जाने के बाद मैंने पूछ ही लिया कि विद्वानों से पूछना तो उचित लगता है पर एक सामान्य किसान से क्यों पूछते हैं ? उनका उत्तर मेरी आँखें खोलने वाला रहा "परिभाषा की ध्वनि से क्या भास होता है- यह समझता हूँ।" कितना परिश्रम एवं शोध किया था- एक-एक शब्द को परिभाषित करने के लिए – यह समझा।

22 वर्ष से अधिक समय मैं उनके पास रहा। उनके मार्गदर्शन के लिए, उनसे दर्शन के अध्ययन के लिए। इसी बीच मध्यस्थ दर्शन के लोक व्यापीकरण के कार्यक्रमों में भी भागीदारी किया। परन्तु उन्होंने मुझे कभी कोई आदेश नहीं दिया। क्या करो, क्या ना करो - कभी नहीं कहा। विगत तीन से चार वर्षों में मैंने अपने अग्रिम क्रिया-कलापों के बारे में उनसे मार्गदर्शन चाहा - तीन या चार बार। प्रत्येक बार उन्होंने यही कहा - कोई स्थिति आए, उससे निभने योग्य बने रहना है।

आज उनकी अनुपस्थिति में, यह इच्छा बलवती होती जा रही है कि मध्यस्थ दर्शन के आधारभूत नियमत्रय - बौद्धिक, सामाजिक व प्राकृतिक नियम को जी लूँ एवं इसका लोकव्यापीकरण करूँ।

साधन कुमार भट्टाचार्य

श्री भजनाश्रम, अमरकंटक (म.प्र.)

प्रबल हस्तक्षेप

आदरणीय नागराज जी का स्मरण आते ही अनेकों प्रकार की यादें सहसा ही मुखरित हो उठती हैं। उनके साथ बिताए हुए पलों की मधुरता, संवाद की गंभीरता तथा चाय, काफ़ी या भोजन के लिए आग्रह का ध्यान अनायास ही अंत:करण को झकझोर कर रख देता है, आँखें डबडबाने लगती हैं। उनके साथ बिताए हुए क्षणों में से किसका जिक्र किया जाये, यह ख्याल आते ही जैसे अनेक विचारों में प्रथम आने की प्रतियोगिता प्रारंभ हो जाती है। कुछ काल के लिए तो किं कर्तव्य -विमूढ़ जैसी स्थिति का सामना करना पड़ता है। जैस–तैसे, साहस कर, कलम उठा कर (मुहावरा – आज-कल संगणक स्टार्ट कर) लिखने का प्रयास किया भी जाये तो उनका बाल-सुलभ भोला-भाला, किन्तु ऋषि सम स्थितप्रज्ञ पैनी नजरों से घूरता हुआ, चेहरा सामने आकर स्थिर हो जाता है। चलचित्र के किसी दृश्य को जैसे धीमी गति से चलाकर रोक दिया जाय, वैसे ही पूज्य बाबाजी अछोटी में अंजनीभाई – मीनाभाभी के घर के बीच वाले कमरे के पलंग पर, या अमरकंटक के घर के पूर्वोत्तर दिशा में कोने वाले कमरे या हाल में पलंग पर (मेरी मुलाकात अधिकतर इन्ही दो जगह पर रही), सफ़ेद बनियान पहने हुए, कमर को ६-७ तकियों से टेके हुए, बैठे हुए दिखते हैं। शरीर का निचला भाग चादर से ढका होता है तथा दो–चार जिज्ञासु हाथ-पैर, सर, कमर व पीठ को सहला–दबा रहे होते हैं। और बाबाजी जैसे पूछ रहे हों, "समझ गए हो क्या?" या फिर, "कहो, कुछ अच्छी बात बताओ?" किंचित लज्जा की बात तो यह है कि इन प्रश्नों के उत्तर देने की सोचते ही आज भी नजरें चुरा कर बगलें झाँकने की नौबत आ जाती है।

इन सब विचारों के उथल-पुथल के बीच एक और ध्यान जाता है कि यह सब विचार, यादें, मधुरता, गंभीरता, आग्रह, पैनी नजरें आखिर मन में हैं कि चित्त में, या फिर वृत्ति में? यहाँ तो स्वयं को शरीर से पृथक देखने के लिए ही एड़ी-चोटी का दम लगाना पड़ रहा है। फिर जीवन के विभिन्न घटकों को स्पष्टता से देखना और फिर संस्मरण से जुड़ी प्रत्येक घटना को जीवन क्रियाओं के अर्थ में विश्लेषित करना अभी तो दूर की कौड़ी लगता है, तथा इस विचार को जबरन दूर धकेलना पड़ता है। इन सब वैचारिक झंझावत में किसी एक संस्मरण को लिखने हेतु चुनना भूसे के ढेर में से सूई को निकालने के बराबर तो नहीं, किन्तु उतना ही मुश्किल सा लगता है। यद्यपि इस शरीर यात्रा में आदरणीय नागराजजी के साथ मेरा सशरीर मिलन संयोग सामान्य मापदंडों के अनुसार कुछ संक्षिप्त ही कहा जाएगा, तथापि इस अवसर का भी मैं पूर्ण सदुपयोग कर पाया यह कहना मेरे लिए कठिन होगा। ऐसा भी नहीं कि बेकार गंवाया, परन्तु जितना मिला है, उसको संभाल पाऊँ तो भी स्वयं से नजरें मिलाने लायक हो पाउँगा।

आदरणीय नागराजजी के साथ प्रत्येक अवसर पर मिलने में यदि कोई बात समान या उभयनिष्ठ दिखती है तो वह यह कि मुझे समझने की दिशा में सदैव धक्का देते रहे, प्रेरित करते रहे। उन्होंने तो मेरी योग्यता व पात्रता को विकसित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी; मेरे ही प्रयत्न में भले ही कमी रही। ऐसा मेरे साथ ही किसी विशेषतावश किया हो, ऐसा बिलकुल भी नहीं है। इस सीमित अवधि में भी मेरा देखना रहा है कि यह व्यवहार वह प्रत्येक जिज्ञासु के साथ सतत करते रहे। आखिर दिव्य मानव का स्वभाव ही ऐसा होता है – यह भी उनके जीने से ही

समझा है। मुझे लगता है प्रत्येक जिज्ञासु यह कह पायेगा। पर, और सबकी बात करने के बजाय, यहाँ मैं अपनी बात करता हूँ। और फिलहाल तो प्रथम मिलन का वर्णन ही आसान लगता है।

प्रथम मिलन की बात याद करता हूँ तो लगता है जैसे कल ही की बात है जब मैं पहली बार अहमदाबाद से दुर्ग और फिर दुर्ग से, अमरकंटक एक्सप्रेस द्वारा, पेंड्रा रोड होते हुए पूर्व निर्धारित टेक्सी से ३१ मई २०१० को रात्रि लगभग साढ़े दस बजे भजनाश्रम पहुँचा। अजय भाई जैन व नीताभाभी पहले से ही पहुँच गए थे तथा मेरे सलामती से आने की राह जोह रहे थे। बाद में पता चला कि बाबाजी भी मेरे कुशलता से पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहे थे। सभी यह तथ्य जानते हैं कि बाबाजी हर आने वाले का इन्तजार करते हुए यात्रा की स्थिति पूछते रहते थे। अजय भाई ने ही मुझे श्रद्धेय नागराज जी से मिलने की प्रेरणा दी थी (धन्यवाद, अजय भाई।)। यह कार्यक्रम लगभग तीन महीने पहले बना था तथा यहाँ आने के दो उद्देश्य थे। एक तो अमरकंटक में आयोजित जीवन विद्या शिविर में शिविरार्थी की तरह मेरा पहली बार भाग लेना, दूसरे आदरणीय नागराज जी से पहली बार मिलना। मुझे स्पष्ट तो याद नहीं है, किन्तु मेरे अंदर उनकी कुछ धूमिल छवि समाज में विख्यात अन्य बाबाओं जैसी ही रही होगी। अर्थात, न तो मुझे मध्यस्थ दर्शन या जीवन विद्या की ही कोई सार्थक जानकारी थी और न ही नागराज जी का सटीक परिचय। घर पहुँचकर सर्वप्रथम मैंने बाबाजी को प्रणाम किया तो तुरंत ही ध्यान गया कि यह अन्य बाबाओं जैसे तो किसी कोने से भी नहीं लगते, बल्कि घर में साधारण वृद्ध बाबा/दादा/नाना जैसे ही ज्यादा प्रतीत होते हैं। जो भी, जैसी भी छवि थी वह प्रत्यक्ष रूप जैसी तो कदापि नहीं थी एवं एक ही क्षण में ध्वस्त हो गयी। उन्होंने हाल-चाल पूछकर भोजन करने के लिए तथा तत्पश्चात रात्रि विश्राम के लिए कहा।

अगले दिन प्रात: काल २-३ घंटे फुर्सत से मिलना हुआ। और इसी बीच मुझे २ ज़बरदस्त धक्के दे डाले। मुझे सोचने के लिए बाध्य कर दिया।। मेरे अतिरिक्त ४-५ और भी लोग बैठे हुए थे तथा बाबाजी से अपनी शंका निवारण में लगे हुए थे। मेरी ओर ध्यान देते हुए जब उन्होंने मेरे व्यवसाय के बारे में जानकारी चाही तो मैंने गर्व से अपने पद का जिक्र करते हुए तेल व प्राकृतिक गैस से जुड़े हुए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का बखूबी वर्णन किया। पहले तो उन्होंने मुझे तीव्र नजरों से घूरा, लगा जैसे अंतर्मन तक का स्कैन कर लिया हो, फिर धीरे से बोले,

"कब तक अपराध करते रहोगे?" यह सुनकर मैं असमंजस में पड़ गया। आस-पास बैठे लोगों की ओर नजरें घुमाकर कुछ संकेत पाने का प्रयत्न भी किया। पर वे सब अब बाबाजी से बात करने में मशगूल हो गए थे। मैं सोचने लगा, "मैं तो ईमानदारी से एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी में बहुत मेहनत से काम करता हूँ। कोई लूट-खसोट का तो प्रश्न ही नहीं उठता बल्कि मिलावट, धोखाधड़ी भ्रष्टाचार आदि से भी कोसों दूर हूँ। यहाँ तक कि अर्ध-सरकारी उपक्रम (पब्लिक सेक्टर) में सुरक्षित नौकरी को छोड़ने का एक कारण समाज में प्रचलित एक यह मान्यता भी रही थी कि सरकारी लोग बिना मेहनत/काम किये वतन लेते रहते हैं (यह मान्यता सही हो ऐसा नहीं है, और आज तो मैं इसे बिल्कुल भी ठीक नहीं मानता हूँ)। यह सब मैं खुद में गर्व की बात मानता हूँ। तथा साथ ही एक विपन्न पारिवारिक पृष्ठभूमि से उठकर साधन संपन्न होने को मैं बड़ी उपलब्धि मानता हूँ। इस बात की समाज में जहाँ-तहाँ चर्चा भी होती रहती है, तथा प्रतिष्ठित माने जाने वाले लोग काफ़ी प्रभावित भी होते हैं। और यहाँ ये महाशय कह रहे हैं कि मैं अपराध कर रहा हूँ .....।"

अभी मैं इस ऊहापोह से उभरा भी नहीं था कि एक और ज़बरदस्त झटके ने मुझे हिला डाला। मुझे बिलकुल भी भान नहीं था कि वहाँ क्या वार्तालाप चल रहा था। मैं तो उपरोक्त विचारों के सागर में गोते लगा रहा था। अचानक बाबाजी मेरी ओर मुखातिब हुए और बोले, "आप ही बताइए मैं यह कार्य समाज में करूं कि न करूं ?" मैंने तीव्रता से विचार किया कि ये कुछ अच्छी ही बात कर रहे होंगे तथा अच्छा ही कार्य करने के बाबत विचार-विमर्श कर रहे होंगे। और, मुझसे पूछ रहे हैं, इस बात का ध्यान कर अहम का ग्राफ जो नीचे गिर गया था, कुछ ऊपर उठता सा भी लगा। अपने को बुद्धिमान साबित (पदानुरूप) करने के अर्थ में तथा यह सोचकर कि मेरी सहमति से मेरे अपराधी मानने में शायद कुछ कमी आये, मैंने मुस्कराते हुए जवाब दिया, "बाबाजी, अवश्य करना चाहिए।"

उन्होंने मुझे फिर उसी तीव्रता से देखा और फिर औरों की ओर देखकर बोले, "यह देखो चेयरमेन, करना चाहिए, खुद कुछ नहीं करेंगे।" मेरे ऊपर तो मानों घड़ों पानी गिर गया हो। मैं खिसियानी बिल्ली की तरह इधर-उधर देखने लगा। ऐसा ख्याल तो नहीं आया कि धरती फट जाये और मैं उसमे समा जाऊँ, किन्तु वहाँ से निकलने की कोई सम्मानजनक तरकीब के बारे में ज़रूर सोचने लगा। तभी कमरे में एक सज्जन ने, जो मध्यम कद के थे व सफेद कुर्ता-पायजामा पहने थे, प्रवेश किया। सरलता जैसे उनके पोर-पोर से झलक रही थी। उन्होंने बाबाजी को चरण स्पर्श कर नमस्कार किया और पलंग के एक कोने पर बैठ गए। बाबाजी तुरंत ही उनकी ओर मुखातिब हुए और बोले, " कहो अंजनी, कितने लोग आ गए हैं? क्या प्लान है ? कब शिविर शुरू कर रहे हो?" अंजनी भाई ने एक-एक कर पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर देना शुरू किया तो जैसे मेरी जान में जान आ गयी। मैंने तुरंत ही अजय भाई को चलने का इशारा कर, अंजनीभाई और बाबाजी के वार्तालाप के दौरान उचित ठहराव देख, चलने की इजाज़त मांगी, "बाबाजी, मुझे भी शिविर में जाना है, मैं चलता हूँ।" उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा, "ठीक है, फिर आना।" और फिर अंजनी भाई से बात करने लगे।

कमरे से बाहर निकल कर मैंने चैन की साँस ली। दोपहर का भोजन किया और फिर अंजनी भाई द्वारा प्रबोधित बहुत ही शानदार शिविर में उपस्थित हुआ। वह शिविर तो झकझोरने वाला तथा ज़िंदगी की दिशा परिवर्तक रहा ही, किन्तु, बाबाजी द्वारा मुझे कही गयी दोनों बातें मेरे अंदर लगातार गूंजती रही और आज भी अपराधमुक्त होकर जीने तथा व्यवस्था की तैयारी में भागीदारी के लिए सतत ध्यानाकर्षण व प्रेरणा की स्रोत हैं।

सुरेन्द्र पाल

रायपुर

मध्यस्थ दर्शन

मध्यस्थ दर्शन के प्रणेता श्रद्धेय ए. नागराजजी के साथ हुए लम्बे अरसे के संवाद के फलस्वरूप सार रूप में मध्यस्थ दर्शन मुझे ऐसा समझ में आया-

मध्यस्थ सत्ता (व्यापक, क्रियाशून्य) नित्य है। मध्यस्थ होने का तात्पर्य, यह व्यापक है एवं क्रिया (गति, तरंग, दबाव, संकल्प, विकल्प आदि) नहीं है; परंतु सभी क्रियाएँ इसमें संपृक्त हैं। नित्य होने का तात्पर्य, यह देश, काल अबाध है। मध्यस्थ सत्ता में **संपृक्त** जड़-चैतन्य प्रकृति (इकाई समूह) ही अस्तित्व समग्र है। यही सह-अस्तित्व के रूप में नित्य वर्तमान है। सत्ता पारदर्शी, पारगामी है। जड़-चैतन्य प्रकृति चार अवस्थाओं में व्यक्त है। मानव जीवन (चैतन्य) और शरीर (जड़) के संयुक्त रूप में ज्ञानावस्था की इकाई है।

मध्यस्थ क्रिया चैतन्य प्रकृति की अंतरतम क्रिया है, जो सम-विषम प्रभावों से मुक्त है। मध्यस्थ क्रिया मध्यस्थ सत्ता में संपृक्त है। मध्यस्थ क्रिया की सर्वोच्च विकसित स्थिति मध्यस्थ सत्ता में **अनुभव** है, सह-अस्तित्व में अनुभव है। यही ज्ञान है एवं अनुभव (मध्यस्थ बल)-प्रामाणिकता (मध्यस्थ शक्ति) ही जीवन की चरम उपलब्धि का आधार है।

मध्यस्थ जीवन सह-अस्तित्व में अनुभूत मध्यस्थ क्रिया और उससे प्रेरित, अनुशासित जीवन की अन्य अविभाज्य क्रियाओं के रूप में है। अर्थात बुद्धि मध्यस्थ क्रिया (आत्मा) के अनुरूप बोध एवं संकल्प क्रिया में, चित्त बुद्धि के अनुरूप चिंतन एवं चित्रण क्रिया में, वृत्ति चित्त के अनुरूप विश्लेषण एवं तुलन क्रिया में, मन वृत्ति के अनुरूप चयन एवं आस्वादन क्रिया में रत रहते हुए तृप्त रहते हैं।

तृप्ति की इस स्थिति को क्रमशः आत्मा में परमानंद, बुद्धि में आनंद, चित्त में संतोष, वृत्ति में शांति एवं मन में सुख के रूप में जाना जाता है। ऐसा सभी 10 क्रियाओं में संगीतमयता को प्रमाणित किया हुआ जीवन ही मध्यस्थ जीवन है। ऐसे जीवन स्वयं में ज्ञान एवं समाधान संपन्न रहते हैं। अनुभव आयाम में अनुभव, बोध एवं चिंतन के सुनिश्चित होने को ज्ञान एवं इसके अनुरूप विचार आयाम में चित्रण, विश्लेषण, तुलन, चयन, आस्वादन को समाधान शब्द से इंगित किया गया है। ज्ञान ही मध्यस्थ अनुभव आयाम (अनुभव समत्व) एवं समाधान ही मध्यस्थ विचार आयाम (विचार समत्व) है। अनुभव ही **क्रियापूर्णता** एवं मध्यस्थ जीवन ही **आचरणपूर्णता** की स्थिति है। यही स्वतंत्र जीवन है।

मध्यस्थ मानव मध्यस्थ जीवन की शरीर के संयुक्त रूप में अभिव्यक्ति है। ऐसा मध्यस्थ मानव ज्ञान एवं समाधान पूर्वक दूसरे मानव के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार, शेष प्रकृति के साथ नियमपूर्ण कार्य एवं प्रकृति समग्र के साथ धर्मपूर्ण व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करता है। ऐसा जीना ही क्रम से मध्यस्थ व्यवहार, मध्यस्थ कार्य एवं मध्यस्थ व्यवस्था में भागीदारी है। यही क्रम से व्यवहार समत्व, व्यवसाय (कार्य) समत्व एवं व्यवस्था में भागीदारी समत्व का भी स्वरूप है। ऐसे मानव ही स्वायत्त मानव हैं।

मध्यस्थ परिवार सीमित संख्यात्मक मध्यस्थ मानवों का साथ-साथ संबंध एवं व्यवस्था पूर्वक जीने का स्वरूप है। ऐसे परिवार के सभी सदस्य समाधान संपन्न रहते हैं एवं परस्परता में न्यायपूर्ण व्यवहार को सुनिश्चित करते हैं। साथ ही अपनी भौतिक आवश्यकताओं की ठीक-ठीक पहचान करके उससे अधिक सुविधा को श्रमपूर्वक आवर्तनशील विधि से सुनिश्चित करते हुए समृद्धि का अनुभव करते हैं। अतः ऐसा जीता हुआ मध्यस्थ परिवार ही समाधान एवं समृद्धि का प्रमाण है।

मध्यस्थ समाज समाधान, समृद्धि पूर्वक जीते हुए परिवारों का परस्पर विश्वास (अभय) पूर्वक जीने का स्वरूप है। ऐसे समाज का फैलाव क्रमशः परिवार से विश्व परिवार तक है; यही अखण्ड समाज है। ऐसे मध्यस्थ समाज में समाधान, समृद्धि, अभय नित्य प्रमाणित होता रहता है।

मध्यस्थ प्रकृति (जिसमें मानव भी शामिल है) मध्यस्थ समाज का प्रकृति समग्र के साथ व्यवस्था पूर्वक जीने के आधार पर प्रमाणित होती है। ऐसे व्यवस्था का फैलाव परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक है; यही सार्वभौम व्यवस्था है। मध्यस्थ प्रकृति में समाधान, समृद्धि, अभय एवं सह-अस्तित्व रूपी चारों मानव लक्ष्य नित्य सफल होते हैं। यही सर्वशुभ का स्वरूप है।

मध्यस्थ परम्परा मध्यस्थ प्रकृति (सार्वभौम व्यवस्था) की पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतरता है, जो सह-अस्तित्व सहज विधि, संस्कृति, सभ्यता, व्यवस्था की एकात्मता पूर्वक सफल होती है।

गणेश बागड़िया
मानवीय शिक्षा संस्कार संस्थान
कानपुर

बाबा जी का साथ

श्रद्धेय नागराज जी, को हम सभी बाबाजी कहकर संबोधित करते रहे। उनका स्मरण आते ही मेरे मुख पर मुस्कान और मन प्रसन्नतामय हो जाता है। जबसे 'बाबाजी का साथ' मिला है तब से मेरे साथ उनके स्मरण से ऐसा ही होता रहा है, ऐसे सुखदायी जीवन जीने वाले मानव को मेरा कोटि-कोटि प्रणाम।

प्रथम परिचय

बाबाजी से मेरी पहली मुलाकात गोविंदपुर ग्राम, 5 मई 1993 को हुई। गोविंदपुर, ऊत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले में पड़ता है। हम कुछ युवा साथी, जिनका गोविंदपुर में तभी नया-नया आना हुआ था, धामपुर से आने वाले साथियों की प्रतीक्षा में थे। धामपुर से आने वाले साथियों में डा० यशपाल सत्य जी, रणसिंह आर्य जी व अन्य के साथ नागराज बाबा के आने की सूचना थी। वैसे तो मेरी रुची कभी भी सन्यासियों, धर्म गुरुओं या बाबाओं में नहीं रही, लेकिन इस बाबा के बारे में जिस श्रद्धा से सत्य जी ने बताया था, उसके कारण मेरे मन में उनसे मिलने की उत्सुकता बन चुकी थी।

यहाँ यह बताना ज़रूरी है कि आई० आई० टी०, दिल्ली में मेरी मुलाकात प्रोफ़ेसर यशपाल सत्य जी से लगभग एक वर्ष पूर्व से थी और मैं उनसे बहुत प्रभावित था और उनके मार्गदर्शन में ही मेरा गोविंदपुर आना हुआ था। सत्य जी अपनी सभी बातों के मूल में जीवन विद्या को आधार बताते थे और बाबाजी के प्रति पूरी तरह समर्पित थे। सत्य जी के समर्पण के कारण ही मेरी भी बाबाजी के प्रति स्वीकृति थी। इसलिए पहली मुलाकात में उनसे जुड़ गया, साथ ही बाबाजी से पहली भेंट से ही खुलकर बात कर पाया। सत्य जी बिजनौर क्षेत्र से ही थे और उनके और रणसिंह आर्य जी के माध्यम से वहाँ उस समय जीवन विद्या शिविर के लिये बहुत सारे युवा एवं प्रौड़ इकट्ठे हुए थे। हम में से अधिकांश का जीवन विद्या या बाबाजी से कोई परिचय नहीं था, पर हम सभी सत्य जी को समर्पित थे। इस पूरे समूह का बाबाजी से जुड़ना सहज रूप में ही हो गया, जिसमें सत्य जी की एक प्रमुख भूमिका रही।

दूर से आती गाड़ी को देख हमारा कौतुहल बड़ गया था। सफ़ेद एम्बैस्डर कार का हमारी तरफ़ का दरवाज़ा खुला और एक सफ़ेद लिबास पहने हुए, सर पर सफ़ेद कपड़ा बांधे हुए, लम्बी सफ़ेद दाड़ी-मूछ वाले सज्जन उतरे। उनके उतरते ही उनके चर्ण स्पर्ष करने की चेष्टा की तो वो सज्जन ज़ोर से बोले "अरे भई, मैं बाबा नहीं हूँ, बाबा तो वो हैं।" और कार की दूसरी तरफ़ से उतरते हुए व्यक्ति की दिशा में इशारा किया। बाबाजी और सभी उपस्थित लोग ज़ोर से हँस पड़े। दाड़ी वाले सज्जन मध्य प्रदेश के रहने वाले भूतपूर्व स्वतंत्रता सेनानी सिंधु चाचा थे।

कुछ देर बाद ही, मेरा परिचय बाबाजी से हुआ, उन्होने मेरी आँखों में देखते हुए बड़े स्नेह के साथ बोले "तुम प्रतिभाशाली हो, जल्दी से समझदार बन जाओ और मजे से जिओ।" कुछ देर बाद जब मैं उनके साथ चल रहा था तो मेरी पीठ थपथपाते हुए बोले "तुममें जो व्यवसाय को लेकर चिन्ता है उससे परेशान मत हो, जीवन विद्या समझ लो, तुम्हारे सभी प्रश्न, समस्या तुम स्वयं ही सुलझा लोगे।" इन दो बातों को सुनकर मैं आश्वस्त हो गया और जीवन विद्या को सुनने के लिये पूरी तरह से मन बना लिया।

निर्वाह में उपकार

इस शिविर के लिये मेरे साथ मेरे मित्र शीला जी (जिनसे आगे चलकर मेरा विवाह हुआ) और पौल मार्गेनियन (आई॰ आई॰ टी, दिल्ली में अमरीका के एक्सचेंज विद्यार्थी) आये हुए थे। पौल तो मेरे साथ "असली भारत" देखने आया था, जो कि भारत के गाँवों में बसा हुआ है। बाबाजी से मिलकर और उनको सुनकर पौल का भी मन शिविर सुनने का हुआ, उसने मुझसे अपनी यह इच्छा ज़ाहिर की। लेकिन एक समस्या थी - पौल को हिन्दी नहीं आती थी और शिविर हिन्दी में था। मैंने सत्य जी और बाबाजी से, जो कि दोनो साथ में ही बैठे हुए थे, इस समस्या को रखा। सुनते ही बाबाजी पूछे "पौल को गोविंदपुर कौन लाया?" मैने उतर दिया "मैं लाया हूँ"। आगे पूछे "तुम्हें रंगरेज़ी (अंगरेज़ी) आती है?" मैने उत्तर दिया "जी हाँ आती है।" वे बोले "पौल को लाने के लिये तुम ज़िम्मेदार हो इसलिये यह तुम्हारी ही ज़िम्मेदारी है कि उसे हिन्दी से रंगरेज़ी में अनुवाद करके समझने में सहयोग करो। बोलो, तुम्हें यह स्वीकार है?" मैने उत्तर दिया "जी स्वीकार है।" यह सुनकर बाबाजी बहुत ज़ोर से ठहाका लगाये और बोले "यह हुई ना बात, बहुत बढिया।"

सत्य जी से चर्चा कर यह तय हुआ कि शिविर में जो भी चाय-पानी के लिये 20-30 मिनट का ब्रेक होगा उसमें मैं पौल को अंगरेज़ी में अनुवाद कर सार बात बताऊँगा और यदि कुछ सपष्ट नहीं कर पाया तो शाम को सत्य जी मदद करेंगे। इस शिविर में एक अच्छी और ऐतिहासिक घटना घटी। यह तय हुआ कि इस शिविर में बाबा जी की उपस्थिति में सत्य जी प्रबोधन करेंगे और यदि सत्य जी से कोई कमी होगी तो बाबाजी उसे वहीं ठीक कर देंगे। हर दिन शिविर की शुरुआत बाबाजी के उद्बोधन से होती थी और फिर सत्य जी शिविर को संबोधित करते थे। इस प्रक्रिया में बाबाजी ने कहीं भी सत्य जी को टोका नहीं, जिससे सत्य जी में विश्वास बना के वे शिविर ले सकते हैं। शाम को जब मंगल मैत्री चर्चा होती थी तो उसमें बाबाजी सत्य जी की अभिव्यक्ति में हुई त्रुटियों को सुधारने के अर्थ में चर्चा करते थे, लेकिन सत्य जी का सम्मान हमेशा बनाये रखते थे। मुझे आज लगता है कि यह नए प्रबोधकों को तैयार करने की अनुकरणीय विधि है।

ख़ैर, शिविर जब चला तो मैंने बहुत ध्यान से सुना क्योंकि ब्रेक में अंगरेज़ी मे अनुवाद करके पौल को बताना जो होता था। पौल भी शिविर में खूब खुश रहा, जिस कारण से बाबाजी ने उसे नाम दिया "खुश बेटा"। इसी क्रम में सत्रों के बाद सत्य जी से भी बहुत सारा सपष्टीकरण होता था। इस प्रक्रिया का उपकार यह हुआ कि 'मैं जीवन विद्या समझ सकता हूँ' यह विश्वास बन गया और जीवन विद्या में निष्ठा बन गई। इस आधार पर हम लोगों ने गोविंदपुर से जुड़ने का मन बना लिया।

मनवीय विवाह संस्कार

यह वो समय था जब बाबाजी बिजनौर वर्ष में 3-4 बार आते थे और लम्बा रुकते थे। गोविंदपुर में जो विद्यालय था, उसको देखने की ज़िम्मेदारी हम लोगों की युवा टीम ने ली थी। मेरा और शीला जी का आना-जाना होता रहता था, इसी क्रम में रणसिंह भैया ने हम दोनो को विवाह करने का प्रस्ताव दिया जो हमने स्वीकार लिया। विवाह कैसा हो इस पर हम दोनो की चर्चा सत्य जी से हुई जिसका सार था कि क्या-क्या नहीं करना है यह स्पष्ट था, लेकिन क्या करना है यह स्पष्ट नहीं था। सत्य जी ने बाबाजी के सामने यह मुद्दा रखा तो बाबाजी बोले आप

दोनो (शीला जी और मैं) मानवीय विवाह संस्कार करने योग्य हो, क्या जीवन विद्या विधि से विवाह संस्कार करवाना चाहोगे? इस प्रस्ताव को सुनकर हम दोनो ही बहुत प्रसन्न हुए और तुरंत ही स्वीकार कर लिया। दिसंबर 1993 में बाबाजी गोविंदपुर आये और मानवीय विवाह संस्कार विधि को सत्य जी से लिपिबद्ध करवाया। जनवरी 2, 1994 को सुबह दिल्ली में शीला जी की दादीजी के निवास स्थान पर इस विवाह संस्कार का आयोजन हुआ। इस समारोह में बाबाजी संरक्षक के रूप में उपस्थित रहे और रणसिंह भैया जी ने संस्कार कराने की ज़िम्मेदारी का बखूबी निर्वाह किया। इस आयोजन में लगभग 100 लोग उपस्थित रहे, हम दोनो के परिवारजन व सभी अतिथिगण संस्कार विधि से संतुष्ट हुए एवं प्रसन्न हुए। कई वर्षों बाद भी कुछ लोग उस समारोह को याद करते रहे। पूरे समारोह के आयोजन में मात्र 5 हज़ार रुपेए खर्च हुए थे। हम दोनो विवाह के कुछ महीनों के उपरांत ही गोविंदपुर में रहने आ गये और वहाँ के विद्यालय में भागीदारी किये।

टीकाकरण से मुक्ति

हमारी पहली संतान के जन्म से पहले से ही, हम दोनो के मन में टीकाकरण (vaccination) को लेकर कुछ प्रश्न थे, जिसके बारे में हम लोगों ने सत्य जी से बहुत चर्चा की। उन्होंने हमें बहुत से लेख दिये जिन्में विदेशों में टीकाकरण को लेकर चल रहीं समीक्षात्मक सूचनायें थीं। इन सूचनाओं को पढ़कर हमें यह भरोसा बना कि टीकाकरण को लेकर हमारे प्रश्न वाजिब थे, लेकिन समाधान क्या हो यह स्पष्ट नहीं हुआ। हम में यह अस्पष्टता भी थी कि अगर कोई रोग हुआ तो हमें क्या करना होगा। बाबाजी के दिल्ली आने पर उनके सामने इस समस्या को रखे तो उन्होंने हमे आश्वस्त किया। उनके अनुसार हर माता-पिता अपने बच्चों को सावधानी व ध्यान से आसानी से स्वस्थ बनाकर रख सकते हैं। साथ ही किसी जानकार व्यक्ति के मार्गदर्शन में अधिकतम रोगों का उपचार भी कर सकते हैं। बाबाजी ने हम पति-पत्नी के माता-पिता रूप में सफल होने के लिये स्वयं को 'स्वास्थ्य के जानकार व्यक्ति' के रूप में प्रस्तुत किया। बाबाजी के इस आश्वासन के आधार पर हमारी हिम्मत बन गयी कि हम अपने होने वाले बच्चों का स्वस्थ पालन कर सकेंगे। अगस्त 8, 1995 में दृष्टा बिटिया का जन्म हुआ और जुलाई 1, 1997 को वेदा बिटिया का, दोनो बच्चों को "हमने टीका मुक्त ही रखा।"

बच्चों के देखरेख के लिये बाबाजी ने हमें कुछ नुस्खे बताये जिनके सहारे हम लोग बच्चों में होने वाले सभी सामान्य रोगो का उपचार करने में सफल रहे। बाबाजी ने इस संदर्भ में जो सबसे महत्वपूर्ण बात हमे बताई वह थी कि बुखार होने पर शिशु को बुखार उतारने की दवा जल्दी से नहीं देनी है। यदि बुखार बहुत तेज़ है (102+) तब बुखार उतारने की दवा देनी चाहिये। लेकिन बुखार उतर जाने पर भी बच्चे का शरीर (माँसपेशियाँ व नसे) अंदर से कुछ दिन तक कमज़ोर रहता है।ऐसे में रोगी के खड़े होने पर या चलने के प्रयास करने पर, नसे दबने से हाथ-पाँव आदि अंग खराब हो सकते हैं। हम लोगों ने बाबाजी द्वारा बताईं अधिकतम बातों को निभाने का पूरा प्रयास किया, जिसके फलस्वरूप दोनो बच्चों को टीका ना लगवाने के बावजूद बचपन में कोई गंभीर समस्या नहीं हुई।

नामकरण

बच्चों के नाम को लेकर भी बाबाजी से हमारी बात हुई। बाबाजी ने बताया कि मानव संतान का नाम सार्थक और प्रयोजन पूर्ण होने पर, संतान के बड़े होने पर उसे जागृति के लिये प्रेरित करने में सहायक है। इस

संवाद के बाद से ही हमारे मन में यह तय हो गया था कि अपनी संतान का नाम दृष्टा ही रखेंगे। इसी क्रम में दृष्टा बिटिया का नामरण संस्कार बाबाजी की उपस्थिति व संरक्षण में रणसिंह भैया द्वारा हुआ। वेदा बिटिया के जन्म के कुछ समय उपरांत ही सत्य जी का असामयिक शरीर कैंसर रोग के कारण शांत हो गया। इस कारणवश, वेदा बिटिया का नामकरण संस्कार का आयोजन समारोह न करने का निर्णय हुआ। परंतु वेदा का नाम बाबाजी द्वारा ही दिया गया।

बच्चों की शिक्षा

बच्चों की शिक्षा के बारे में जब बात आयी तो बच्चों के चैतन्य पक्ष पर आयु अनुसार ध्यान देने की आवश्यकता हमें जीवन विद्या के आधार पर स्पष्ट हुई। जब बच्चों का स्कूल जाना शुरू हुआ तब जब भी बाबाजी से भेंट होती थी तब वे पूछते थे कि "बच्चों की पढ़ाई कैसी चल रही है? क्या उनका मन पढ़ाई में लग रहा है?" बच्चों के बड़ी कक्षाओं में आने पर तो यह भी पूछते थे कि "उनका रिज़ल्ट कैसा आया?" रिज़ल्ट अच्छा आया बताने पर खुश भी होते थे। आगे चलकर दृष्टा के साथ संवाद में बाबा जी उसे स्नातक होकर अध्ययन करने के लिये कहा और उसके उपरांत पी॰ ऐच॰ डी॰ करने को कहा। जीवन विद्या और प्रचलित शिक्षा दोनो में अधिकार पाकर, शिक्षा विधा में मध्यस्थ दर्शन को स्थापित करने के लिये प्रेरित किया। बाबाजी अपने तरीके से बच्चों की स्थिति-गति पर नज़र बनाये रखे।

हस्तक्षेप मुक्त मार्गदर्शन

शुरू-शुरू के वर्षों में हमारे विवाह के बाद, एक-दो बार बाबाजी ने हमें दिल्ली में स्कूल चलाने के लिये कहा। उस समय मेरे पिताजी सेवानिवृत्त होकर एक छोटा-सा प्राथमिक विद्यालय चलाते थे, बाबाजी ने कई बार हमें संकेत किया कि हम उस विद्यालय को संभाल लें और उसमें प्रचलित शिक्षा के साथ-साथ जीवन विद्या आधारित शिक्षा भी दें। लेकिन उस समय उस काम के लिये मेरी स्वीकृति नहीं बनी। इसके बाद बाबाजी एक बार जब हमारे घर रुके, दिल्ली में जिस महौल्ले में हम रहते थे उसे देखकर बाबाजी ने सुझाया कि हम वहाँ एक बनियान बनाने का छोटा-सा उदयोग शुरु करें, लेकिन हमें यह भी नहीं भाया। इसके बाद बाबाजी ने हमें व्यवसाय संबंधी सुझाव देना बंद कर दिया। इस घटना के बाद मैने 5 वर्ष प्रिंटिंग व वेब-डिज़ाईनिंग संबंधित कार्य किया और उसके बाद के 5 वर्ष एक बहुराष्ट्रिय आई॰ टी कम्पनी में नौकरी की।

दस वर्ष इस सबको भुगतकर इस निश्कर्ष पर पहुँचे कि व्यापार अथवा नौकरी में हमारी समृद्धि अथवा संतुष्टि नहीं है। बच्चे भी अब अनुशासन की आयु में आ चुके थे और उनमें भी दिल्ली-नोयडा के वातावरण की समीक्षा होने लगी थी। मेरे में भी अब मध्यस्थ दर्शन को और गहराई से समझने की आवश्यकता प्रबल हो रही थी। बाबाजी ने भी सभी आयोजनों में अध्ययन पर ज़ोर देना शुरू कर दिया था। बाबाजी के साथ हुए मित्रों के संवाद की रिकार्डिंग भी अब नियमित उपलब्ध होने लगे थे। रिकार्डिंग के उपलब्ध होने से दर्शन की वस्तु पर काफ़ी समय तक ध्यान रहने लगा था। इन सभी कारणों के आधार पर मुझे अपने को मध्यस्थ दर्शन में समर्पित करने का मन बन गया।

पारंगत होने का अर्थ

वर्ष 2004 में हम परिवार सहित होली पर अमरकंटक गये, वहाँ पहुँचते ही बाबाजी पूछे कि "क्या तुम पारंगत हो गये हो?" मैने पूछा "बाबाजी पारंगत होने का अर्थ क्या है?" बाबाजी बोले "जीवन विद्या को समझने के निश्चित बिन्दुओ पर स्पष्टता पा लेना।" मैने पूछा "बाबाजी कौन-कौन से बिन्दु?" उन्होने बोला "लिखो, मैं बताता हूँ और तुम नोट करो।" उस समय उन्होने हमसे कुछ बातें नोट कराईं, जब हमारे लौटने का वक्त हुआ तो वो बोलें यह नोट छपवाने योग्य है, इसे और लोगों को दिखा कर उनसे फीडबैक लेकर छपवाऐंगे। कुछ माह पश्चात बाबाजी का मसूरी में 'सिद्ध' में आना हुआ, हम लोग भी उस समय शीला जी के मायके गर्मी की छुट्टी मनाने मसूरी आये हुए थे। बाबाजी से मिलने पहुँचे तो वो हमें एक दस्तावेज़ दिये जिसका शीर्षक था 'जीवन विद्या अध्ययन बिन्दु'। बाबाजी बताये "यह वही नोट है जो तुम लोगो ने अमरकंटक में लिखा था, इसे और समृद्ध किया है, देख के बताना कुछ कमी हो तो, मैं ठीक कर लूँगा।" हमने घर जाकर उसे पढ़ा और अगले दिन बाबा जी के पास पहुँचे तो उन्होने पूछा "क्या फीडबैक है?" मैने बोला "मुझे तो ठीक लग रहा है"। "और तुम्हे?" बाबाजी शीला जी से पूछे, वे बोलीं बाबाजी बिन्दु तो सब ठीक हैं थोड़ा grammer (व्याकरण) कौ सुधारा जा सकता है। बाबाजी थोडा आवाज़ को कड़ा कर के पूछे "व्यापक दाड़ी-मूँछ लगाऊँ या पेटीकोट पहनाऊँ? ये सब लिंग वाचक, काल वाचक भाषा अस्तित्व पर लगता नहीं है।" हम समझ गए कि इस दर्शन की अभिव्यक्ति, संप्रेषना व प्रकाशन प्रचलित भाषा के नियमों से आगे है।

उत्पादन कार्य के लिये प्रोत्साहन

वर्ष 2007 में हम लोग ने उस समय के जीवन विद्या के शिविरों के लिये प्रमुख स्थलि के रूप में उभरे केन्द्र 'सिद्ध' मसूरी से जुड़ने का निर्णय लिया। 'सिद्ध' में वेतन मुक्त विधि से भागीदारी करते हुए अपने स्वालंबन के लिये अपने ननिहाल रुड़की के एक छोटे से गाँव में 4 एकड़ ज़मीन लेकर प्राकृतिक खेती करने का कार्य शुरू किया। बाबाजी हमारे इस निर्णय से बहुत प्रसन्न हुए। अब जब भी बाबाजी से मुलाक़ात होती, वे खेती के बारे में और खेत में लगे आम के पेड़ों के बारे में अवश्य पूछते। हम भी उन्हें बताने में बहुत खुश होते रहे। इसी क्रम में हमने अपने घर से कुछ उत्पादन कार्य शुरू किया जिसमें अनेक प्रकार के घरेलू उत्पाद बनाने का प्रयोग किया। सभी उत्पादों को बाबा जी ने जाचाँ उन्हें सुधारने के लिये सुझाव दिये और हमारे उत्पादों के एक प्रमुख उपभोक्ता भी बने। हमारे द्वारा उत्पादित स्किन क्रीम "बी सैल्व", जिसे बाबाजी 'मलहम' कहते थे, उसे हमसे कई बार आर्डर कर मंगवाया और उसके लिये हमें हर बार निर्णयपूर्वक पैसे दिये। उस समय हमारा ध्यान उत्पादन कार्य पर तो था परंतु विनिमय पर नहीं रहा। हम अपने उत्पाद अधिकतर अपने जान-पहचान के लोगों में ही उपलब्ध कराते थे; बाबा जी को यह बात पता थी।

सन् 2010 के आसपास की बात होगी, एक बार मैने बाबाजी को बताया कि हमने अपने घर के लिये 5 किलो घी इन्दौर संस्थान से प्राप्त किया है और उसकी गुणवत्ता से बहुत संतुष्ट हैं। यह सुनकर बाबाजी बोले अगली बार वहाँ से 20 किलो घी मंगवाना, मैने बाबाजी को बताया कि इतने सारे घी की हम चार लोगों के परिवार में खपत नहीं होगी। उन्होने कहा, "तुम्हारे यहाँ जितना खपेगा उतना रखो बाकी अपने परिचितों में पहुँचाओं, इससे इन्दौर के उत्पादकों का तुम सहयोग कर पाओगे।" इससे हमे समझ आया कि हम लोगों में जो भी लोग उत्पादन

से जुड़ते हैं उनका उत्साह बढ़ाने के लिये उनके उत्पादनों को जगह-जगह पहुँचाने में हमरी ज़िम्मेदारी और भागीदारी है।

द्दष्टा बिटिया की जिज्ञासा

वर्ष 2008 की बात होगी हम लोग बाबाजी के पास अमरकंटक आये हुए थे। द्दष्टा बिटिया ने 2007 में अपना पहला शिविर किया था और अब जीवन विद्या की बातों में रुचि लेने लगी थीं। इसी क्रम में द्दष्टा ने 'जीवन विद्या एक परिचय' पढ़ने का प्रयास किया था पर पठन पूरा नहीं कर पायी थी। पुस्तक को पढ़कर द्दष्टा के मन में एक जिज्ञासा बनी थी। द्दष्टा बचपन से ही थोड़ी संकोची स्वभाव की है, परंतु मेरे कहने पर उसने घबराते हुए बाबा जी से पूछा "जीवन विद्या एक परिचय पुस्तक में लिखा है कि आपको साधना काल में देवी-देवता का साक्षातकार होता था, तो क्या देवी-देवता होते हैं?" बाबाजी ने तुरंत ही उत्तर दिया "नहीं होते बेटा।" उसने बहुत ही धीमी अवाज़ में पूछा "तो जो आपको दिखता था वो क्या था?" बाबाजी उसकी बात पूरा सुन नहीं पाये तो मैने प्रश्न को ऊंची अवाज़ में दौहराया। सुनकर बाबाजी बोले "कुछ नहीं था बेटा, केवल हमारा कलपना ही था जो हमें दिखता रहा"। इस पर मैने पूछा "बाबाजी यह आप कैसे कह सकते हैं कि वो केवल आपका कलपना ही था ना कि कोई वास्तविकता?" बाबाजी बोले "वो देवी-देवता जो दिखता रहा वो हमारा प्रश्न का उत्तर कहाँ दिये, वो वे सब ही बोलते रहे जितना हमारा अध्ययन-अभ्यास से बना स्वीकृति था, उससे अधिक वे कुछ नहीं बताये।" यह सुनकर द्दष्टा बिटिया और मेरी, दोनो की संतुष्टि हो गई।

प्रबोधन के लिये मार्गदर्शन

वर्ष 2010 आते तक मुझे यह भरोसा होने लगा कि मुझे मध्यस्थ दर्शन का सार भाग सूचना रूप में तो स्पष्ट होने लगा है। लेकिन अभी शिविर में प्रबोधन करने की स्वीकृति नहीं बनी थी। बांदा सम्मेलन से कुछ समय पहले अमरकंटक जाना हुआ तो बाबाजी ने पूछा शिविर लेना कब शुरू करोगे? मैने उत्तर दिया, "पूरा समझने के बाद, क्योंकि अधूरी समझ से उन्हें मैं गलत सूचना ना दे दूँ। बाबाजी ने मुझसे पूछा, "जिन लोगों को तुम गलत सूचना देने से डरते हो, वो अभी क्या कर रहे होंगे? क्या वो किसी जागृति के अर्थ में कुछ भी सोच-विचार, बातचीत अथवा कार्य-व्यवहार कर रहे होंगे? क्या तुम्हारी अधूरी समझ की सूचना सुनने के बाद उनमें जागृति की ओर कोई भी चेष्टा नहीं होगी; क्या तुम इसे पूरे विश्वास से स्वीकार सकते हो?" यह सुनकर मैने शिविर लेने का मन बना लिया। बाँदा सम्मेलन में ही सोम भैया के माध्यम से महाराष्ट्र में शुरू होने वाले जीवन विद्या के शिविरों के लिये प्रबोधन करने का अवसर सामने आन पड़ा। जनवरी 2011 में नानदेड़ में मेरा शिविर लेना तय हुआ। पहली बार शिविर लेना था वह भी एकदम अंजान लोगों का एकदम अनजान क्षेत्र में, एकदम अकेले। वहाँ कोई भी और उपस्थित नहीं होने वाला था जिसका जीवन विद्या से कोई भी परिचय हो। ऐसे में मन तो घबरा रहा था, इसलिये नानदेड़ जाना वाया अमरकंटक तय किया। अमरकंटक पहुँचा तो बाबाजी ने आने का प्रयोजन पूछा तो बताया कि ऐसे-ऐसे शिविर लेने जा रहा हूँ और आपके आशीर्वाद की आवश्यकता है। वे हँसकर बोले "मेरा आशिर्वाद तो हमेशा तुम्हारे साथ है, और तुम्हारा शिविर तुम्हारी अपेक्षा से कहीं अधिक सफ़ल होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। जाओ और निश्चिंत होकर शिविर लो।" यह सुनकर मैं एकदम आश्वस्त हो गया। नानदेड़ का शिविर सही में बहुत ही सफ़ल रहा जिसके कारण मुझे अपने शिविर लेने पर अच्छे से भरोसा हो गया, और फ़िर तो शिविरों की एक लड़ी सी लग गई। किस

व्यक्ति को कब स्नेह, कब डाँट, कब प्रोत्साहन, कब उत्साहवर्धन चाहिये यह बाबाजी भली-भांति पहचानते थे और निर्वाह करते थे।

बाबाजी की डाँट

शिविर लेने से एक प्रतिष्ठा मिलती है, साथ में अपने ही साथियों की स्वीकृति और उनसे सम्मान भी मिलता है, जिससे थोड़ा-मोड़ा अपने विद्वान होने का भ्रम भी अपने में होने लगा था। वर्ष 2013 में अमरकंटक में एक अवधारणा गोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें बहुत से साथी भागीदार हुए, जिनमें उस समय के अधिकतर शिविरों को संबोधित करने वाले व दर्शन का पठन कराने वाले साथी भी शामिल थे। गोष्ठी में एक दिन हम लोगों की किसी मुद्दे पर बहुत बहस हुई और हम लोग आपस में किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाये। तो यह तय हुआ कि बाबाजी के सामने इस मुद्दे पर अपने-अपने पक्ष को रखते हैं और उनसे समाधान सुनते हैं। बाबाजी के पास पहुँचकर जब उस मुद्दे को रखा तो बाबाजी ने बहुत ही कठोर शैली में कहा "तुममें से किसी का भी श्रवण नहीं हुआ है, अध्ययन तो दूर की बात है।" यह सुनकर मेरा मन तो एकदम बैठ गया। अगले कुछ दिनों में ही अछोटी में छ: मासिक के अध्ययन शिविर में जाने का मन बना लिया। अगर वह डाँट नहीं मिली होती तो शायद अध्ययन शिविरों में पुस्तक पढ़ाने तो जाना होता परंतु स्वयं पठन करने के लिये कभी भी जाना नहीं होता।

आचरण प्रमाण

बाबाजी से ज्ञान संबंधी बातें तो हमने सुनी ही, साथ ही व्यवहार कौशल को भी देखा। उनके साथ जो समय बिताया उसमें उन्हे कभी भी किसी भी प्रकार का भेद-भाव करते नहीं पाया। अमीर-गरीब सभी के साथ बराबर का सम्मान; सभी धर्मों, संप्रदायों, पंथ, जाति के लोगों के साथ एक समान बर्ताव; बच्चों, युवाओं, प्रौढों, वृद्धों सभी आयु वर्ग के साथ एक समान स्नेह, महिला-पुरुष सभी को उनकी योग्यता अनुसार अवसर व प्रोत्साहन, यह सब बाबाजी को जीते हुए 23 साल के अंतराल में देखा। उनकी परस्परता में सभी आवेशों को शांत होते देखने का अवसर मिला।

सौभाग्य

बाबाजी के साथ में मुझे हमेशा तर्क संगत संवाद, न्याय सम्मत व्यवहार व प्रयोजन पूर्ण मार्गदर्शन ही प्राप्त हुआ। यह सब याद करता हूँ तो लगता है यह हमारा/मेरा बड़ा सौभाग्य रहा कि 'बाबाजी का साथ' हमारे परिवार को, हम दोनो पती-पत्नी को और मेरे को व्यक्तिगत रूप में मिला। इतने बड़े सौभाग्य का मिलना एक ही रूप में सार्थक हो सकता है, जब हम मध्यस्थ दर्शन को 'स्वयं में', 'परिवार में' व अन्य सभी परस्परताओं में आत्मसाध कर मानव परंपरा को स्थापित करने में अपनी भागीदारी का निर्वाह करें। इसी विधि से यह सौभाग्य हमारे साथ व आने वाली पीड़ियों के साथ सदा-सदा बना रह सकता है।

याथार्ता के प्रेरणा स्रोत श्रद्धेय बाबाजी के प्रति सदा-सदा कृतज्ञता भाव के साथ।

अशोक गोपाला (सपरिवार)

रायपुर

मार्गदर्शक व संरक्षक

श्रद्धेय बाबाजी का स्मरण करते हुए, उनसे प्राप्त समझ और उपलब्धियों को आप सब से साझा करते हुए मैं गौरव महसूस कर रही हूँ। साथ ही बाबाजी के योग्य बनाने की पात्रता जिन्होंने विकसित की- उन सभी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

मेरा पहला जीवन विद्या शिविर 1996 में आदरणीय श्री गणेश बागड़ियाजी का हुआ; और लगातार छः महीने के अंतराल में 8-10 शिविर हुए। वही समय था, जब अन्जनी भैयाजी कई बार बाबाजी को घर लेकर आते थे; पर बाबाजी की भाषा समझ नहीं आती थी; और न ही उनके व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ता था। अन्जनी भैयाजी और राजन महाराजजी के प्रति स्वीकृति थी, वो बाबाजी को मानते थे, इसलिए मानना शुरू हुआ। बाबाजी की भाषा बिल्कुल समझ नहीं आती थी।

पहले से मैं विपश्यना-साधना करती थी। बाद में भी यही लगता था कि खुद के करने योग्य विपश्यना ही है। बोलने में जीवन विद्या की भाषा उपयोग होने लगी।

2006 तक 10 वर्ष मैं दोनों विधियों में मगन थी। बाबाजी का आना निरंतर बना रहा। एक दिन बाबाजी ने धीरेन (मेरे श्रीमानजी) से कहा, "जैसा तुम्हारा घर है, वैसा ही विद्यालय बनाना। जिनके पास पैसे सड़ रहे हैं, उनके बच्चों के लिए विद्यालय खोलना है। उनको जैसी सुविधा की आदत है, वैसी देना; और शिक्षा की वस्तु जैसी हम चाहेंगे, वैसी होगी।" उन्हीं दिनों 1997-98 के करीब बाबाजी का आना हुआ- वी।आई।पी रोड स्थित सत्यम् बाल संस्थान पर, जो बच्चों के ध्यान शिविर के लिए तैयार हुआ था। बाबाजी ने वहाँ पहुँचते ही कहा कि यह तो विद्यालय की जगह है। पर हम अपने आप में मगन थे, बाबाजी को सुन नहीं पा रहे थे। उसका एक कारण यह था कि जीवन सहज था, कोई पीड़ा नहीं थी।

बचपन से कुंठा, निराशा, शिकायत, दीनता का वातावरण नहीं मिला। कभी परिवार में यह सब देखा ही नहीं, मन हमेशा अच्छा ही रहता था। इसका श्रेय माता-पिता, बड़े चारों भाई-बहन, दादाजी-नानाजी को जाता है, क्योंकि इन सबको मैं अच्छा जीता हुआ ही देखी हूँ, आज भी ऐसा ही है।

विवाह के बाद स्थिति सोने पे सुहागा जैसी रही। जीवन साथी के रूप में धीरेन मिले, जिन्होंने मुझे मुझसे बेहतर जाना और जिस विधि की ओर मेरा आकर्षण होता, उसमें अपना तन-मन-धन अर्पित-समर्पित किया (2007 में उनका शरीर शान्त हुआ)।

एक बार बाबाजी ने मुझसे कहा था कि ध्यान करने की चीज़ नहीं बल्कि देने की चीज है। तब मैं इस वाक्य को नहीं समझी थी, पर 2007 के बाद अपने अन्दर संतुलन को देखकर यह आंकलन कर पायी कि तीन वर्ष जब धीरेन बीमार रहे, उस समय मैंने ध्यान किया नहीं -बिलकुल भी; सिर्फ़ और सिर्फ़ ध्यान दिया। इसलिए मैं संबंध का निर्वाह कर पायी। जीवन भर जो अर्पण-समर्पण उनका था मेरे प्रति; उसका प्रतिफल ही था कि मैं उनकी सेवा

में समर्पित रही और कैंसर जैसी बीमारी में वेदना विहीन मृत्यु घटित हुई। बाबाजी ने कहा था कि एक वर्ष तक की पूर्णता ही थी कि मैं आज तृप्त हूँ, संतुलित हूँ इस संबंध में।

और भाई-बहन संबंध में जब विद्यालय खुला और बाबाजी ने कहा कि एक वर्ष तक माँ के उपकारों की ओर ध्यान आकर्षण कराना होगा। इस क्रम में स्वयं की माँ की ओर ध्यान गया और पूरा बचपन विश्लेषित हो गया। माँ के उपकारों पर ध्यान गया, तो चित्रण खुलता चला गया। सारी स्मृतियाँ उमड़-उमड़ कर सामने आने लगी। माँ के साथ-साथ पिता के उपकार जुड़ते गए, माता-पिता के साथ चारों बड़े भाई-बहनों का सहयोग दिखने लगा। मेरे जन्म से पालन-पोषण, संरक्षण तक ये सभी स्तम्भ जैसे दिखे। तब से आज तक मैं खुद को जाँच रही हूँ कि मेरी भाषा-भंगिमा-अंगहार इन सबके सामने नियंत्रित है। आगे भी यह नियंत्रित बना रहे, यह स्मरण में रहता है। इसलिए माता-पिता और भाई-बहन संबंध में भी तृप्ति का अनुभव करती हूँ।

मेरे जीवन की ये सारी उपलब्धियाँ बाबाजी द्वारा कही गई सारगर्भित बातों के आधार पर हैं। मुझे याद है कि एक बार विद्यालय खुलने से पहले 2008 में मैंने बाबाजी से पूछा, "स्वयं में विश्वास कैसे आयेगा?" तब बाबाजी ने कहा, "ज़िम्मेदारी वहन करो।" उस समय मैंने गौशाला खोलने का निर्णय लिया। उस समय यह समझ आने लगा कि सामूहिक रूप में किसी भी कार्य की ज़िम्मेदारी लेने पर ही स्वयं के व्यवहार पक्ष का आंकलन होता है। व्यक्तिवादी कार्यक्रम और व्यक्तिवादी निर्णय के आधार पर प्राप्त सफलताओं से हम सालों-साल अच्छे बने रह सकते हैं; यह भ्रम टूटने लगा। उसी क्रम में बाबाजी के साथ घर पर ही सत्संग चल रहा था शिक्षा पर। बाबाजी बोल रहे थे; तभी मेरे मुँह से निकला कि बाबाजी वी।आई।पी। में विद्यालय प्रारंभ करते हैं। तत्क्षण बाबाजी ने कहा, "यह तो होना ही था"। इस लाईन को बोलने में उन्होंने बारह वर्ष का इंतज़ार किया। 1996 में कहा था, "यह विद्यालय की जगह है" और मैंने प्रस्ताव रखा 2009-10 के करीब। उनकी धीरता आज भी मुझे प्रेरणा देती है। 2010-11 में हम 8-10 बहनों ने विद्यालय की ज़िम्मेदारी वहन की और अब यह निष्कर्ष पुष्ट होता जा रहा है कि कार्य के साथ ही व्यवहार का प्रमाण है। बिना कार्य के व्यवहार प्रमाणित नहीं होता।

कार्य और व्यवहार के संयुक्त रूप में ही व्यवहाराभ्यास है। सब साथ-साथ हैं, कोई कम-ज्यादा नहीं है। सबकी योग्यता एक-दूसरे के लिए पूरक है। सर्व सहमति पूर्वक निर्णय तक पहुँचना ही विचारों में समाधान है, ऐसा भासने लगा है। क्योंकि निर्णय लेने के कई क्षण ऐसे होते हैं, जब किसी मुद्दे पर असहमति होते हुए भी उसे स्वयं में पचाना होता है ताकि संबंध पर उसका प्रभाव न पड़े, स्नेह में बाधा न आए - यह प्राथमिकताएं चिंतन के लिए बाध्य करती हैं। जब जब न्याय पूर्वक धीरता का निर्वाह होता है, स्वयं में विश्वास बढ़ता है।

बाबाजी द्वारा प्रतिपादित मध्यस्थ दर्शन "अस्तित्व सह-अस्तित्व है", जितना समझ आता जा रहा है; उतना साथ-साथ जीना प्राथमिकता में आते जा रहा है। यही कारण है कि अस्वीकृतियों को स्वीकृतियों में बदलना बाध्यता है, और शायद यही पुरुषार्थ है। यही विचारों में परिमार्जन का आधार है।

बाबाजी हमेशा कहते थे, "जीने में उतारोगे, तब रीढ़ की हड्डियों से पसीना निकलेगा।" इस लाईन का अर्थ धीरे-धीरे स्पष्ट हो रहा है कि पुरानी मान्यताएँ, जीव चेतना में जीने का अभ्यास, अपने-पराये की दीवार, व्यक्तिवाद पूर्वक जीने का अभ्यास, अहमता इन सबको पार करने में, न्याय घटित होने तक जीवन निचुड़ जाता है। पर एक

न्यायपूर्ण निर्णय पुनः जीवन को स्नेह भाव से भर देता है। फ़िलहाल यह सिलसिला चालू है; इच्छा-विचार-आशा शिकायत मुक्त होकर समाधानित होने में व्यस्त है। जब-जब शिकायत या अस्वीकृति की स्थिति में होती हूँ, दुखी रहती हूँ, तब-तब अध्ययन प्रक्रिया सूक्ष्म होती है, जानने की क्रिया प्रखर होने लगती है। मानव के मूल स्वभाव की ओर ध्यान जाने लगता है। "जीवन रूप में सब समान हैं; मानव जाति को जो परम्परा में मिला, उसे जीवन वहन करते आया है; मानव गलती करना नहीं चाहता", ये सभी सूत्र शिकायत मुक्त होकर, न्याय पूर्ण सोचने में सहायक होते हैं। सामान्य स्थिति में अध्ययन भी सामान्य गति में चलता है, सूक्ष्मता तक नहीं पहुँचता।

बाबाजी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि मैं भी प्रमाणित हो जाऊँ। और इस बात का विश्वास है क्योंकि मेरे अपनों ने मुझे बाबाजी के योग्य बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। 2007 में धीरेन ने जाने से कुछ दिन पहले ही कहा कि "तेरे लिए बाबाजी की लाईन ठीक है, उसमें रहना।" उनके जाने के बाद बाबाजी ने मेरे माता-पिता से पूछा, "बच्चों से पूछा क्या? ये जीवन विद्या समझे, आप आश्वस्त हैं?" तब मेरे माता-पिता ने कहा, "ये आपके संरक्षण में हैं, इस बात से हम एकदम आश्वस्त हैं, और हमेशा इसके साथ हैं।" आज मैं सोचती हूँ कि दस वर्ष तक बाबाजी मेरे घर उस समय आये जब मैं उनको सुनती भी नहीं थी, समझती भी नहीं थी। फिर भी उन्होंने मेरा साथ नहीं छोड़ा। और आज मैं उन्ही के द्वारा संचालित हूँ। यह नियति सहज व्यवस्था है। धीरे-धीरे कर्म दर्शन भी समझ में आ रहा है। बाबाजी ने एक बार कहा था, "तुम्हे पुण्यवश सब मिला है।" आज बाबाजी के व्यक्तित्व, उनके ज्ञान की विशालता को देखने की दृष्टि जितनी विकसित होती जा रही है, उतना स्वयं के प्रति व्याकुलता बढ़ती जाती है कि इस शरीर यात्रा में न कोई पीड़ा थी न जिज्ञासा। फिर मैं कैसे सही की ओर आकर्षित होती चली गई? बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के कैसे बाबाजी का स्नेह मिला। पिछले शरीर यात्राओं में कौन से ऐसे कर्म रहे होंगे, जो फ़लित होकर, नियति सहज विधि से बाबाजी तक पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त करते गए। यह जानने की इच्छा शेष है।

इस मायने में मैं स्वयं के जीवन से प्रेरित भी होती हूँ कि जैसे मुझे संस्कारवश वातावरण मिला, वैसे ही अनेक पुण्यशील जीवन हैं। उन्हें दर्शन से जोड़कर, प्राथमिक विद्यालय के वातावरण को पुष्ट करना है; ताकि प्रत्येक मानव संतान संस्कारवान हो, पुण्यशील हो और सही उम्र में सही वस्तु मिले। इस शिक्षा-संस्कार अभियान से जुड़े मेरे सभी भाई-बहन, बच्चों और वृद्धजनों की परस्परता का विश्वास है कि ऐसा ही होगा। शुभ होगा, मंगल होगा, कल्याण होगा। धरती स्वर्ग होगी और मानव देवता होंगे।

आज नहीं तो कल होगा; हमारे सामने नहीं तो अगली पीढ़ी में होगा; पर होगा। यही शुभ कामना है, शुभ इच्छा है, शुभ कार्यक्रम है, हम सबका शुभ संकल्प है। आपकी दया, कृपा, करुणा है।

अनीता शाह

रायपुर

सुख का पथ

जीवन विद्या परिवार से जुड़े मित्रों की इच्छा है कि पूज्य बाबा जी (श्रद्धेय नागराज जी) के साथ बिताए गये समय को एक विशेषांक के रूप में निकाला जाय जिसमें पूज्य बाबाजी से मिलने के पहले और उनसे मिलने के बाद स्वयं में क्या परिवर्तन हुआ इस पर अपने वक्तव्य को लिपिबद्ध किया जाए। यह नेक विचार है इस अर्थ में कि यह किसी व्यक्ति के लिये प्रेरक हो।

लगभग २१ वर्ष पूर्व सन १९९५ में मुझे एक पोस्टकार्ड मिला, जो मेरे बड़े भाई श्री प्रेम सिंह द्वारा भिलाई से भेजा गया था। उसमें उन्होंने लिखा था, "मैं इस समय ऐसे महापुरुष के साथ रह रहा हूँ जिनका दावा है कि उनके पास संसार के सात सौ करोड़ लोगों के प्रश्नों का उत्तर है। जिसे मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूँ।" इस पत्र में उन्होंने लिखा कि व्यक्तिवादी निर्णय परिवार में ठीक नहींनहीं होते। पूज्य बाबाजी के बारे में बताया कि उनके पास असाध्य रोगों का इलाज भी है, यदि मैं चाहूँ तो जीजाजी को भिलाई लाकर दिखा भी सकता हूँ। हमारे एक बहनोई थे श्री प्रताप सिंह चौहान, जो छतरपुर (म. प्र.) में रहते थे तथा वकील थे। संयोग से उनके दोनों गुर्दे खराब हो गये थे, जिनका कोई इलाज सम्भव नहीं था। उन्हें लेकर मैं भिलाई पहुँचा, तभी प्रथम भेंट पूज्य बाबाजी से हुई। बाबा जी उस समय श्री नरेन्द्र मिश्र जी के घर में चिकित्सा शिविर हेतु १५ दिन रुकते थे। अपने स्वभाव अनुसार सबसे पहले कुशल क्षेम के साथ हाल चाल पूछा और हम लोगों के रुकने की व्यवस्था करवाई तथा कहा कि सुबह खाली पेट नाड़ी देखकर दवा देंगे।

अगले दिन हम समय पर पहुँचे और उन्होंने नाड़ी देखी तथा साधन भैया को दवा देने के बारे में विस्तार से समझाया तथा विश्राम करने के लिये कहा। अगले दिन पुनः जब पहुँचे तो उन्होंने पूछा कि कैसा लगा। वकील साहब कई दिनों से भोजन नहीं कर पा रहे थे, उस दिन उन्होंने भर पेट खाना खाया था। यही उनके लिये आश्चर्य की बात थी। दवा ने अपना कार्य करना प्रारंभ कर दिया है - ऐसा बताए। इसके बाद उन्होंने न्याय एवं संविधान को लेकर कई प्रश्न वकील साहब से पूछे। इस तरह के प्रश्न मेरे लिये नये थे, जिनके बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता था। इस प्रकार लगभग सात दिन उनके साथ रहने का अवसर मिला। यह समय सर्दियों का था। इसी समय मार्च में बाबाजी का मेरे गाँव बड़ोखर-खुर्द आना तय हुआ।

नियत समय में बाबाजी एवं साधन भैया गाँव आये। वकील साहब के स्वास्थ्य लाभ होने के कारण बाबाजी के बारे में लोगों में बहुत कौतूहल था, इस कारण भीड़ बहुत बढ़ गई। सभी बाबा जी को नाड़ी दिखाना चाहते थे जो बहुत ही लंबा हो गया। सुबह से दोपहर बाद तक यही चलता रहा। इसके बाद शाम के समय में आँगन में सभा हुई, जिसमें गाँव के लोग थे तथा बाहर से आये हुये लोग भी थे। बाबा जी ने लोगों से पूछा कि गाँव में, परिवार में वैर विरोध को खत्म करना है कि नहीं? सुख, समृद्धि से रहना चाहते हो कि नहीं? सभी ने स्वीकारा कि रहना चाहते हैं। तब यहाँ एक शिविर लगाने की बात तय हो गयी, जो आगे जून माह में संपन्न होना तय हुआ। वापसी में सड़क मार्ग से मैं बाबा जी के साथ ही अमरकंटक पहली बार आया। यहाँ बाबा जी के परिवार में सभी से परिचय हुआ। पूज्य माताजी एवं अम्बा दीदी के व्यवहार से मैं बहुत प्रभावित हुआ। मैं यहाँ चार-पाँच दिन परिवार के साथ रहा। पहली

बार बाबाजी के साथ रहते हुये मन में एक सुखद कल्पना होने लगी कि ऐसे ठसके के साथ हम भी रह सकते हैं। बाबा जी का व्यवहार का तरीका बहुत प्रभावित करता था। यहाँ का प्राकृतिक वातावरण भी अपने आप में आकर्षित करने वाला है ही। इस प्रकार इन पाँच दिनों में कुछ विशेष आशा एवं उम्मीद के साथ वापस बड़ोखर आ गया।

जून माह में इस प्रथम शिविर में मैं तथा गाँव के प्रतिष्ठित बुजुर्ग एवं युवा मिलाकर लगभग ३० लोग शामिल हुये। इस शिविर में बाबा जी के साथ श्री गणेश बागड़ियाजी एवं साधन भैयाजी ने भी प्रबोधन किया। प्रारम्भ बाबा जी ने अस्तित्व एवं अस्तित्व में सत्ता में संपृक्त प्रकृति के बारे में विस्तार से बताया। पहला दिन अपनी तथा परिवार की आवश्यकताओं को जाँचने तथा निश्चयन करने सम्बन्धित चर्चा का रहा। अंततः यह तय हुआ कि अपनी सोच ही अव्यवहारिक एवं नियति से भिन्न होने के कारण वह फलीभूत नहीं हो पाती और हमारे दुःख का कारण बनती है और हम पर-दोषारोपण करते रहते हैं। बीच-बीच में बाबा जी बताते थे कि मनुष्य ही भ्रमित रहते हुये दुःखी रहने के लिये बाध्य रहता है तथा समझदारी पूर्वक समाधानित रहते हुये सुख और समृद्धि का अनुभव करता है। शरीर को जीवन मान लेना ही भ्रम है। इससे जीवन की सभी क्रियाएँ क्रियाशील नहीं रहने के कारण स्वयं में अंतर्द्वंद बना रहता है। प्रकृति में मनुष्य को छोड़ कर सभी अवस्थाएं अपने-अपने आचरण में क्रियाशील हैं। मनुष्य ज्ञानावस्था में होने के कारण समझ अथवा ज्ञान के आधार पर ही मानवीय आचरण में जी पाता है। इससे पूर्व मैंने "सुनो सबकी करो अपने मन की" मान रखा था। अपने मन में केवल भय एवं प्रलोभन से संचालित सभी क्रियाकलापों अर्थात परम्परागत रूप से जिसे भी सम्मान का कार्य माना उसे ही स्वीकार कर रखा था। जैसे धन से, बल से, पद से मजबूत रहना ही सम्मान का आधार होता है और इसे किसी भी प्रकार से प्राप्त कर लेना ही परम सफलता तथा बुद्धिमानी है।

अगले सात दिनों में पता लगा कि अस्तित्व में होना निश्चित है तथा केवल मनुष्य में होने के आधार पर रहना शेष है जो केवल सह-अस्तित्ववादी सोच विचार के आधार पर सम्भव है। विगत की सटीक समीक्षा इसके पहले मैंने कभी नहीं सुना था। आज के समय में हम आदर्शवाद मिश्रित भौतिकवाद तथा ईश्वर आधारित रहस्यवाद में फंसे हुये हैं। दिखावा आदर्शवाद का तथा जीना भौतिकवाद का रहता है। इससे बाहर निकलने का एकमात्र रास्ता यही है कि सही को समझा जाए तथा आचरण में लाया जाए। जब भी कोई अवांछित घटना घटित होती थी तो कहते थे कि ईश्वर की मर्जी, ये तो होनी है, इस पर कोई वश नहीं है, विनाश काले विपरीत बुद्धि, यह हमारे भाग्य में ही है, हमारे प्रयास में कमी रह गई आदि-आदि। इस प्रकार अपने को सांत्वना देकर काम चलाते रहे। मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्व वाद) को सुनने के बाद यह निश्चय हुआ कि मनुष्य ही दृष्टा, कर्ता एवं भोक्ता है। मानवीय दृष्टि सम्पन्न होना ही दृष्टा पद है।

प्रथम शिविर में यह अपने में स्वीकृत हो गया कि हमारी सोच गलत थी। अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन ज्ञान के आधार पर इस नए प्रस्ताव को ध्यान से सुनना और अध्ययन करना चाहिए। मुझे ईश्वर, व्यापक, निराकार, परमात्मा, अखण्ड, असीम, खाली स्थान, अवकाश, शून्य, साम्य ऊर्जा, ब्रह्म शब्दों का अर्थ तथा परिभाषा सुनना बहुत प्रभावित किया। मनुष्य ही समझ एवं आचरण के स्तर में देवी, देवता होते हैं; यह सुनकर

बहुत अच्छा लगा। मनुष्य की आवश्यकताएं सीमित एवं निश्चित हैं तथा प्रकृति में संसाधन पर्याप्त हैं। मनुष्य में समाधान होने का मतलब है- सुख और समृद्धि पूर्वक जीना। यही मानव में कल्पनाशीलता का तृप्ति बिंदु है। तब से आज तक इसी उद्देश्य के लिये लगे हैं। इस बीच बाबा जी के सान्निध्य में नागौद, कानपुर, झाबुआ, इंदौर, बिजनौर, अछोटी, मसूरी, दिल्ली, सरदारशहर (चुरू, राजस्थान) तथा अपने गाँव में साथ रहने का अवसर मिला। विगत पाँच वर्षों (२०११) से मैं सपरिवार, पूज्य बाबा जी एवं अम्बा दीदी के संरक्षण में अमरकंटक में रह रहा हूँ जो मेरे जीवन के श्रेष्ठ अविस्मरणीय पल हैं।

पूज्य बाबा जी का व्यवहार-कार्य कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित विधि से सदैव समान रहा; यह मुझे बहुत प्रभावित किया है। मैं पूज्य बाबाजी के प्रति कृतज्ञ रहते हुए तथा उन सभी भाइयों, बहनों, बन्धुओं के प्रति भी आभार एवं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे यह अवसर उपलब्ध कराने में सहयोग किया। पूज्य बाबाजी द्वारा अनुसंधानित परम सत्य मुझे तथा सम्पूर्ण मानव जाति के लिये सर्वदा, सर्वथा उपकारी रहेगा। पूज्य बाबाजी की प्रशंसा वर्णन के लिये शब्द थोड़े हैं, तथा उनका व्यक्तित्व व प्रभाव विशालतम है। पूज्य बाबाजी प्रेरणा रूप में सदैव हमें उपलब्ध हैं। इसी शुभ कामना के साथ शेष आगे समय में स्वयं समझ सम्पन्न होने के लिये सोचना एवं जीना है।

सुशील कुमार सिंह

अमरकंटक

पीड़ा से उत्सव की ओर ...

पीड़ा से उत्सव की ओर
पीड़ा की नहीं दिखती अब छोर
ये तो है ख़ुशियों की भोर
इस ओर, उस ओर
सब ओर ...
आपके साथ-साथ
थामे एक दूजे का हाथ
आइए करें जीवन नित्य उत्सव
की शुरुआत।।

बहुतायत ये होता हुआ देखा जाता है - जब भी हम अभिव्यक्त होने जाते हैं तो कई मर्तबा, भाव अधिक हो जाते हैं, और शब्द कम पड़ जाते हैं भाव को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने में। आज फिर यही हो रहा है। कृतज्ञता रग-रग में महसूस कर रही हूँ। नमन, स्मरण करते करते कितनी ही बार आँखें नम भी हुई हैं और शब्द कम पड़ते

दिख रहे हैं। मेरा ये पूरा प्रयास है कि बाबा जी के साथ मेरे संस्मरणों को दर्शन की रौशनी में मेरी यात्रा और तद्-अनुसार फल परिणामों को मैं यथावत रख सकूँ। फिर भी निवेदन है कि भावों को देखा जाए। बाबा जी के साथ की चर्चा को शब्दशः रखने का प्रयास है।भाव पूर्ण रहेंगे, इस ज़िम्मेदारी के साथ मैं ये संस्मरण और मेरी यात्रा लिख रही हूँ। इनका क्रम वर्ष-अनुरूप ऊपर नीचे हो सकता है। कुछ भी अनुचित के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

30 अप्रैल 1996 या शायद 1997 वर्ष ठीक से याद नहीं, पर दिन यही था। स्थान था जो अब अभिभावक विद्यालय है, सत्यम के नाम से तब जाना जाता था। मैं खड़ी थी, श्री राजन महाराजजी के सामने और वो मुझसे कह रहे थे कि नीति डर के जीना छोड़ दे। जो गोली चलाता है, गोली दागते समय वो हिल चुका होता है, फिर वो गोली दूसरे को लगती है। मेरे गुरु आए हुए हैं, कल उनसे आकर मिलो, जीवन विद्या समझो और उपकार करो।' महाराज जी की बात मुझे तीर की तरह लगी। पीड़ा से पीड़ित व्यक्ति समाधान की, थोड़े से सुख की, किसी चमत्कार की तलाश में, नासमझी में, थोड़ी सी भी राहत पाने के लिए सब करता है। वही मैंने किया। बस पहुँच गई, दिये पते पर। पता था, अंजनी भाई का समता कालोनी का निवास। बाबाजी से परिचय के बाद पहला वाक्य था, 'और कुछ अच्छी बात बताओ बेटा?' और मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं था तब। मैं चुप बैठी रही।

इसके बाद 1997-98-99-2000-2001-2002 इतने वर्षों तक मेरा ये नियम रहता था कि बाबा जी के रायपुर प्रवास पर हर बार मैं उनसे मिलने जाती, पता नहीं क्यूँ, और हर बार उस प्रश्न का कोई उत्तर होता नहीं था मेरे पास और हर बार मैं घंटों तक बाबा जी के सामने चुप बैठे रहती। कोई संवाद नहीं, कोई उपदेश नहीं, कोई करो या ना करो नहीं। बाबा जी के सामने मैं बैठ कर क्या सोचती, याद नहीं।

2003-4 में बाबाजी ने अनिता धीरेंद्र शाह बहन जी के समता कालोनी निवास में हम 20-25 लोगों के समक्ष 'मानव व्यवहार दर्शन' और क्रम से 'कर्म दर्शन' पढ़ाना, समझाना, और जिज्ञासाओं के उत्तर देना शुरू किया। यहाँ से शुरू हुआ मेरे प्रश्नों का दौर। प्रश्न पर प्रश्न, कभी जीने से जुड़े, मेरी पीड़ाओं से जुड़े, दूसरों के व्यवहार पर प्रश्न, चाँद सितारों, ज्योतिषशास्त्र, कुंडली, तलाक, शादी, सम्बंध--- प्रश्न, प्रश्न और प्रश्न। डॉक्टरेट करने के सिनाप्सिस से ले कर, सोशल-मैन के विषय तक। कभी-कभी बहुत बाद में, जब मैं सोशल मेन वाली रिकॉर्डिंग सुनती थी तो सोचती थी कि मैंने कितने फ़िज़ूल के भी प्रश्न किए बाबा जी से, पर वाह बाबा जी, कभी तो धीरज खोते। बल्कि, 'इसको ऐसे समझो बेटा' बोल पुनः शुरू करते। पुनः उतनी धीरता, पुनः समझाना शुरू, अस्तित्व से ले कर जागृति क्रम, जागृति तक। 'धरती बहुत बीमार है' से शुरू करते। PhD के synopsis के लिखने पर कहते थे, अध्ययन बिंदु के प्रथम पृष्ठ पर जो लिखा है, वही सिनाप्सिस है। ज्योतिष शास्त्र गणित है, सटीक और एकरूप उत्तर मिलते हैं। पर आत्मा इतनी सूक्ष्म है कि तक किसी ग्रह-गोल का प्रभाव नहीं जाता। कुंडली मिलाकर भी लोगों ने शादी की और बिन कुंडली मिलाए भी, तलाक तो फिर भी हुए; सार्वभौम कहाँ हुआ ये कुंडली मिलाना? समझ के आधार पर ही सम्बंध जिए जा सकते हैं; वरन् कर लो जो मग़ज मारी करनी है।

बाबा जी का हर शब्द जैसे आख़िरी शब्द, हर वाक्य पूर्ण अपने आप में।

एक बार बाबा जी से मैं पूछ बैठी, "बाबा, ये इंग्लिश ग्रामर समझ नहीं आती, गणित समझ नहीं आता, भय लगता है"। बाबा जी सहज से हमेशा की तरह बोले, 'इंग्लिश व्याकरण क्या है? भूतकाल की पीड़ा या भविष्य की

चिंता, बस यही तो है - past tense और future tense। वर्तमान में रहना कहाँ गया ? छूट गया? भय या चिंता ग्रस्त करते हैं और कुछ नहीं। गणित सिर्फ़ आवश्यकताओं की पूर्ति तक के लिए है।' एक तीर और निशाने पर बैठा। और ये होता ही था कि बाबा जी जो बोलते थे, समाधान देते थे, उस पर मेरा ध्यानाकर्षण होता था, उसको पचाती थी और बस उस विषय से जुड़ी समस्याओं के तार सही जुड़ जाते थे। बस यहाँ भी यही हुआ।

इस समय तक बाबा जी और महाराज जी ने ही चर्चाओं में मेरे शिविर लिए थे। पूर्ण शिविर 2004 या 2005 में सोम भाई का किया। उसके बाद अपनी औक़ात समझ आ गई। मुझे अपने लेप्रोसी की समाज सेवा को ले कर जो ग़ुरूर था, वो विद्या ने तोड़ दिया था। भीतर अथाह पीड़ा वश, भय वश जो दिख-समझ नहीं पाता था, उस में सुख की एक धुँधली सी तस्वीर नज़र आई। जीने में उत्साह आया। प्यासे को आख़िरकार पानी मिल ही गया। ये और पुष्ट हो गया कि यही है, जहाँ से मुझे कुछ राह मिलेगी। पीड़ा से भरी मेरी डायरी-शायरी के पन्नों में विराम आ गया था।

फिर बाबा जी के साथ के मुलाक़ात में और पहाड़ टूट पड़ा (उस वक़्त ऐसा ही लगता था)। बाबा जी बोले, 2-2 घंटों का महिलाओं का शिविर लेना शुरू करो। मैं बोली, 'पर बाबा, मैं बोलूँगी क्या?' 'जो समझे हो, वही तो बोलोगे ना बेटा? जियोगे तो बोलने का अधिकार मिलेगा। पर ये ध्यान रखना कि कोई एक भी आया हो शिविर में, तो भी पूरा शिविर लेना'। आज बैठो, याद करो; तो याद आता है कि कितनी ही बार, बाबा जी सिर्फ़ एक ही व्यक्ति को दर्शन समझाते थे। बहरहाल, बाद में यही बात धीरेंद्र शाह भाई ने भी कही।

ख़ैर, बाबा जी के प्रस्ताव पर हिम्मत जुटाई गई और मैंने पहला 2-घंटे का शिविर लिया। यूँ बोलना आसान नहीं था, हर शब्द जैसे वापस मुझे ही भेद देता, मज़बूत करता ये सोचने को कि मैं कहाँ खड़ी हूँ? भारी उथल-पुथल शुरू हो गई थी भीतर। बाबा जी ने मिलने पर पूछा, कैसा रहा शिविर? 'अच्छा लगा बाबा'। 'पर बेटा, अच्छा लगने से अच्छा होता कहाँ है? उसके लिए समझना पड़ता है, जूझना पड़ता है, जीना पड़ता है भई। मैं सिर नीचे कर चुप बैठ गई। बाबा जी से नज़रें मिलाने की हिम्मत नहीं थी, और कुछ था नहीं मेरे पास बोलने को। एक तीर और चुभा - समझने से ही जीना होगा। शिविर के वाक्य याद आए, कर के भुगतो, भुगत के करो; कर के समझो या समझ के करो। बाबा जी मेरी मनोदशा जानते थे, बोले 'बेटा हम आपके उत्साह से ख़ुश हूँ, जीने से ख़ुश हूँ, पर ताक़त तो लगानी ही पड़ेगी ना।" प्रोत्साहन देने और सही का डंडा चला डाँटते हुए भी बाबा जी को देखा था। और ये वो समय था, जब हर रिश्ते में मुझे ढेरों शिकायतें थीं। मेरा वैवाहिक जीवन जर्जर था: मैं टूट के कितने ही क़िस्मों के व्यसन में चली गई थी। नाम, शोहरत; कुछ कमी नहीं थी; पर अपने ही घर जाने का मन नहीं करता था। दिन में भी नशे की आदत पड़ती जा रही थी। शिकवे गिले इस क़दर थे, कि अपनों के कहे हर शब्द किसी हंटर से कम नहीं लगते थे। कुछ सूझता नहीं था; तो ख़ुद की ही कलाई की नसों को कितनी ही बार भेद दिया था मैंने। लगने लगा था मानसिक तौर पर बीमार हो गई थी मैं। इतनी पीड़ाओं के बीच बाबा जी का ये कहना कि हम आपके समझने से ख़ुश हैं, मुझे हिला देता था। फिर बाबा जी ने यूँ ही किसी मुलाक़ात में कहा था, हर व्यक्ति आपके अच्छे होने के लिए एक अवसर है। ये बात जमी। इस पर भीतर कुछ काम होने लगा।

बाबा जी के ही साथ रायपुर मेडिकल कॉलेज में 3 घंटे के शिविर को मैंने को-ऑर्डिनट किया, सुना। कई लोगों का मिलना बाबा जी के साथ को-ऑर्डिनट किया। बहुत से लोगों को बाबा जी के साथ मिलते देखा - चाहे वो ओशो कम्यून के हों, कोई बड़ा सरकारी अफ़सर हो, वक़ील, डॉक्टर हो या कोई अशिक्षित हो, गाँव का हो। बाबा की धीरता वही रहती थी। और उत्साह देखते बनता था। इस बीच बाबा जी ज्योति पुराणिक बहन जी को कहते, नीति जैन से मिलो, साथ रहो, अध्ययन करो। इसी दौरान धीरेंद्र शाह भाई का स्वास्थ्य ख़राब रहने लगा। पर बाबा जी हम सब को एक सूत्र में पिरोने का काम कर रहे थे। धीरेंद्र भाई का जब शरीर नहीं रहा, तो बाबा जी अमरकण्टक से फ़ोन कर कहते थे, 'तुम्हें अनिता का ध्यान रखना है। उसके पास गये कि नहीं? वो कैसी है?" ऐसे ही तरीक़ों से बाबाजी ने धीरे-धीरे हम लोगों को कब एक लक्ष्य में पिरोया, पता ही नहीं चला और मध्यस्थ दर्शन की जड़ें धीरे-धीरे हमारे ही सामने कब रायपुर और फिर अभ्युदय संस्थान - अछोटी और फिर अभिभावक विद्यालय में स्थापित हुई, पता भी नहीं चला। नियति अपना कार्य कर ही रही थी और धरती पर मानव के इतिहास में पहला मध्यस्थ दर्शन पर आधारित 'मानवीय शिक्षा शोध संस्थान', अछोटी में 2002 में खुला।

ये राह कहाँ पहुँचाएगी मुझ पता तो नहीं था, पर ये विश्वास था कि यही वो राह है जो कहीं तो पहुँचाएगी; जीने में दम देती ये राह। विषमतम परिस्थितियों में, दुःख में, अभाव के भाव में, जादू-टोना, बैगा, ज्योतिषियों से ग्रस्त-त्रस्त, अपनी ही नासमझी की मार को कभी कभी हम वक़्त या क़िस्मत के खेल का नाम दे देते हैं। किसी घटना के होने में अपनी ग़लती स्वीकारी नहीं जाती और इल्ज़ामात, अनदेखे-अनजाने ईश्वर से ले कर तमाम सारे लोगों पे हम उड़ेल देते है। यही सबसे आसान तरीक़ा होता है, अपने आप को बेवक़ूफ़ बनाने का भी। अनेकों कमज़ोरियों में से ये मेरी एक कमज़ोरी थी। अपनी ही व्यथा कथा की पीड़ा में रायपुर से निकलती और अछोटी तक जाते-जाते, रास्ते में, जाने कितने ही आवेशों के dividers पर jump मारती, गिरती, रोती, प्रश्नों की पोटली लिए पहुँच जाती, बाबा जी की शरण में। मैंने ये कितनी ही बार देखा कि मैं जिस पोटली को ढो-ढो के बाबा जी के पास पहुँचती - ठीक एकदम वहीं से बाबा जी अपनी बात शुरू करते और मेरी गाँठ खुलना शुरू हो जाती। मेरे बच्चे बड़े हो रहे थे, कॉलेज में पहुँच गए थे और उनके सामने माँ की मिसाल, माँ की तस्वीर बहुत प्रोत्साहनकारी नहीं थी। अपने आप से ही नज़रें मिलना मुश्किल होता था। ऐसे ही किसी जनवरी माह में, आँसुओं से भरी आँखों से, अथाह वेदना लिए मैंने बाबा जी से पूछा, "बाबा, ये बड़े लोग, बड़ी पीढ़ी कब समझना शुरू करेगी?" बाबा जी हर बार बहुत ही ध्यान से आँखों में देखते थे, जैसे बोल रहे हों मुझे तुम्हारी वेदना है। बस उसी तरह उस दिन भी, मुझे याद है, बाबा जी ने कहा, 'उनको समझाना छोड़ दो, अपने से बड़ों को समझाना छोड़ दो बेटा'। (मेरा भाव तुरंत बदला, 'तो फिर क्या करूँ' वाला भाव चेहरे पर था) आपका जीना ही उनके लिए प्रमाण होगा। सह-अस्तित्व को समझो बेटा, नियति क्रम को समझो, विश्वास को समझो। (अब इसके आगे कोई कुछ बोल सकता था ?) 'तो बाबा, अपने से छोटों के साथ क्या किया जाए?' 'उनके सामने हर बात प्रस्ताव के रूप में रखी जाए, आपका जीना ही उनके लिए प्रमाण होगा'। (ये तो धीरता की कसौटी पर अपने आपको घिसने की बात आ गई) फिर अपने समक्ष उम्र वालों के साथ? (अपना वाक्य पूरा भी नहीं किया था कि बाबा बोले) जीने दिया जाए सब को बेटा, किसी के जीने में बाधा ना डाली जाए, आपका जीना ही प्रमाण होगा। (ये तो नींद उड़ाने वाली बात थी, पूरा ठीकरा खुद के माथे) आपका जीना ही प्रमाण होगा ०००० (ये लाइन आज तक मेरे ज़हन में गूँजती है, पहले भूचाल

रूप में गूँजती थी - आश्वस्ति जो कम थी, अब भूचाल कोई नहीं - पूर्ण आश्वस्ति और प्रयास और फल परिणाम पर विश्वास की गुंजन होती है।) ००० बाबा जीने दिया जाए कैसे? वो पग पग पर इतने गड्ढे खोद कर बैठें हैं? (इतना बाबा कहाँ सुनते) बाबा जैसे जानते थे यही प्रश्न आएगा, बोल बैठे, "उनके जीने में बाधा मत डालो, जीने दो उनको और आप अपना अध्ययन करो और जियो।"

एक ऐसी ही यात्रा में जब घर के व्यापार में घाटा हुआ, ठीक बेटा जी के काम की शुरुआत में, तब फिर मैं अपनी डगमगाती नाव सहित, जिसमें हमेशा छेद होता था, पीड़ा जिसमें हमेशा सवार रहती थी, ऐसी नाव सहित पहुँच गई बाबा जी से प्रश्न पूछने। कई बार की ही तरह इस बार बाबाजी कल्पेश भाई के साथ बैठ उनसे राहर दाल के बारे में चर्चा कर रहे थे। कुछ देर बाद बोले कि किसान (किसान को कुछ और कहते थे बाबा) वो आदमी होता है जो फ़सल का नुक़सान सहकर भी अगले वर्ष फिर वो खेती करने की तैयारी करता है; और व्यापारी को 200 रुपए का भी नुक़सान होता है तो वो अपना रोना वर्षों तक लेकर बैठता है और भरपाई का जुगाड़ करता है। मुझे प्रश्न पूछने की आवश्यकता लगी नहीं। दो समय का भोजन कर ही रही थी; संग्रह के रूप में अनाज, गहने और कपड़ों से ले कर लगभग सभी वस्तुओं का अंबार लगा हुआ था, फिर भी समझ की कमी, भाव की कमी वश समृद्धि का भाव नहीं था। कमी मुझमें थी और दोषियों की लिस्ट लम्बी थी। समुद्र की लहर किनारे से तेज़ी से टकराती और किनारे में अनेकों बुलबुलों के साथ समर्पित हो जाती। समाधान की पीड़ा का समंदर ऐसे ही कितनी पीड़ित लहरों के साथ उठता और बाबा जी के सूत्रों में, दर्शन के किनारों में थम सा जाता। ये समृद्धि के भाव को समझने के लिए मानो ध्यानकर्षन था। अपनी हर पीड़ा की पोटली को बाबा को समर्पित कर, आवेशों को, क्रोध को धीरे-धीरे समाधान की पनाह मिलने लगी थी। आकाशवाणी में समाचार वाचन के साथ, चुनाव की तैयारी की ज़िम्मेदारी, स्वयं में टूटन, परिवार में जैसे हर रिश्ते में एक दम घोटने वाली घुटन - ये दो काफ़ी थे मेरे अपने अस्तित्व को, मेरी अपनी नींव को हिला के रखने के लिए। अब थकान लगने लगी थी, पर उम्मीद थी बाबाजी। उन्होंने इस क़दर, इस हद तक मुझको सम्भाला कि ये परम्परा के रूप में निश्चित ही आना चाहिए कि समाधानपूर्ण साथ की कितनी अधिक आवश्यकता है हर व्यक्ति को।

इस बीच SCERT से पहला समूह अमरकण्टक गया दर्शन के अध्ययन के लिए। ये मेरे अहम के लिए भारी चोट थी। 1996/97 इतने सालों में मैंने सिर्फ़ जीवन विद्या एक परिचय मन लगाकर पढ़ा था। मानव व्यवहार दर्शन और कर्म दर्शन जो बाबा जी ने पढ़ाया था, पूरा ऊपर से गया था। मानव व्यवहार दर्शन ने हर रात मुझे सिराहने में साथ दिया, सालों बाजू में रख क़े सोई। पर ये क्या हुआ? वो लोग अभी जुड़े, अभी ही कुछ शिविर किए और उन लोगों ने अध्ययन शुरू भी कर दिया? बस फिर क्या था, जनवरी में ही या दिसम्बर में आकाशवाणी की आखिरी ड्युटी की, दूरदर्शन तब तक छूट ही चुका था, बस कुछ एंकरिंग होती थी करने की। सब कुछ बंद कर, घर ख़र्च की भागीदारी की पूरी ज़िम्मेदारी श्रीमानजी के ऊपर डाल, बच्चों को सूचित कर, मैंने और ज्योति पुराणिक बहन जी ने अध्ययन शुरू किया। मार्च आते तक मेरी व्यसन की हर लत छूट गई। ये अध्ययन की ही महिमा थी। ज्योति बहन के प्रश्नों के उत्तर में, मेरे स्वयं के समाधान धीमे-धीमे ख़ुद में बोल रहे होते थे। तब यूँ अध्ययन शिविर नहीं चलते थे। कभी हम सोम भाई के यहाँ जाते, कभी ख़ुद यहीं अध्ययन करते। ख़ूब कापी भरी, लिख-लिख कर समझने समझाने के लिए। 2-2 घंटे के मैं शिविर लेती ही थी, अब ज्योति बहन जी भी मेरी साथी हो गई थी। इस

बीच एक सुबह सोम भाई जी का फ़ोन आया, "SCERT और DIET में teachers का पूरे दिन का शिविर लेना है, तैयारी कर लीजिए।" मेरी आवाज़ ही नहीं निकली। परंतु भैया ००० "कुछ परंतु नहीं दीदी, आप अनिता दीदी, निताशा त्यागी और शायद सुवर्ण दीदी, हीना बहन जी भी लेंगी शिविर; तैयार तो होना ही पड़ेगा।' मरता क्या ना करता, बस तैयारी शुरू कर दी। और फिर शुरू हुआ पूरे दिन शिविर लेने का दौर।

भीतर और घर में परिवर्तन नज़र आने लगे थे। जितना दर्शन को समझने जाती, समझाने जाती उतना ही hitting उसका प्रभाव मेरे भीतर होने लगा था। साल के अंत तक भीतर की स्व को समझने की, दर्शन के सूत्रों को जीने में जोड़ पाने की, अपने आप को परत-दर-परत देख पाने की क्षमता, पात्रता, योग्यता देख पा रही थी। आज क्रोध, आवेश सब का औचित्य समझ आता है- अब ऊर्जा इन सब में ज़ाया नहीं होती। स्वास्थ्य साथ नहीं दे रहा था, पर इस दौरान जब भी बाबाजी से मिलती, उनका मुझे बार बार घुट्टी के रूप में ये कहना कि 'जी के देखो बेटा' और प्रोत्साहन में कह देते (वही हथौड़ा), "आपके जीने से हम प्रसन्न है बेटा, हम को आप से बहुत उम्मीद है, ख़ुश रहो, मंगल करो, बहुत सुंदर।" उनका उत्साह, मेरे से उम्मीदें, ये सब मेरे भरते ज़ख़्मों पर बूटी के समान काम करते थे।

एक गरमी, बाबाजी अछोटी में अंजनी भाई के कमरे में बैठे थे। बाहर जैसे लू बरस रही थी और भीतर कमरे में सुकून ही सुकून, वही ऊर्जा सम्पन्न वातावरण। मैं कमरे में घुसी, वहाँ छत्तीसगढ़ सरकार में पदस्थ एक उच्च अधिकारी के साथ बाबाजी और कुछ लोग बैठे थे। मैं पलट के वापस जा ही रही थी कि बाबा जी बोले - हरिहर, जय हो, मंगल हो, आओ यहाँ बैठो। अधिकारी अपनी कथनी में बिन विराम दिए पूछे,'बाबा मैं अपनी प्राथमिकता तय नहीं कर पाता हूँ। जब तक तलवार सिर पर ना लटके काम नहीं करता, निर्णय नहीं ले पाता, काम टालता रहता हूँ।' अंजनी भाई और मैं एक दूसरे की आँखों में आश्चर्य से देख ही रहे थे कि बाबा ने उत्तर देना शुरू किया, 'देखिए, प्राथमिकता तय करने का तरीक़ा होता है। प्रिय, हित, लाभ दृष्टि से ये तय नहीं होती, प्राथमिकता तय होती है न्याय, धर्म, सत्य की दृष्टि से। ये जब तक तय नहीं होगा तलवार लटगबे ही करेगी।' बाबा जी का हर शब्द हर वाक्य मंत्र की तरह ही होता था। बाबा जी का शब्द और दर्शन में लिखा हर वाक्य समझ आए, जी पाए, तो मंत्र की ही तरह फलिभूत भी होता है, यह आज मैं पूरे अधिकार से कह सकती हूँ।

2005-2010 तक बाबा जी ने मुझसे कई बार कहा और कई बार दूसरों को भी बाबाजी कहते थे, "हम इस दर्शन को सरल करने में लगा हुआ हूँ, ताकि अधिक से अधिक लोगों को समझ आ सके।" और इस दौरान ही बाबा जी ने कई बार दर्शन को अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कोई करे, ऐसी इच्छा जताई। बाबा जी की इस इच्छा से जुड़ा बड़ा ही मज़ेदार वाक़या है ये। मज़ेदार इसलिए कि बाबा जी की खिलखिलाती हँसी और मज़ाक़ का सुख लेने का अवसर फिर मिला। तो वाक़या कुछ यूँ है - संदर्भ था अध्ययन बिंदु का अंग्रेज़ी भाषा में भावांतरण। इसका प्रयास करने की अनुमति देते हुए बाबाजी ने अमरकण्टक आमंत्रित किया। बस फिर क्या था- मै, अनिता बहन जी अपने शब्दकोशों की किताबों के साथ अमरकण्टक 3 बार गए। उसमें से एक बार बिलासपुर से नूतन भाभीजी भी साथ हुई। बाबाजी का वही बेहद ख़ुशहाली और गर्मजोशी से स्वागत करना हम सब जानते हैं। बाबा जी ने कहा, 'हम अंग्रेज़ी भाषा जानता नहीं हूँ, पर ये कार्य शुरू करें उससे पहले अध्ययन बिंदु का एक-एक बिंदु अच्छे से समझ

आना चाहिए, तभी भाव बनेंगे। आप लोग सहमत हैं कि नहीं? हमारा उत्तर तो हाँ में होना ही था। बस फिर बाबा जी ने अध्ययन बिंदु के सभी बिंदु हमको समझाना शुरू किए। सुबह हम तैयार हो 7-8 बजे बाबा जी के साथ बैठते। 8 बजे नाश्ता होता था, जिसको बाबा जी बड़े प्यार से अंबु का जुगाड़ कहते थे। 9-12०30 या 1 बजे तक अनवरत हम बाबा जी को सुनते, या शब्दकोश से शब्द या परिभाषा खोज बाबा जी को बताते। जब हमारे प्रयास विफल हो जाते तब बाबा जी उनका अंग्रेज़ी शब्द हमको बताते, और हँसते हुए कहते,'अरे बाबा, ये सब लोग शब्द पकड़ कर बैठे हैं, वस्तु को समझे नहीं है। अब आत्मा को soul शब्द से कैसे समझाया जाय ? वैसे ही बुद्धि को क्या शब्द देंगे? कुछ भी दें, पर बुद्धि को समझा ही नहीं ये लोग।" और हँसते हुए पूछते, "अच्छा बताओ मध्यस्थ दर्शन और जीवन विद्या को क्या कहेंगे अंग्रेज़ी में ?" और हमारे पुनः विफल प्रयासों के बाद कहते "NEUTRAL PHILOSOPHY OF CO-EXISTENCTIC CONSCIOUSNESS' और जीवन विद्या के लिए,"LIFE SCIENCES FROM PHILOSOPHY TO PROGRAM AND POSITIVE RESULTS। इससे कम में ये बैठेगा नहीं बेटा। हम English जानता नहीं हूँ। (ठहाका मारते हुए) अब इसको जाँचिए और सब सहमत हों तो इसको रखा जाय।" भोजन के बाद हम सब 4 बजे मिलने की अनुमति लेकर निकलते और मस्त गहरी नींद में सोते। 4 बजे पहुँचकर चाय के जुगाड़ के बाद 8 बजे तक हमारी सभा चलती। बाबा जी का ध्यान हम सब की हर चीज़ पर होता था। हम समझ पा रहे हैं कि नहीं, थके तो नहीं, भूख तो नहीं लगी, नींद पूरी हुई कि नहीं, स्वास्थ्य तो ठीक है आदि आदि। बाबा जी ने अध्ययन बिंदु के 44-2-5 बिंदु तक पूरा समझाया। "मानवीय शिक्षा नीति का प्रारूप आप स्वयं रूपांतरण करें और सब लिख के जँचवा कर उपकार करें सभी पर।" संपृक्तता, जीवन की क्रियाओं, स्थापित और शिष्ट मूल्य इन सब का अंग्रेज़ी भावन्तरन में जहाँ पसीने निकल जाते थे; वहीं बाबा जी संपृक्तता को शब्दकोश में ढूँढने के अथक प्रयासों के बाद हँसते हुए कहते, "ये हमारा दिया शब्द है, कहीं खोजो नहीं मिलेगा। लिखो ALL PERVADED, ये है संपृक्तता।" फिर वही मोहित करने वाली हँसी और अंग्रेज़ी ना आने की बात कहते। सभी मूल्यों को समझाने और उनके अंग्रेज़ी शब्द देने के बाद बाबाजी कहते थे, "जीवन की क्रियाओं, जीवन बल, अक्षय बल और मूल्यों के शब्द हिंदी में ही रहेंगे हमेशा। आप उनको अंग्रेज़ी में समझा सकते हैं।" TRANSLATION को वो TRANSFORMATION कहते थे।

इसी कड़ी में एक बात उन दिनों की है जब श्रीमानजी ने जैन धर्म के प्रभाव में रात्रि भोजन का त्याग कर रखा था। इस दौरान कई बार काम से आते जाते अमरकण्टक रुकना होता था। बाबा जी को पता था कि इन्होंने रात्रि भोजन त्याग किया हुआ है और हर बार अम्बा दीदी को बोल वो इनके लिए सूर्यास्त से पूर्व, इनके पहुँचने से पूर्व भोजन बनवा कर रखते थे और सामने भोजन करवाते थे। किसी की भी दिनचर्या में, जीने में बाधा डालते उनको देखा नहीं। जब इन्होंने रात्रि में भोजन लेना शुरू किया तो हँसते हुए पूछा ज़रूर, "कितनों का भला किया बाबा ने रात्रि भोजन त्याग कर?" मेरे पास इसका कोई उत्तर था नहीं। बस मुस्कुरा कर रह गई। बाबा जी मेरे स्वास्थ्य को ले कर हमेशा मेरा ध्यानाकर्षण कराते रहते थे। नयी और उपयोगी टेकनोलजी को ले कर उनकी जिज्ञासा वो ऐसे दिखाते जैसे उनको सच में कुछ नहीं पता हो। चाहे मोबाइल फ़ोन से SMS की सुविधा की शुरुआत की बात हो, cake के ऊपर आइसिंग हो, या मेरे stem cell treatment (rheumatoid arthritis के लिए) की बात

हो। और बाबा जी से पूछा जाए कि क्या किया जाए, तो बाबा जी तो उतनी ही शिष्टता से, सम्मान और स्नेह से समाधान देते थे।

परिवार में जब प्रॉपर्टी के विवाद के चलते देवर जी ने मेरे पति के ऊपर FIR की और मैंने तिलमिला कर बाबाजी से पूछा तो 2 बात उन्होंने कहीं, "1. परिवार में व्यवस्था बने इसलिए ये होना ज़रूरी था। 2० हमेशा अपने विवेक का उपयोग करना।" इन दो बातों ने क्या कमाल का साहस भरा मुझमें कि धीरे-धीरे अब हर सूत्र का जीवन में सहज जीना दिखने लगा। रिश्ते न्यायपूर्ण धीरता माँगते ही हैं। आप के साथ सही हो, ना हो, आप सही और सटीक रहें - ये सही रहना ही हिम्मत देता है। ग़लतियों से अप्रभावित रहने में पूरी ताक़त लग जाती है। कभी कभी पूरी एक शरीर यात्रा वाणी, आहार, विहार, व्यवहार संयम समझने-जीने में लग जाती है। परिणाम सुखद ही होते हैं। ये घोषणा तो अब की ही जा सकती है। जीने में बाधा ना डालना शुरू में प्रयास करने में थोड़ा कठिन था, क्योंकि भूतकाल खींचता था, पर वर्तमान में जीना ही है। ये किसी ट्रैफ़िक रेड सिग्नल समान मुझमें जलता ही है, और अब जा कर भूतकाल, भविष्य से पीछा काफ़ी हद तक छूट रहा है। कमाल की बात ये है कि मात्र जीने देने से ही शिकवे गिले 95 % ख़त्म हो गए। बाक़ी के लिए प्रयास जारी है। मेरी ये शरीर यात्रा पुरुषार्थ और कड़ी मेहनत भरी रही। प्रारब्ध में कुछ अच्छा लाई थी वो शायद यही था कि बाबाजी का गुरु रूप में मिलना। वरना मेरा अतीत ज़िल्लत भरा रहा और ऐसे में बाबाजी और दर्शन का साथ मुझे आज संतुष्टि और तृप्तिदायी लग रहा है। बाबा जी कहते, 'एक एक सूत्र समझने में जी जान लग जाता है बेटा। हम भी अध्ययन किया हूँ। सब के लिए सुलभ कर दिया। हम को जो मिला वो सभी को मिलेगा। पर मेहनत तो करोगे कि नहीं ?"

जीना उत्सव पूर्वक, सहज, सुंदर और सह-अस्तित्व में सरल है - ये बात बाबा जी ने अनेकों बार कही होगी। आज उसके मायने भी समझ आने दिखने लगे। बाबा जी अपने हर रायपुर प्रवास में निश्चित ही विद्यालय आते थे। इस उम्र में जब अनेक बुज़ुर्ग सिर्फ़ शरीर त्यागने का इंतज़ार करते हैं, बाबा जी की आँखें विद्यालय में परिणाम तलाशती थी और छोटे-छोटे परिणाम को देख ख़ुश हो जाती थीं। स्नेह से बाबा जी हम 3-4 लोगों की ओर ऊँगली दिखा कर कहते थे," शिविर लीजिए और बेटा दो बात अगर समझ आती है तो कम से कम एक को तो जी कर देखा जाय।" उनकी ये बात, ये स्नेह पूर्ण गुहार, आज भी ज़हन में गूँजते उनके अनेक शब्द, अनेक सूत्र, हँसी, concern आदि आदि प्रोत्साहन का संचार कर जाते है। और एक वाक्य हमेशा बोलते थे, "अपराध मुक्त विधि से विद्यालय में अध्ययन करवाऊँगी, ये सत्यापन कर, विद्यालय में भागीदारी की जाए।" यह 'अपराध मुक्त' और धरती बहुत बीमार है', 'मानवीयता बीमार है' - बहुत पीछा करता है - बहुत ही पीछा करता है।

मैं ये अपनी ज़िम्मेदारी से जो फल परिणाम मिल रहे है, उनके अनुसार ये निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि फल परिणाम दर्शन अनुरूप और बाबाजी के बताए अनुरूप मिलते हैं, मिल रहे हैं, बस करना इतना ही है कि धीरता के साथ स्वयं पर, सिर्फ़ स्वयं पर काम करना है। बाक़ी नियति सहज सब सुंदर सजता जाता है, ख़ुद का भीतर ख़ूबसूरत होते जाता है, घर ख़ुशहाली से सजता जाता है, समाज में, प्रकृति में सब जगह स्थान सुनिश्चित होता जाता है। यही तो सभी सोच और कर ही रहे होंगे। पिछले 8-9 वर्षों में और विगत 5 वर्ष में तो विशेष कर ढेरों अच्छी बातें हुई। जब भी मुलाक़ात हुई बाबा जी से, मेरे पास उनके प्रश्न - कुछ अच्छा सुनाओ - का काफ़ी

सार्थक उत्तर होता ही था। ये दिन प्रतिदिन मुझमें, मेरी समझ में, मेरी ख़ुशहाली में, उत्साह में, समझ पाने और उसको जी पाने के अर्थ में, सेवा-प्रेरणा और सरलता के उत्साह के रूप में दिखता ही जाता रहा था / है। अब अच्छा सुनाओ कि परम्परा बनाने में, पूरी ताक़त अध्ययन में, जीने में लगा रही हूँ। ऐसा सभी कर ही रहे हैं।

1 मार्च 2016 को आदरणीय अम्बा दीदी का फ़ोन आया और बाबा की तबियत और डॉक्टर की टीम की अमरकण्टक दौरे का बताते हुए उन्होंने कहा, "दीदी पिता जी को आ कर देख लीजिए।" बस फिर क्या था, मैं और श्रीमानजी पहुँच गए अमरकण्टक। वो शाम मेरे पटल पर फिर एक अविस्मरणीय अध्याय लिख गई। बाबा जी को आम बहुत ही पसंद थे, वो मार्च महीने में कहाँ मिलेंगे ये सोचते सोचते रायपुर से चीकू ले गई थी। बस वही चूर के बाबा जी को खिलाया। एक छोटा सा कौर, पता नहीं बाबा जी ने भीतर गटका कि नहीं, परंतु जब उनके जीभ में रखा तो वो भरसक प्रयास किए गटकने का। कुछ भीतर गया और कहते हैं, बाद में वो निकालना पड़ा। उनसे पूछा कि क्या वो थूकना चाहेंगे तो बोले, "क्या आवश्यकता है?" बाबा जी को गटकने में तकलीफ़ थी पर कभी भी पीड़ा की शिकायत नहीं। कई बार उनको देखा था मैंने, मेरा उत्साह रखने के लिए वो खा लिया करते थे, भले ही थोड़ा से लें। ऐसा ही कई लोगों के साथ करते देखा। जब भी बीमार पड़े, कभी भी पीड़ा की, दर्द की शिकायत नहीं की। हिप joint replacement के ऑपरेशन के समय हँसते हुए कहते भी थे, "हम ठीक हैं, हम अपने आप को ठीक कर लेंगे, पर अंबु को मना नहीं कर सकते।" हर मर्तबा डॉक्टर को अचम्भित होते देखा - कभी उनके BALL AND SOCKET JOINT हों या BRAIN का MRI, pneumonia हो या anaesthesia का असर। और आज भी उनको देख लग रहा था कि ये सेवा मेरे स्वयं के लिए, मेरी बीमारी में जब मेरा मनोबल टूट जाता है, तब ये सेवा, दिव्य पुरुष की सेवा, जिसके हम निमित्त मात्र थे, प्रोत्साहन और संतुष्टि देगी। दूसरे दिन जब बाबाजी को दोपहर का भोजन दे रही थी तब उन्होंने समय पूछा और कहा, "अम्बा यहाँ बैठो।" वही उनका आख़िरी वाक्य हुआ।

महाशिवरात्रि के कारण अमरकण्टक में मेला लगा हुआ था। पाँच मार्च की सुबह, सदियों की परम्परा निर्वाह करते हुए सूरज धरती की इस ओर की यात्रा शुरू कर चुका था। प्रकृति की हर इकाई अपनी गति में ००० सब कुछ जैसे कल था वैसे आज ००० और कल भी होगा।

००० उनका पार्थिव शरीर सामने रखा था। ज़िंदगी में पहली बार वंदना गीत का हर शब्द भाव पूर्ण शूल बन चुभ रहा था - जिनका है चिंतन शुभ यही, कैसे हो मानव सुखमयी०००

भूमिः स्वर्गताम् यातु, मनुष्यो यातु देवताम्।
धर्मो सफलताम् यातु, नित्यम् यातु शुभोदयम्।।

यात्रा तो है सिर्फ़ स्वयं से, स्वयं तक, स्वयं के द्वारा ००० आपके साथ-साथ वापस वही कृतज्ञता के भाव के साथ अभी विराम देती हूँ।

नीति कोठारी

रायपुर

अध्ययन और अभ्यास

"बाबाजी" शब्द सोचते ही, बोलते ही ऐसा लगता है कि सारे मूल्य बह रहे हों। बड़े सौभाग्य की बात है कि उनके मूल्यवान शरीर यात्रा में हम भी सशरीर उनसे मिल सके, संबंधी बन सके, मार्गदर्शन ले सके और .... अधिकार भरी डाँट भी खा सके।

चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्राथमिक स्तर (अभिभावक विद्यालय) में भागीदार होने का मुझे अवसर मिला; जिसके चलते बाबाजी द्वारा अलग-अलग समय पर बताई गई सूत्रवत बातों को मैंने एक साथ पिरोकर देखा तो उन्नति पथ का एक इतिहास सा बन गया जिसको आप सबके सम्मुख प्रस्तुत करने का सुअवसर मिला। इस अवसर को प्रदान करने हेतु धन्यवाद।

अभिभावक विद्यालय के प्रारम्भ में हुई बैठक

1 – बाबाजी ने कहा- "बच्चों के लिये अध्यापक/अध्यापिकाएँ ही पुस्तक हैं, प्रमाण हैं। "जिज्ञासावश मैंने पूछा कि बाबाजी हम तो अभी प्रमाणित नहीं हैं तो बच्चों को कैसे समझायेंगे। वे बोले कि ऐसा ही बताओ बच्चों को, कि हम बता रहे हैं समझा नहीं रहे और ये भी बताया कि अपन मास्टर विधि से शुरुआत नहीं करेगें। तब मुझे सूत्र याद आया –

"समझे हुए को समझाना

सीखे हुए को सिखाना"

और हमारे लिये एक सूत्र और बन गया –

पढ़े हुए को बताना।

इस क्रम से हम आगे बढ़े।

दूसरे वर्ष की बैठ्क

2 – एक वर्ष बाबाजी हमारे साथ नरमी से रहे; अगले वर्ष हमें कसना शुरु किया। सभी अध्यापिकाओं से स्वावलंबन के लिये पूछा कि हम क्या कर रही हैं। सभी का ध्यान पढ़ने के साथ स्वावलंबन की ओर गया। पहले मैं सोचती रही कि श्रीमानजी तो स्वावलंबन का कार्य कर ही रहे हैं और मैं विद्यालय में भागीदारी का। लेकिन फिर ये बात समझ आई कि:

उत्पादन द्वारा समृद्धिपूर्वक जीना परिवार का कार्यक्रम है, न कि एक व्यक्ति का।

एक शिक्षक का स्वावलंबी होकर उपकार भाव से शिक्षा प्रदान करना संभव है।

ये ही मानवीय व्यवस्था है। ये हमारा सामाजिक दायित्व है।

मैने स्वावलंबन के बारे में सोचना शुरु किया और तुरन्त एक उपाय सूझा कि घृतकुमारी युक्त खाखरा बनाया जाय। मैने खाखरा और केले के चिप्स को बनाना शुरु किया। बनने पर बच्चों को बेहद पसंद आया और

बड़ों को भी पसन्द आया। इस तरह खाखरा, चिप्स बनता गया और स्वावलंबन शुरु हो गया। स्वंय बाबाजी ने 10Kg हर महीने अमरकंटक भेजने को कहा और उन्होंने अपने खेत में उगाया हुआ गेहूँ भी अम्बा दीदी के द्वारा मुझे दिलवाया और इस तरह परिवारों में इसके वितरण से प्राप्त राशि से भाग्या बेटाजी और मेरे विद्यालय के खर्च पूरे होते रहे।

तीसरी बैठक अध्ययन के लिये

तीसरे वर्ष आते तक मुझे स्वयं का अधूरापन सताने लगा था और ज़रा रुककर अध्ययन करने की प्यास होने लगी थी, लेकिन विद्यालय की ज़िम्मेदारी को बीच में छोड़कर ये करना असम्भव लग रहा था। मैंने बाबाजी से कहा कि बाबाजी अब पूरा समझने की इच्छा हो रही है। वे बोले- "हाँ बेटा, पूरा समझना ही होगा; आधे अधूरे से कुछ नहीं होगा। अपना स्वत्व बनाओ।" इसी वर्ष बाबाजी ने सभी अध्यापिकाजी को बुलाया और तीव्र वाणी से बोले कि सभी पहले अध्ययन करें; चाहे विद्यालय बन्द करना पड़े, और 6 महीने के अध्ययन की रुपरेखा विस्तार से बताई। "हमें सब तय करके बताओ," ऐसा कहा। हम सबने तय किया कि कुछ अध्यापिकाएँ विद्यालय में रहेंगी और कुछ अध्ययन करेंगी। और इस प्रकार 6 – 6 महीने के 3 बैच में सबका अध्ययन का सिलसिला शुरु हुआ।

मैंने दूसरे बैच में जाने का अवसर स्वीकार किया। मेरी प्यास गहरी होती जा रही थी। ऐसा लग रहा था कि शरीर विद्यालय जा रहा है, मन अध्ययन करने। विद्यालय तो मैं जाती रही पर न्याय नहीं कर पाई। मैं थक रही थी मन से, शरीर से।

अध्ययन एवं अध्ययन के पश्चात

चौथा वर्ष और एक नई शुरुआत। 6 माह का अध्ययन (पूरे वांग्मय का विधिवत पठन) पूरा हुआ। अध्ययन के पश्चात मेरे कई भ्रम टूटकर बिखरने लगे। इसी दौरान लगभग 1-1/2 वर्ष के अन्तराल में, मैं पूरे 40 वर्ष की शरीर यात्रा की समीक्षा एवं सही का मूल्यांकन करने का अभ्यास करने लगी। स्वयं में यह निष्कर्ष बना कि अब करके नहीं समझूँ। अब जो कुछ करूँ, वो समझ के करूँ। अब किसी भी प्रकार की घटनाएँ आए, तो मैं घटनाओं से प्रभावित न होकर उस घटना में छिपे अवसर को पहचान पाऊँ और सर्वशुभ के अर्थ में निर्णय ले पाऊँ।

पाँचवा वर्ष

इस निष्कर्ष के साथ पाँचवे वर्ष पुनः विद्यालय जाना प्रारम्भ किया और इस वर्ष सहयोग के रूप में दो दिन जाने की भागीदारी स्वीकारी। उस वर्ष मैं खुश थी, और न्याय कर पा रही थी और बाबाजी की वो बात याद आई कि पहले-पहले पाँचों दिन विद्यालय जायेंगे; बाद में दो–तीन दिन जाएँगे। और इस तरह अपनी उन्नति से खुश होकर आगे अन्य ज़िम्मेदारी को अच्छे ढंग से निभा सकूँ, इसकी तैयारी शुरु हुई।

अनामिका वरु

बेमेतरा

बाबाजी के साथ हुये संवाद के कुछ बिन्दु

[वर्ष: 2002–03] - "बेटा तुमको अपना घर चलाने के लिये परिवार से एक पैसा नहीं लेना है, तुम दोनों स्वावलंबी होकर प्रेरक बनो।" मुझे और अनामिकाजी को एक बार प्यार से बाबाजी ने यह कहा। और फिर वे समय–समय पर मेरी आर्थिक स्थिति का आंकलन लेते रहते और सुझाव भी देते रहते रहे। अर्थात उन्होंने अपनी ज़िम्मेदारी में हमारे स्वावलंबी होना शामिल कर रखा था, जो हमारा परम सौभाग्य रहा।

[वर्ष–प्रति वर्ष] - बाबाजी सुनिश्चित करते रहे कि संस्थान में रहते हुए हमसे कोई न कोई ज़िम्मेदारी का निर्वाह हो रहा है या नहीं। और जानकारी तो सभी कार्यों की पूरी होनी ही चाहिये - ऐसा कहते रहे और उसे पूरा करवाते रहे। वे चाहते रहे कि हम पूरे हो जाएँ। संस्थान के प्रति सभी जिम्मेदार हो जाएँ।

[वर्ष:2007–08] - एक बार जब संस्थान की बहुत सारी व्यवस्थागत ज़िम्मेदारियों के कारण मैं थोड़ा परेशान चल रहा था तभी एक दिन बाबाजी ने फ़ोन कर मुझसे बात की और कहा, "बेटा यह अभियान मानव जाति के लिये बहुत आवश्यक है। इसमें थकना नहीं है, बल्कि खपना है। माताजी खपा है, अंबु खपा है - ठीक है, इसके लिये तैयार रहो।" इस बातचीत ने पूरी थकान मिटा दी और मैंने ठान लिया - जहाँ भी खपने की ज़रूरत होगी, मैं खपने के लिये तैयार रहूँगा।

कल्पेश वरु

बेमेतरा

प्रेरणा

मैं हरजिन्दर सिंह (सोनू) मूलत: तो कानपुर का रहने वाला हूँ किन्तु हाल ही में, ४ वर्ष रायपुर रहने के पश्चात, इंदौर शिफ्ट हुआ हूँ। मुझे कभी भी परपंरागत जो भी आस्था विधि से चल रहा था समझ नहीं आया, और ना ही तार्किक लगा। समाज की हालत और लोगों से बात करके ऐसा लगता था कि बस जैसे दुखी रहना तय है, सारी ज़िम्मेदारी ऊपर वाले की। हमेशा उँगली उपर या सामने जाती, अपने को सही ही मानते। 2001 में मेरा बी.कॉम. से ग्रेजुएशन पूरा हुआ था; नौकरी या घर का व्यापार, किसी में भी उतरने का उत्साह नहीं था, क्या करना है ये भी तय नहीं हो पा रहा था। गुरुनानक जी के रास्ते पर चलना ठीक लगता था। गृहस्थ, सन्यासी होकर जिया जाये, इस रास्ते पर चलने के लिये जो भी उपलब्ध सामग्री थी उसको पढ़ने का अभ्यास शुरू किया। समझ नहीं आता था, सब कुछ गुरमुखी लिपि में है। तभी मंजीत फूफाजी और बुआजी के संयोग से अछोटी संस्थान नवम्बर 2001 में पहुँचा - घूमने, मिलने के लिये। 25 नवम्बर को एक शिविर किया, पहले ही शिविर में काफ़ी सारी दिक्कतों का समाधान हुआ और एक प्रस्ताव मिला जीवन विद्या के रूप में - बहुत ही शानदार जिसमें समाधान ही समाधान दिखा। हम निरंतर मौज में रह सकते हैं, भरोसा हुआ। पहले शिविर से ही तय हो गया कि जीने का ये मार्ग सुखद है जहाँ सब कुछ स्पष्टता से दिखने लगा, कोई रहस्य नहीं है। उसी बीच बाबा श्री नागराजजी से भी मिलने का मौका मिला, मुझे कभी बाबा लोगों में कोई रुचि नहीं रही, लेकिन ये वो बाबा नहीं थे, ये तो गृहस्थ सन्यासी थे। गृहस्थी की सारी जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए भी उसमें आसक्ति नहीं थी, बहुत ही सामान्य से इन्सान; कोई विलासिता नहीं। कुछ लोगों से बाबाजी का जब भी वार्तालाप होता रहता, हमेशा एक ही ढंग- सही से कैसे जीया जाये। तब तक मेरा मन बन ही चुका था कि मुझे गौशाला व खेती सीखना है, लेकिन सब कुछ बहुत मुश्किल था। कभी कुछ देखा सुना नहीं था। बाबाजी से बात करके आत्म विश्वास बढ़ा, नहीं तो उससे पहले उदासीनता थी ज़िंदगी में। ऐसा लग रहा था कि जैसे धीरे-धीरे मेरे जो भी संस्कार थे उनको उचित वातावरण मिलने लगा हो। पहले से खूब मज़ा भी आने लगा, परिवार से भी ऐसी ज़िंदगी जीने की सहमति मिल गयी। फिर क्या, और ज़्यादा मन लगने लगा।

मंजीत फूफाजी, अनिल चाचाजी और बाबाजी के मार्गदर्शन में गौशाला, खेती सीखना प्रारंभ हो गया। एक बार एक गाय के थन में घाव हुआ और मुझे किसी व्यक्ति ने बताया, ये पत्ती लगाने से ठीक होता है। मुझे सुनकर अजीब लगा, पत्तियों से भी कोई उपचार होता है। उसी बीच अक्टूबर 2002 में बाबाजी अछोटी अभ्युदय संस्थान में आये हुये थे। मैंने उनको वो पत्ती दिखाया और पूछा 'क्या इससे थन जो काफ़ी कटा हुआ है, ठीक हो सकता है?' बाबाजी बोले, 'बेटा ये भृंगराज है, बिल्कुल ठीक होता है।' उत्सुकता हुई; गाय पर प्रयोग करने की हिम्मत बनी; अन्यथा थन में कुछ भी ऐसा प्रयोग नहीं करते हैं क्योंकि नाजुक अंग होता है। 2 से 3 दिन प्रयोग किया, पश्चात कमाल हुआ बहुत जल्दी ठीक हो गया। मुझे पहली बार पता चला कि आयुर्वेद भी एक उपचार पद्धति है। बाबाजी से मैंने पूछा, "क्या गाय और मानव दोनों का इस विधि से पूरा उपचार सम्भव है?" उनकी स्वीकृति मिली, तब से अपने शरीर पर, पशुओं के शरीर पर खूब प्रयोग किये। गौशाला में तो ऐसी समस्याएँ जिनका इलाज बिना

एंटीबायोटिक के संभव नहीं हो सकता, ऐसा एलोपैथिक चिकित्सक ने बताया। एंटीबायोटिक इस्तेमाल करने के बाद भी गारंटी नहीं दे सकते थे ; ऐसे जटिल रोग भी बाबाजी के मार्गदर्शन में ठीक करने का मौका मिला। जब बाबाजी संस्थान आते, हर तीन माह में मेरी सूची तैयार रहती और बाबाजी भी खूब उत्साह से मुझे बताते। ऐसा करते करते 2006 तक गौशाला पशु चिकित्सा पर, आहार पर मेरी डायरी तैयार हो चुकी थी। इन सब ऐसे प्रयोगों को करना जहाँ गाय खराब भी हो सकती थी दूध देने वाले भाग से; ये सारे प्रयोग अंजनी भईयाजी और मंजीत फूफाजी के सहयोग से ही कर पाना संभव हुआ। बाबाजी के साथ-साथ इन्होंने कभी मेरी निष्ठा पर शक नहीं किया; हमेशा उत्साहवर्धन किया। कभी-कभी मेरी ज़िद ने भी परिणाम लाने में मदद की। बाबाजी का एक सामान्य आदमी की तरह बार-बार पूछते रहना, "इस बार क्या रहा, कोई गौशाला चिकित्सा की सूची बनाई? सबको बताना 'देखो ये प्रयोग किया है इनसे सीख सकते हो'।" इतने बड़े ज्ञानी आदमी किसी के भी सही काम को उत्साहित करने में नहीं चूकते थे। बाबाजी बताते थे कि उन्होंने खूब श्रम किया है; प्रेरणा मिलती थी। जब मैंने गौशाला, खेती सीखनी शुरू की तो खूब श्रम किया - गौशाला में गोबर उठाने, पशु को सानी करने, दूध दुहना, रायपुर जाकर दूध बाँटना, दूध निकालना ये सब काम मेरे लिये आसान नहीं थे। ये मध्यस्थ दर्शन के ज्ञान की महिमा थी। मुझे जितना समझ आया, आत्मसात किया; जीने की कोशिश की। उससे मन के सारे संकोच निकल चुके थे।

काम छोटा या बड़ा मानना या सम्मान से अब जुड़ा नहीं था; अब खुशी के आधार बदल रहे थे। बाबाजी के साथ बातचीत में हमेशा बहुत ही मज़ा आता था। स्नेह से भरा हुआ माहौल, डाँटने में भी अपनापन या हर आदमी में संभावना देख पाना, सबके साथ उत्साह से लगे रहना बहुत ही उत्साहित करता था। अपने स्वावलंबन, परिवार के लिये शरीर की 80 वर्ष की आयु में भी नाड़ी देखना, चिकित्सा करना, ये सब कमाल लगता था। काफ़ी सारी घटनाएँ घटी जिसमें अगर मैं बाबाजी से जुड़ा हुआ नहीं होता तो शायद पूरी ज़िंदगी नकारात्मक हीनता में ही, शिकवे, शिकायत में निकलती। आज जिन्दगी के काफ़ी सारे निष्कर्ष बदले हैं, जीने का तरीका ही बेहतर हो गया। 37 वर्ष में पहुँचते-पहुँचते मेरी काफ़ी गहरी मान्यतायें टूटी, निष्कर्ष बदले। अगर मध्यस्थ दर्शन की अध्ययन प्रक्रिया से नहीं जुड़ा हुआ होता, तो मैं अपने लिये ऐसा मानता हूँ कि ज़िंदगी के गहरे सही निष्कर्ष बदलने का मज़ा नहीं ले पाता। अधिकांश लोगों की पूरी जिन्दगी निकल जाती है, नकारात्मक मान्यताओं में। मैं अपने को बहुत ही अच्छी स्थिति में देख रहा हूँ, बहुत ही सुखद मार्ग है। श्रद्धेय बाबाजी हमेशा विचार रूप में साथ ही महसूस होते हैं।

हरजिंदर सिंह (सोनू)

रायपुर (2016)

कुशल नाविक

जीवन विद्या शिविर और मध्यस्थ दर्शन से मेरा परिचय 2007 में हुआ, लेकिन बाबा से मुलाकात 2008 में हुई; जब कुछ मित्रों के साथ पहली बार हम अमरकंटक गए। अगले कुछ सालों में अमरकंटक जाने का सिलसिला बढ़ने लगा और धीरे धीरे मैं अमरकंटक जाने के लिए ज्यादा उत्साहित रहने लगा। बाबा के करीब रहने में मुझे अच्छा लगने लगा और हालांकि मैं अगले ३-४ वर्षों में शिविर में खूब बैठा और थोड़ा बहुत दर्शन-अध्ययन भी किया लेकिन मुझे जो अपने लिए गति मिली तो वह अमरकंटक में बाबा के साथ छोटे -छोटे अंतराल की परस्परता में मिली। मैं और मेरी पत्नी अनिशा, दोनों ही फिर साल में २-३ बार अमरकंटक जाने लगे। यहाँ २-४ दिन के समय में बाबा के साथ बैठने के छोटे -छोटे अवसर मिलते रहे जिसमें उनके साथ बातचीत में, मेरे लिए एक उपयुक्त मात्रा में ज्ञान और समझदारी के निवाले होते थे, जिसको मैं फिर अगले कई महीनो में धीरे-धीरे पचाने की कोशिश करता रहता था।

बाबा के साथ यह छोटी- छोटी बातचीत के सिलसिले के अलावा, बाबा के साथ कुछ दिन बिता लेने से मेरे भाव में जो वृद्धि होती थी, वह बहुत ही ज्यादा रही। यह मेरी आवश्यकता भी रही है, और इसे पूरा करने के लिए पिछले कुछ सालों में मुझे ऐसा अवसर मिल पाया; यह सोच कर मैं अपने को बहुत भाग्यशाली मानता हूँ। शुरू के वर्षों में, बाबा ने मुझे अध्ययन के लिए हमेशा प्रेरित किया, लेकिन कभी भी उसका दबाव मुझे महसूस नहीं हुआ। उनको शायद यह दिख ही रहा होगा कि मैं दर्शन -अध्ययन करने से कतरा रहा हूँ, तो कई बार उन्होंने मुझे किताब लाकर, साथ बैठ कर पढ़ने के लिए कहा और बोले कि जो नहीं समझ में आता है, वह मुझसे पूछो। मुझे तो यह करना बहुत मुश्किल लगता था, फिर भी मैं थोड़ी देर कोशिश तो करता था, लेकिन फिर पहला अवसर मिलते ही, साधन भैया के साथ या फिर और काम का बहाना बना, वहां से निकल जाता था। उनको तो यह दिखता ही होगा; लेकिन कभी कुछ बोले नहीं। अध्ययन करने के लिए प्रेरित ही करते रहे, और मुझे अपने तरीके से करने के लिए जगह हमेशा देते रहे। एक ऐसी ही अमरकंटक यात्रा में, मैंने उनसे दर्शन वस्तु से सम्बद्ध एक बात पूछी। वह बहुत खुश हुए और हाथ पकड़ कर बोले - 'यह हुई न बात।' मैं भी भाव विभोर हो गया। उनके इस भाव और व्यवहार से मुझे शायद उतनी प्रेरणा मिल गयी, कि मैंने दर्शन-अध्ययन थोड़ा बहुत धीरे-धीरे, शुरू कर दिया।

मुझे शुरू से ही मध्यस्थ दर्शन के लिए जो आकर्षण रहा है, वह यही रहा है कि मनुष्य के सहज और साधारण जीवन में तत्व-ज्ञान, दर्शन-अध्ययन और संस्कार-अभ्यास को आसानी से पिरोया जा सकता है और इसके लिए कोई पहाड़ चढ़ने की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, मनुष्य के जीवन में सहजता और साधारणपन् में भी गुणात्मक वृद्धि होती रहती है और इस प्रकार किस तरह का जीवन जीना है, उसमें हम अगर सतर्क न रहें तो पहाड़ चढ़ने के तुल्य भी बना ही सकते हैं। लेकिन फिर भी, मेरे लिए यह एक महत्वपूर्ण बात रही है।

ज्ञान, अध्यात्म, विकास यह इस भौतिक जगत में भी मनुष्य के लिए व्यावहारिक है, इस बात ने मेरे लिए, मेरी अनेकों इच्छाओं, लक्ष्यों में एक सामरस्यता की प्यास बना दी है, जो कि धीरे-धीरे समझ का स्वरूप ले रही है। मध्यस्थ दर्शन से इस प्रकार मैं बहुत आश्वस्त हूँ। बाबा के साथ मेरी जो भी थोड़ी-बहुत बातें हुई हैं, वह

अधिकतर इस पहलू पर ही हुई है और बाबा ने मुझे कभी थोड़ा डांटकर, कभी पुरुषार्थ करने के लिए थोड़ा विनय कर, और कभी प्यार से सिर्फ मेरा हाथ पकड़ कर इसी प्रयास में गति लाने के लिए प्रेरित किया। एक बार डांट कर बोले - 'तुम्हारी गति बहुत धीरे है' तो एक बार बोले - 'बिना समझे तो होगा नहीं, तो समझने पर ध्यान दो, बाकि छोड़ो' तो एक बार बोले - 'कुछ करना थोड़े ही है, सिर्फ निभना है', तो एक बार बोले 'यह काम किस तारिख तक होगा, अभी बताओ'...।

जिन समय पर यह बातें उन्होंने मुझसे बोली, उस समय उन्होंने जो कहा वह मेरे लिए बहुत उपयोगी रहा और आज जब पीछे मुड़कर उन सभी बातों को देखूँ तो लगता है कितनी अलग -अलग बातें है और यह हमारे जीवन के बहु आयामी होने का, मनुष्य की गलती करने में व्याप्ति दोष के प्रकार, जीने की परिस्थिति में विविधिता, आयु की मर्यादा इत्यादि ही है, जिनके बीच एक समझदार व्यक्ति एक कुशल नाविक की तरह रास्ता बनाता हुआ चलता है। बाबा के साथ यह ७ साल के छोटे से सफर में बाबा मेरे कई आदर्श, मान्यताओं और आसक्तियों का ध्यान-आकर्षण मुझे करा पाए, जिससे कि मेरा बहुत उपकार हुआ है।

बाबा को मैंने अपने दादा या बाबा के रूप में ही देखा है, क्योंकि गुरु जैसे सम्बन्ध की मर्यादा निभाने की योग्यता मुझे स्वयं में बहुत कम दिखती है। बाबा की कई बातेंमैं, जैसा उन्होंने कहा, वैसा कर नहीं पाया लेकिन दादा के रूप में मुझे लगता है, इस अधिकार का मैंने फायदा उठाया और थोड़ी मनमानी भी की। लेकिन मध्यस्थ दर्शन जैसी वस्तु उनसे मुझे मिली है, जो कि मेरे सोचने-समझने की आधार वस्तु बन गयी है। बाबा के साथ मुझे अपने में एक आधार मिला, जो कि पहले मेरे पास नहीं था। यह सोचकर मैं अपने को भाग्यशाली मानता हूँ और उनके आशीर्वाद से अपने को धन्य पाता हूँ।

अनुराग सहाय

देहरादून

एक महामानव को श्रद्धांजलि

बात 1999 की है। एक ऐसे मित्र ने, जिसका मैं सम्मान करता हूँ, एक अनौपचारिक सी बैठक में कुछ यूँ कहा कि शिक्षा के क्षेत्र में देश भर में दो ही जगह कुछ मौलिक काम होता लगता है। एक बिजनौर में बाबा नागराज और मध्यस्थ दर्शन (जीवन विद्या) से प्रेरित कार्यक्रम और दूसरा हितरुचि महाराज से प्रेरित कोई कार्यक्रम अहमदाबाद में। मैं भी शिक्षा में ही कार्यरत था और श्रद्धेय धरमपाल जी से बहुत कुछ सीखा- समझा था। इस शिक्षा क्षेत्र की बहुत सी कमियों, कमजोरियों और सीमाओं से परिचित हो गया था, पर किया क्या जाय इस पर दृष्टि बहुत साफ नहीं थी। मेरे मित्र की बात सुनकर मेरे कान खड़े हो गए। मेरे मन में इन दोनों प्रयोगों को जानने की जिज्ञासा पैदा हुई।

दुनिया जितनी बड़ी लगती है, अनुभव में उससे छोटी होती है। बहुत जल्दी ही ऐसे लोग मिल गए जिन्होंने इस दर्शन के बारे में सिर्फ सुना ही नहीं था बल्कि कुछ कुछ जानते भी थे। अत: जल्दी ही जीवन विद्या शिविर भी कर लिया। फिर पता चला कि उस वर्ष जीवन विद्या का राष्ट्रीय सम्मेलन बिजनौर में होने वाला है। नागराज जी भी आने वाले थे। नज़दीक था तो हमने एक दिन के लिए जाने का निश्चय किया। सर्दियों का समय था, चटक धूप सुहानी लग रही थी। गाड़ी से बिजनौर के रास्ते पर जा रहे थे। गाड़ी में हम कई लोग थे। रण सिंह जी के संस्थान के पहले, सड़क पर ठीक गाड़ी के सामने से एक लंबा नाग सरपट एक तरफ से दूसरी तरफ निकल गया। नाग काफ़ी लंबा था और धूप में उसका काला रंग चांदी की तरह चमक रहा था। हम लोगों ने कहा, 'चलो, नागराज जी से मिलने के पहले ही नागराज के दर्शन हो गए।' इसे हमने एक शुभ संकेत माना।

वहाँ संस्थान में बहुत से लोग आए हुए थे। मैं बहुत कम लोगों को जानता था। गाड़ी खड़ी करके हम संस्था से थोड़ी दूर स्कूल की तरफ जाने लगे, जहां सम्मेलन हो रहा था। रास्ते में सिंचाई नाली के किनारे से जाते हुए एक लंबे चौड़े व्यक्ति को देखा, छोटी पर पैनी आँखों से उन्होने मुझे देखा, मैंने एक हल्की सी मुस्कान भी उनके चेहरे पर महसूस की – ऐसा लगा वे मुझे पहचानने का प्रयास कर रहे हैं। उनके व्यक्तित्व ने मुझे भी आकर्षित किया। एक बार लगा शायद यही बाबा नागराज होंगे। पर फिर नए, अनजाने लोगों से मिलने पर जो एक सहज झेंप मुझे होती है, उसके चलते, मैं अपने रास्ते चला गया। सम्मेलन वाले कमरे में जाने के कुछ देर बाद बाबा भी वहाँ आ गए। समझ आ गया कि मेरा अंदाज़ा ठीक था। वे भी मुझे देख कर थोड़ा सा मुसकुरा दिये, पास बैठने का इशारा किया। उनकी स्वीकृति मुझे अच्छी लगी। सम्मेलन में रण सिंहजी ने मुझे भी बोलने का आग्रह किया। समझ नहीं आया इन जीवन विद्या के लोगों/ विद्वानों के बीच क्या बोलूँ। और फिर इनके सामने, इतने बड़े ज्ञानी के सामने। थोड़ा झिझका, फिर मन में आया 'जो समझ आया है अब तक, जो अनुभव हुए हैं, उन्हे सीधे-सीधे सामने रख दूँ, देखा जाएगा।' और लगा कि निर्णय ठीक ही था। मेरे अनुभव सुनकर बाबा एवं अन्य लोगों को ठीक ही लगा। मैं संतुष्ट था।

रात को खाने के बाद वे हम लोगों से अपने कमरे में मिले। कमरे में बिजली न होने की वजह से अंधेरा था। मोमबत्ती की रोशनी थी। मेरे लिए उनकी सहजता, उनका साधारणपना, उनका लहज़ा और सच कहूँ तो उनका

बिंदासपन ही, सर्वप्रथम, मेरे आकर्षण का कारण बना। इससे पहले जीवन विद्या का एक शिविर तो कर ही लिया था इसलिए बातों में दम है, इसका एहसास हो चुका था। उनकी कुछ बातें, जैसे 'सत्ता में संपृक्त प्रकृति', 'अस्तित्व सह-अस्तित्व है' सिर के ऊपर से गईं पर बहुत सी बाते समझ भी आई। मुख्य बात थी मैं उनसे सहज हो कर बात कर सका। इतनी सहजता महसूस होने लगी कि मैंने रौ में उन्हे "सिद्ध" आने का निमंत्रण दे डाला। मुझे उम्मीद नहीं थी पर उलट कर उन्होने पूछा 'कब'। मैंने अगले वर्ष सर्दियों के बाद आने का कहा और वे तुरंत मान गए। बाद में पता चला कि बहुत से पुराने साथियों को यह मंजूरी गवारा नहीं हुई। एक लिहाज़ से साथियों की यह शंका ठीक भी थी, आख़िर वे मुझे जानते ही कितना थे। पर बाबा आए और ठाठ से कई दिनों तक हमारे साथ रहे।

पर उससे पहले हम लोग उनके पास अमरकंटक गए और हफ़्ते भर उनके साथ रहे। इतना प्रेम मेरे जैसे ठूँठ ने पहले कभी महसूस नहीं किया था। बिना दिखावे वाला प्रेम, शुद्ध प्रेम जिसमे 'अनन्यता' झलकती थी। सुबह, दोपहर और रात को मिलाकर 21 बड़े खाने, बीच बीच में दो बार छोटा खाना। मुझे लगता है इनमें एक भी समय ऐसा नहीं था, रोटी और चावल छोड़ कर, जब किसी चीज़ को दोहराया गया हो। खाने का ठाठ क्या होता है, बाबा से ही पता चला। साधारण रहन-सहन। पर भोजन, बड़े बड़े पैसे वालों के यहाँ भी ऐसा ऐश्वर्य कहाँ? असली ठाठ। वाह! और खाने का सलीका, उसका स्वाद जम कर लेना - उनसे सीखा, पहली बार। इससे पहले या तो खाने को एक रस्म, मान कर रस्मअदाई करता था या फिर रण सिंह के प्रभाव में, 'संयम' को याद करके, कहाँ गलती हो रही है, उस पर ही ध्यान रहता था। बाबा से ही 'स्वाद और स्वास्थ्य को अलग अलग कटघरे में रखना गलत है', यह समझ आया। बाबा का जुम 'अपने पराये की दीवार हटानी है' इसके अर्थ कितने व्यापक हैं, यह समझ आया। यह सिर्फ व्यक्ति-व्यक्ति के बीच, या जातियों के बीच ही नहीं, दिमागी कटघरों, जिनमें फँसकर हम सोचते हैं, उन पर भी लागू होता है।

उस दौरान बाबा हमें अपने खेत दिखाने ले गए। उन खेतों को, जहाँ उन्होंने बरसों पहले खुद काम किया था, किसानी की थी। हम जीप में गए, बाबा जीप में आगे ड्राइवर के पास वाली सीट पर और हम पीछे। उन्होंने हर समय की तरह लूँगी और कुर्ता पहन रखा था। उनके बैठने का तरीका, फिर खेत में खड़े होकर हाथ फैलाते हुए खेत को दिखाना – मुझे यकायक लगा मैं किसी अतीत की यात्रा कर रहा हूँ। और किसी राजा को देख रहा हूँ। उसकी भव्यता को देख रहा हूँ। एक ऋषि-राजा, शेर-दिल, आत्म-विश्वास से भरपूर, अभयता को जिसने आत्मसात कर लिया हो और साथ ही असीम प्रेम से ओत-प्रोत। आदमी हो तो ऐसा हो। काश मैं उनकी इस अदा पर मुग्ध हो गया था।

दिन भर बाबा के पास उनके छोटे से मकान में रहना और उनसे बातें करते रहना। बीच में खाना और सोना, कभी-कभार साधन भाई के साथ घूमने निकल जाना, बस यही काम था, उन सात दिनों। बाबा से दर्शन की बातों के साथ साथ इधर-उधर की, राजनीति की, गांधी जी की, हिंदुस्तान- पाकिस्तान की, होमी भाभा की, अमरीका, पता नहीं कितनी ही और तरह की बातें भी होती रहती थी। वे मुझे बीच बीच में 'फ़लाने कहकर संबोधित करते थे – "क्यों फ़लाने?" "क्या फ़लाने?" मैं पहले समझा नहीं, ऐसा क्यों। तो उनसे पूछा तो वो बोले साधारण साधु समाज आपस में एक दूसरे को ऐसे ही संबोधित करता है। मुझे यह सुनकर गुदगुदी सी हुई।

ज्ञानी 'बाबा' शुष्क नहीं थे। बल्कि शुष्कता के आस-पास भी नहीं। उनसे संगीत, नृत्य, साहित्य, कविता, भोजन, कृषि, मशीन, आधुनिक विज्ञान, किसी भी मुद्दे पर बात हो सकती थी। मैंने की है, इसलिए कह रहा हूँ। इन विषयों में उनके ज्ञान और जानकारी की बारीकियाँ सुनते ही बनती थी। पर बाबा में एक गुण था; वे प्रायः हर 'जानकारी' को 'ज्ञान' में परिवर्तित करने की विलक्षण क्षमता रखते थे। उनके लिए हर चीज़ – छोटी से छोटी से लेकर बड़ी से बड़ी चीज़ – 'वास्तविकता' में आकर जुड़ती थी। वे उसके अंदर घुसकर उसके 'त्व' को पहचानने की विलक्षण क्षमता रखते थे। यही उनकी खूबी थी। यह बात धीरे-धीरे समझ आयी पर झलक उस पहली अमरकंटक की यात्रा में मुझे मिल गई। इसी वजह से मुझे लगा उनके सूत्रों को, उनकी बातों को फैलाने की (अपने ही अंदर), अपने दिमाग में, कितनी ज़रूरत है। शब्दों से परे जाने की कितनी ज़रूरत है। शब्द तो अपने आप में कटघरे ही हैं, या यह कहें- हमने उनके (शब्दों के) कटघरे खुद ही बना लिए हैं। कटघरे ही तो दीवारे हैं (अपने-पराये की दीवारें) जिन्हे बाबा तोड़ना चाहते थे।

मैंने जितनी भी दर्शन की बातें उनसे समझी वे एक तरफ, और अन्य बातों और व्यवहार, जो कभी-कभी (ऊपर ऊपर से) विरोध या द्वंद पैदा करते थे, उनसे भी उतना ही समझा। एक बार....अक्तूबर 2006 की बात है। हम लोग बाबा और 3-4 अन्य साथी (गणेश जी, शायद साधन भाई भी, वगैरह) राष्ट्रपति अब्दुल कलाम से मिलने राष्ट्रपति भवन गए। वहाँ से जब वापस लौटे तो बाबा ने गाड़ी से ही, फोन पर अम्बा दीदी से बात की। और उन्हें निर्देश दिया कि घर के सामने नर्मदा मैया का जो मंदिर है वहाँ किसी विशेष मूर्ति के सामने जा कर पूजा कर आयें। अब सवाल उठा – बाबा और देवी-देवता? बाबा और पूजा? बाबा और रीति-रिवाज? पर न मैंने और न ही किसी और ने सवाल किया। शायद औरों का ध्यान भी नहीं था उस तरफ। पर इस बात से किसी कृपा की वजह से मेरे मन मे कोई शंका नहीं उठी। मेरा बाबा पर असीम विश्वास और श्रद्धा थी, संभवतः उसके चलते। और बाद में अपने आप यह विरोधाभास का एहसास शांत हो गया। ऐसे ही कई बार और भी हुआ।

एक बार अमरकंटक में सम्मेलन था। गणेश जी के कोई मित्र वहाँ पहुँच गए। इंजीनियर थे, ISO सेर्टिफिकेशन का काम करते थे। दिन में किसी समय गणेश जी ने अपने मित्र के बारे में बाबा को बताया और यह भी कहा 'वो आपसे मिलना चाहते हैं।' बाबा ने सुन लिया, कुछ कहा नहीं। रात को हम कुछ लोग बाबा के पास उनकी छोटी सी बैठक में बैठे गपिया रहे थे। हम लोग बाबा के साथ उनके पलंग पर ही थे। इतने में वे सज्जन आ गए। हम लोगों ने उनको सामने रखे सोफ़ा पर बैठने का इशारा किया। बाबा ने उनके आने की अनदेखी सी कर दी और बातों का सिलसिला पहले की तरह जारी रखा। कुछ देर बाद मुझे अटपटा सा लगने लगा। लगा शायद बाबा को पता नहीं चला होगा, इन सज्जन के आगमन का। मैंने बाबा का ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा की, पर बाबा ने कोई ध्यान नहीं दिया, बात यथावत जारी रखी। कुछ देर बाद मैंने पुनः बाबा का ध्यान खींचा। इस बार बाबा ने उन सज्जन की तरफ देख कर पूछा, "हाँ, तो आपके पधारने का प्रयोजन?" सज्जन इस प्रश्न से सकपका गए। उन्होने कहा, "कुछ खास नहीं, बस आपके दर्शन करने थे"। बाबा ने तपाक जवाब दिया, "तो दर्शन तो हो गए, नमस्कार", और हमारी तरफ़ मुड़ कर बातों को वहीं से शुरू कर दिये, जहाँ व्यवधान हुआ था। वे सज्जन बेचारे झेंपते हुए वहाँ से चले गए। मुझे बुरा भी लगा। सम्बन्धों की बात करने वाले बाबा का इतना रूखा व्यवहार? मन मे सवाल उठा। पर बाद में एक गुत्थी सुलझ गई। औपचारिकता और संबंध के बीच का फ़र्क साफ़ हुआ, संबंध में

दिखावे की कोई जगह नहीं, साफ़ हुआ। और यह सब अपने आप धीरे-धीरे ध्यान देते-देते पता नहीं कब हुआ। मुझे लगा बाबा को लगा होगा कि यह व्यक्ति सिर्फ एक साधारण उत्सुकतावश किसी कहे जाने वाले महापुरुष को देखने (शायद जाँचने भी) आया था। इस तरह के सामान्य उत्सुकों के लिए वे क्यों अपना समय बर्बाद करें? जो बाते पहले से चल रहीं थीं वे ज़्यादा महत्वपूर्ण थी, तो उनमें बेवजह क्यों व्यवधान पैदा किया जाय? यह बात 'संबंध' के विषय में मेरे लिए बड़ी अहमियत रखती है। दिखावे और औपचारिकता से परे ही संबंध होता है। दिखावे और औपचारिकता में ईमानदारी कहाँ? और ईमानदारी नहीं तो ज़िम्मेदारी का तो सवाल ही नहीं उठता। मैंने बाबा की इन अनौपचारिक बातों से ज़्यादा सीखा है।

मुझे शिविर में प्रबोधन करने में हमेशा से ही परेशानी रही है। कई कारण रहे हैं। सर्वप्रथम तो यह कि जिस चीज़ को मैं स्वयं नहीं समझा उसे किस मुँह से समझाऊँ? सुनने वालों मे से बहुत से समझेंगे कि वो समझ रहें हैं (जो कि गलत है, पर यह होता है) और चूंकि उन्हे यह गलतफहमी होगी तो यह भी समझेंगे कि समझाने वाले (यानि मैं) ने समझ लिया है (तर्क होगा - तभी तो समझा पा रहा है)। जबकि मुझे यह पता रहेगा कि न मैं समझा हूँ और न ही वह समझे हैं। कितना बड़ा असत्य। और फिर जाने-अनजाने मुझे गुरु पद पर भी बैठा देंगे। उसका चस्का भी लग सकता है। इस सब से डर भी लगता था, वितृष्णा भी होती थी। वैसे भी धीरे-धीरे मुझे शिविर की डिजाइन (design) से परेशानी होने लगी थी। मुझे लगने लगा कि बाबा का 'मध्यस्थ दर्शन' और 'जीवन विद्या शिविर' दो अलग अलग चीज़ें हैं। मध्यस्थ दर्शन श्रेणीबद्ध नहीं है जबकी जीवन विद्या को श्रेणीबद्ध (step 1,2,3...) बनाया गया है। मध्यस्थ दर्शन तो hologram जैसा है, कहीं से भी पकड़ो वहीं 'एक' (शून्य) तक पहुँचोगे, अगर सही पहुँचोगे। यह सीधी सरल रेखा (linear) नहीं है। जब कि जीवन विद्या linearity का आभास देती है। तो जब मुझ पर बहुत दबाव पड़ा, शिविर लेने का, तो मैंने बाबा से बात की। मैंने अपनी शंकाएँ (ऊपर जिनका जिक्र किया गया है) उनके समक्ष (फोन पर) रखी। बाबा ने साधुवाद कहा और मेरी बात का अनुमोदन किया। फिर उन्होंने एक ऐसी बात कही जिसकी मैंने गांठ बांध ली है। उन्होने कहा, "तथास्तु। समझाना तर्क विधि से होता है पर समझना अनुभव विधि से होता है।" यही फर्क है समझाने में और समझने में। वाह। क्या बात है! इस एक बात से बहुत कल्याण हुआ। भाषा और शब्दों की सीमाएं और फँसावट भी समझ आई। क्यों महापुरुषों ने कहा है कि 'सत्य निर्वचनीय है' – यह भी समझ आया।

पिछले करीब 8-9 वर्षों से कई एक कारणों से मैंने अभियान से एक दूरी बना ली थी। उसके कारणों में यहाँ जाने का कोई प्रयोजन नहीं है किन्तु, इस वजह से बाबा से भी मिलना जुलना थोड़ा कम ही हो गया। पर शुरु-शुरु में बाबा मुझसे फोन पर बात करते रहे। वहाँ अमरकंटक आने के लिए भी कितनी ही बार कहा। मैं बहाने बनाता रहा। जा कर क्या करता? समझ नहीं आता था। बाबा कहते "कोई अच्छी बात बताओ" या फिर पूछते "कहाँ तक पहुँचे?" मैं क्या उत्तर देता समझ ही नहीं आता था। बातें तो बहुत सी करनी थी उस महामानव से। बहुत कुछ पूछना था। पूछना था क्यों एक दिन मुझसे पूछा, "तुम्हारी स्वीकृति हो तो तीन लोगों का नाम देना चाहता हूँ जब लोग मुझसे पूछते हैं कौन हैं वे लोग? उनमें से एक मेरा नाम कहाँ से आया?" पूछना था, "बाबा आप IIT में क्यों फँस के रह गए?" पूछना था, "इस देश के साधारण लोगों को आपने समझाने का प्रयास दूसरी भाषा/(साधारण)शब्दावली में क्यों नहीं किया? पूछना था "आप सब जानते हुए भी शांत क्यों रहते हो? बोलते क्यों

नहीं?" पूछना था "क्या यह देश यूँ ही दीनता-हीनता में रहेगा?" पूछना था "बाबा, नेति, नेति की विधि भी तो समझाने की एक विधि है। आप क्यों नहीं अपनाते?" पूछना था "संघर्ष और विरोध को सम्पूर्ण रूप से नकारना क्या ठीक है, बाबा? "उसकी भी जगह होगी, ज़रूर"। पूछना था, "आप अनुभव-मूलक विधि से समझे, आप प्रमाण हैं; और सारी दुनिया को अनुभवगामी विधि से समझाना चाहते हैं, जिसका कोई प्रमाण नहीं? आधुनिकता के चलते, आधुनिक विज्ञान के प्रभाव में, ऐसा कर रहे हैं?" पूछना था कि "बाबा, शास्त्र से जो संप्रेषित करने की चाह रहती है और जो संप्रेषित होता है (व्यक्ति के पूर्व अभ्यास की वजह से) उसमे फ़र्क होता है, बाबा। और संप्रेषणा करने वाले को, शास्त्र लिखने वाले को, क्या इसका एहसास नहीं होना चाहिए?" और यह भी कि "अनिश्चितता जो सहज जीवन का अभिन्न अंग है - जो आधुनिक विज्ञान को स्वीकार्य नहीं है - को आपने क्यों 'नियति' के पाले में डाल कर सब कुछ को निश्चित करने का प्रयास किया?" ऐसे ही कितनी बातें जो कभी हो नहीं पायीं।

अनगिनत प्रश्न, पीड़ा भी मन में हैं। नहीं होने चाहिए, पर हैं। पर ऐसा लगता है 'इस फ़लाने से फिर मुलाक़ात होगी, कभी न कभी। तब जम कर और ठाठ से बातें करेंगे – यहाँ या कहीं और, पर करेंगे अवश्य।

महामानव को शत शत प्रणाम। अनन्यता की मूर्ति को श्रद्धांजलि।

पवनकुमार गुप्त
मसूरी
30 अगस्त, 2016
pawansidh@gmail◦com

प्रभाव से प्रेरणा तक

"खूब खुश रहो। जय हो, मंगल हो, कल्याण हो।" – सामान्य से प्रतीत होने वाले आशीर्वाद के इन शब्दों के साथ कितनी भावनाएं, कितनी स्मृतियां, कितना अपनापन जुड़ा है – यह मध्यस्थ दर्शन से सम्बद्ध कोई भी व्यक्ति बता सकता है। मैं भी।

कभी कभी किसी एक घटना, एक व्यक्ति, एक संवाद, एक अनुभूति, एक लेख, या एक चित्र में पूरे जीवन का क्रम बदल देने की शक्ति होती है। और वह एक प्रभाव, मन को इस तरह प्रभावित करने में सक्षम होता है कि आप स्वयं में प्रश्नों और कौतूहल से भर जाते हैं। यह एक सर्वविदित सम्भावना है, जिसपर मेरा कतई भरोसा नहीं था। और कई बार जब आप किसी बात पर अड़ जाते हैं, तो एक ज़ोर का झटका चाहिए होता है उसे खण्डित करने के लिए। मेरे लिए बाबाजी से मिलना वैसा ही एक ज़ोर का झटका था।

'बाबा'- पहले तो मेरे लिए यह शब्द ही आपत्तिजनक था। अब तक मैंने परिचय शिविर भी नहीं किया था, और मुझे यह कहा गया कि इस शिविर में ऐसे दर्शन का परिचय मिलेगा जिसका प्रतिपादन 'बाबा' नागराज ने

किया है। मेरे मन की तात्कालिक प्रतिक्रिया थी – 'क्या इस देश में बाबाओं की कमी है जो एक और बाबा आ गये। क्या 'दर्शन', 'ज्ञान' जैसे भारी-भरकम शब्दों का व्यवहारिक जीवन से कोई सम्पर्क हो सकता है? इस तरह के शिविर तो बुजुर्गों के लिए होते हैं। एक और 'बाबा' ने अपनी दुकान खोल ली है।... इत्यादि।' आधुनिक अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली से शिक्षित, और भौतिकवादी स्वतंत्र माहौल में पले-बड़े हुए एक शहरी युवा की यह सामान्य अभिव्यक्ति है। पर उसे कहां पता था कि उसका सामना एक असामान्य विभूति से होने वाला है।

अगर मेरे पहले परिचय शिविर को बाबा से मेरी पहली भेंट मान ली जाए (क्योंकि व्यक्ति का परिचय उसके विचारों से ही अधिक होता है), तो इस पहली बार ने ही मुझे आकर्षण, अचंभे, विस्मय और उत्साह से भर दिया। और इस विस्मय में स्वयं के सारहीन जीवन के लिए व्यथा और क्षोभ था ही। सम्भव ही नहीं था कि यह प्रभाव निष्फ़ल हो; कि यह प्रेरणा में परिणत न हो। परिचय शिविर के पश्चात सहज क्रम में दर्शन से जुड़े रहना और बाबाजी से मिलना होता रहा। और उनसे जितनी बार भी मिलना हुआ, सेवा का मौका मिला- हर बार एक नयी प्रेरणा मिली, एक नया सुखद संचय हुआ।

किसी बाध्यता से नहीं, बल्कि उन्हें प्यार से बाबा कहा जाता था; ऐसा मैनें कहीं नहीं देखा। कहीं नहीं देखा कि इतने 'बड़े' व्यक्ति के समीप जिसे जगह मिल जाए, वही बैठ जाए, जैसे उनमें और हममें कोई भेद ही न हो। कहीं नहीं देखा कि उनके जैसे विशेष व्यक्ति के लिए रसोई से विशेष पकवान आये तो वे खुद खाने से पहले, कक्ष में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति (चाहे वह उनसे पहली बार मिला हो) से पूछें। कहीं नहीं देखा कि एक ही प्रश्न को बार बार अलग-अलग व्यक्ति द्वारा पूछे जाने पर भी उसी धैरय् से उत्तर दें। कहीं नहीं देखा कि किसी की डाँट में भी स्नेह और वात्सल्य भरा हो, इतना कि लोगों में डांट खाने की होड़ सी मच जाती हो - जिसने अधिक डांट खायी वह अधिक स्नेहभाजन। कहीं नहीं देखा कि किसी व्यक्ति की उपस्थिति मात्र से स्वयं में तुच्छता और नगण्यता का भाव आए, पर हीनता का भाव नहीं। यह तो कुछ लक्षण मात्र हैं जो मुझ जैसे अतिसीमित समझ वाले व्यक्ति के पकड़ में आये। ये लक्षण, और इनसे भास होने वाली बाबा के व्यक्तित्व के गहराई जीवन को सही दिशा दिखाने और उस दिशा में चलने की निरन्तर प्रेरणा देने के लिए पर्याप्त है।

सामान्यतया ज्यादा बोलने, ज्यादा प्रश्न और बहस करने को अभ्यस्त; बाबा के सम्मुख, मैं सिर्फ़ चुपचाप उनके पैर दबाना पसन्द करती थी। उनका अनकहा स्नेह और प्रेरणा सहज ही मुझ तक पहुँच जाता था। सम्भवत: मैं उनमें से नहीं, जिन्हें बाबा का सान्निध्य कई वर्षों तक मिला और जिनके पास बताने के लिए सैंकड़ों संस्मरण होंगे। पर भाव रूप में, मैं उतना ही कृतज्ञ और द्रवित महसूस करती हूँ। बाबा के व्यक्तित्व की आभा ही कुछ ऐसी थी... सब तक इसकी सुवास पहुँचती। यह तय है कि उनकी प्रेरणा से मुझे अपने विचार और व्यवहार में आमूलचूल परिवर्तन का काम निरन्तर करना है; सही की ओर बढ़ते रहना है। और इसलिए यह भी तय है कि अब बाबा का सान्निध्य (प्रेरणा रूप में) हमेशा ही बना रहना है।

सुप्रिया बैद

कोलकाता

प्रतीक से पार

बाबाजी से मैं कभी ज़्यादा बात नहीं कर पाई। लेकिन जब भी बात हुई या मैं उनसे मिली, हमेशा कुछ नया समझ आया और कुछ बातें और गहराई से समझ में आईं। कुछ बातें जो मुझे इस वक्त याद आ रही हैं, मैं इन्हें आप लोगों के साथ बताना चाहूँगी।

पहली मुलाक़ात में मैं थोड़ा डर रही थी क्योंकि मैंने कुछ दोस्तों से सुना था कि बाबाजी ने कैसे उनको खूब डांटा था। जब मैं उनसे मिली तो उन्होंने मुझे बहुत ध्यान से देखा और बहुत प्यार से बात की, मैं इंतज़ार करती रही कि कब डांट पड़ेगी। मुझे ख़ुशी हुई कि चलो मैं बच गई। दूसरी बार जब मैं मिली तो बड़े आराम से उनके पास बैठी और उस दिन मुझे खूब डांट पड़ी और फिर उन्होंने मुझे खूब खाना खिलाया। उस वक्त मुझे खाने का बिल्कुल जी नहीं चाह रहा था लेकिन उन्होंने ज़बरदस्ती खिलाया। मैं उस शाम बहुत हिल गई थी। मुझे किसी ने आज तक इतने कड़े शब्दों में नहीं डाँटा था। इसके बाद मैंने अपने काम पर, अपनी सोच पर और अपनी धारणाओं पर खूब प्रश्न चिन्ह लगाने शुरू किये और मुझे ये करने में बहुत अच्छा लगा।

जैसा कि अक्सर होता है मेरा नाम जल्दी किसी को याद नहीं रहता, बाबाजी को भी नहीं रहता था। एक दिन उन्होंने कहा, मैं तुम्हारा नया नाम रखता हूँ.... पाखरा, मतलब सत्य को पालने वाली। कितना बढ़िया नाम है और इस नाम को लेकर जीना कितना मुश्किल। लेकिन मुझे इस नाम से और हिम्मत मिली है। मैं जिस परिवार से आती हूँ, वहां पैर छूने का रिवाज़ बिल्कुल नहीं है। जब मैं बाबाजी से मिलती थी तो देखती थी सब उनके पैर छूते थे, लेकिन मैं आदत की वजह से नहीं छूती थी। मुझे ये अजीब लगता था; लेकिन बाबाजी ने कभी मुझे इस बात का एहसास नहीं होने दिया और वो हमेशा उतने ही प्यार से मुझसे मिलते थे। प्रतीक समाज में ज़रूरी हैं और प्रतीकों के परे देख पाना भी ज़रूरी है; ये मैंने बाबाजी से सीखा।

बाबाजी की जिन बातों ने मुझे प्रभावित किया वो हैं उनकी दमदारी, सही का साथ देते हुए भी रिश्तों को बहुत अच्छे से निभाना। न सही बात से समझौता करना और न ही रिश्तों से। वो यह कैसे कर पाते थे, ये मुझे बिलकुल समझ नहीं आया; लेकिन मैंने ये होते हुए देखा है।

मैं ये सोच रही हूँ कि हम सब बाबाजी की खूब तारीफ़ करेंगे, लेख लिखेंगे। लेकिन बाबाजी इन सबसे परे हैं। देखा जाए तो ये लेख हम अपने लिए लिख रहे हैं, उनके लिए नहीं।

फ़ाख़रा सिद्दीकी

बंगलुरु

अग्रहार नागराज "एक सम्पूर्ण मानव"

दोपहर बीत रहा है और सूर्य शनैः शनैः अस्ताचल की ओर गमन कर रहा है। आज दिन में बारिश हुई है, जिसकी वजह से वातावरण में ठंडक है। आकाश में अभी भी बादल छाए हुए हैं। घर में इस समय शांति है, कोई कोलाहल नहीं हो रहा। लोग अपने-अपने कक्ष में विश्राम कर रहे हैं। बच्चों को उनकी माँ ने दोपहर में ही खिला-पिलाकर सुला दिया है और अभी उनके जागने में विलम्ब है। एक हृष्ट पुष्ट और ऊँचे कद का वयोवृद्ध व्यक्ति इस समय अपने कक्ष में अकेला है। वो पलंग पर अपने शरीर को रज़ाई में लपेटे हुए पद्मासन लगाकर बैठा है और उसके सामने तकिये पर एक पुस्तक रखी है, जिसमें वो कुछ लिख रहा है। प्रतिभा की आभा और करुणा के भाव से उसका चेहरा दैदीप्यमान हो रहा है। आयु की वजह से उनके हाथ काँपने लगे है और वो एक भी लकीर सीधा नहीं खींच पाते। लेकिन फिर भी वो अपने कांपते हाथों से आड़ी तिरछी लकीरें खींचे जा रहा है। आत्मविश्वास और उपकार करने की भावना शरीर की असमर्थता पर भारी पर रही है।

कौन है यह व्यक्ति और वो क्या कर रहा है? ये व्यक्ति कोई और नहीं, मध्यस्थ दर्शन के प्रणेता, सह - अस्तित्ववाद के उद्गाता और अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन के व्याख्याता अमरकंटकवासी अग्रहार नागराज हैं और इस समय वो अपनी पुस्तक "मानव व्यवहार दर्शन" में संशोधन कर रहे हैं। मैं यह दृश्य देख कर उनके कक्ष के द्वार पर खड़ा हतप्रभ हूँ। तभी उनकी नज़र मुझ पर पड़ती है और वो लिखना रोक देते हैं तथा पुस्तक एक तरफ रखकर मुझे बैठने का इशारा करते हैं। फिर कहते हैं, "विश्राम हो गया। कुछ अच्छी बात हो जाय।" इसके बाद हमारा अपने गुरु से संवाद प्रारंभ होता है। थोड़ी देर में ही संध्या अपने पूरे श्रृंगार के साथ धरती पर उतर आती है और तभी हमारे गुरुजी बोल उठते हैं, "अम्बा को बुलाओ।" अम्बा उनकी पुत्री का नाम है जो अमरकंटक में उनके साथ ही रहती हैं और जिन्होंने अविवाहित रहते हुए अपना पूरा जीवन अपने पिता की सेवा में आहूत कर दिया है। मैं दौड़कर जाता हूँ और अपनी ममतामयी अम्बा दीदी को बुला लाता हूँ। उनके आते ही बाबाजी बोले, "आज मौसमी व्यंजन पकौड़ी बनाओ।" यह कहकर वो फिर बातचीत में व्यस्त हो जाते हैं। थोड़ी देर में गरमा-गरम पकौड़ी आ जाती है और मात्र दो पकौड़ी खाकर वो बाकी का सब मेरी थाली में डाल देते हैं। मैंने प्रायः देखा है बाबाजी बड़े चाव से कोई चीज़ बनवाते हैं, और स्वयं बहुत थोड़ा सा खाते हैं और शेष बाँट देते हैं।

हम बाबाजी से सबसे पहली बार मई २००५ में कानपुर में मिले थे। मेरा बी.टेक. का चौथा सेमेस्टर अभी पूरा हुआ था और गर्मी की छुट्टियाँ शुरु हो गई थीं। लेकिन अभी हम कैंपस में ही थे। सोच रहे थे कि थोड़ा रुककर घर जायेंगे। तभी एक दिन पता चला कि बाबा नागराजजी कुछ दिनों के लिए कानपुर आ रहे हैं। उस समय तक जीवन विद्या से हमारा परिचय हो चुका था और नागराज जी की कुछ पुस्तकें भी देखी थी। उनको देखने की बड़ी लालसा थी मन में। बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति का व्यक्तित्व कैसा होता है, इसकी जिज्ञासा मुझे बचपन से ही रही है। अब यह मौका आ रहा था जब एक ऐसे जीते जागते व्यक्ति से मुलाकात होगी। यह सोचकर हम बहुत प्रसन्न थे।

बाबाजी कानपुर में गणेश बागड़ियाजी के आवास पर रुके थे। जब हम आई. आई. टी. कैंपस से निकले तो दिन चढ़ आया था। ११ बज रहे होंगे और सड़कों पर लू चल रही थी। पसीने से भीगे हुए जब हम बागड़िया जी के

आवास पर पहुँचे, तो देखा कि उनके बैठक में एक हृष्ट पुष्ट वृद्ध व्यक्ति सफ़ेद धोती और बनियान पहने तख़्त पर मसनद का टेक लिए हुए पैर फैलाकर बैठा है। बाबाजी का चित्र उनकी पुस्तक पर हम पहले देख चुके थे इसलिए उन्हें पहचानने में कोई दिक्कत नहीं हुई। दो लोग उनके अगल-बगल बैठे उनका पैर दबा रहे थे। सामने दरी पर कुछ और लोग भी बैठे थे। वो कुछ बोल रहे थे, शायद सामने बैठे लोगों को सम्बोधित कर रहे हों। उनका जलवा देखकर हम दंग रह गए। उस समय वो किसी बादशाह से कम नहीं लग रहे थे। हम सीधा उनके पास गए और उनका चरण स्पर्श किया। उन्होंने सर पर हाथ रखा और जोर से बोले, "हरि हर। श्री हरि शरणं। भव तरणं। जय जय।" फिर जब हमने अपना सर उठाया और स्थिर हुए तो बोले, "कुछ अच्छी - अच्छी बातें हो जायें।" हमे समझ नहीं आया कि क्या बोलें? हम चुपचाप सामने और लोगों के साथ बैठ गए और ध्यान से बाबाजी को देखने लगे। बाबाजी उस समय याज्ञवल्क्य और गार्गी के संवाद के बारे में बता रहे थे। उन्होंने कहा, "राजा जनक ने अपने समय के विद्वानों को इकठ्ठा करके एक ब्रह्म विद्या शिविर लगाया। उसमें दो दल बन गए। एक ओर ब्रह्मवादी थे तो दूसरी ओर बुद्धिवादी। ब्रह्मवादियों के नेता याज्ञवल्क्य थे तो बुद्धिवादिओं की गार्गी। याज्ञवल्क्य ने कहा, "ब्रह्म एक है। उसका भाग- विभाग नहीं होता। जैसे सोना सोने में व्याप्त होता है, लोहा लोहे में व्याप्त होता है, उसी तरह व्यापक व्यापक में व्याप्त होता है।" फिर बताया कि वही ब्रह्म जीवों में आत्मा के रूप में बैठ जाता है, जिससे जीव बंधन में आता है। आत्मा जब फिर से ब्रह्म में विलय हो जाता है, तब मोक्ष होता है। इस पर बुद्धिवादिओं ने प्रतिवाद किया, "आपने कहा कि ब्रह्म एक है और फिर यह भी कह रहे हैं कि वो जीवों में आत्मा के रूप में बैठ जाता है। अब जीव तो अनेक हैं तो इस प्रकार ब्रह्म का भाग विभाग हो गया।" याज्ञवल्क्य ने इसका उत्तर देते हुए कहा, "यह घट-पट विधि से होता है। जैसे सूर्य तो एक ही है, लेकिन अगर बहुत से घड़ों में पानी भर कर रखा जाए तो वो हर घड़े में नज़र आता है।" बुद्धिवादिओं ने फिर प्रतिवाद किया, "तो क्या घड़े में सूर्य स्वयं बैठ जाता है ?" इस पर याज्ञवल्क्य नाराज़ हो गए और बोले, "तुम लोग नास्तिक हो। तुम्हारा सर गिर जाएगा।" अब बुद्धिवादी बोले, "हमें अपना सर नहीं गिरवाना। आप जो कहते हैं वो सब ठीक है।" तब याज्ञवल्क्य बोले, "तुम लोग बरसाती मेंढक की तरह टर्र से इधर जाते हो, फिर टर्र से उधर जाते हो।" इस प्रकार यह संवाद वितण्डावाद में समाप्त होता है।

यह चर्चा चल ही रही थी कि भोजन का आमंत्रण आ गया। बाबाजी ने सबको भोजन करने के लिए कहा। फिर पास खड़े बागड़िया जी से बोले, "हमारे साथ कौन भोजन करेगा?" बागड़ियाजी ने कहा, "मैं आपके साथ भोजन करूँगा।" बाबाजी के लिए भोजन का एक बड़ा सा थाल आया, जिसमें कई प्रकार के व्यञ्जन थे और उनकी मात्रा भी अच्छी खासी थी। बाबाजी मज़े से स्वाद लेकर खाने लगे। हमें फिर आश्चर्य हुआ कि ८५ वर्ष की आयु में बाबाजी इतना सब कैसे पचा लेते हैं? खैर, हमने भी भोजन किया। फिर बाबाजी के पास गए तो देखा कि अब वो आराम की मुद्रा में लेटे हुए हैं और दो लोग उनकी सेवा कर रहे हैं। हम भी उनके साथ सेवा में लग गए।

आगे चल कर यह कथा अलग-अलग अवसरों पर कई बार सुनी। मैंने पाया कि उस समय जो बाबाजी ने बोला था और बाद में जो बोले, उसमें एक भी शब्द का हेर फेर नहीं है। यह भी बाबाजी की अपनी एक शैली थी कि उनकी प्रस्तुति कुछ समय तक, जो कुछ महीने भी हो सकते हैं या कुछ वर्ष भी, एक जैसी होती थी यानि वो जब भी ज्ञान पर बोलते थे एक ही बात हर जगह और हर एक से बोलते थे। फिर कुछ समय पश्चात उसे बदल देते थे और नए तरीके से बात को रखते थे। उदाहरण के लिए जिस समय की बात मैं कर रहा हूँ, उस समय वो प्रायः

यज्ञवल्क्य - गार्गी संवाद की चर्चा करते थे; फिर कुछ समय बाद जब भी बोलते तो चेतना विकास मूल्य शिक्षा की बात करते, फिर अभी एक दो साल से मानव के शाकाहारी/माँसाहारी होने के बारे में बोलते थे।

मैंने बाबाजी को निकट से देखा, उनकी गोष्ठी-चर्चायें सुनी। मैंने देखा कि बाबाजी के दरबार में सबका स्वागत है। कोई भी उनसे मिल सकता है और उनसे प्रश्न कर सकता है। कभी भी उनको दरवाज़ा बंद करके किसी के साथ चर्चा करते नहीं सुना। कभी किसी के साथ धीमी आवाज में, कि कोई सुन न ले, इस प्रकार बात करते नहीं देखा। धर्मगुरुओं में मैंने प्रायः देखा है कि वो या तो मंच से बोलते हैं या फिर बंद दरवाज़े के पीछे कुछ मुख्य लोगों से बात करते हैं। उनके दरवाज़े पर कुछ मुस्टण्डे हमेशा तैनात रहते हैं कि कोई प्रतिकूल व्यक्ति न भीतर चला जाए। एक बार कानपुर में पायलट बाबा आये हुए थे प्रवचन देने। मैं अपनी जिज्ञासा लेकर उनसे मिलने चला गया। जब मैं पहुँचा तो वो मंच से प्रवचन कर रहे थे। फिर प्रवचन के बाद सीधे अपने कमरे में चले गए। उनके साथ कुछ और लोग जो देखने से काफ़ी मालदार लग रहे थे, वो भी उनके पीछे पीछे चल दिए। जब मैं उनके पास जाने लगा तो दरवाज़े पर उनके एक चेले ने रोक दिया। हमने कहा कि हम बहुत दूर से अपनी एक जिज्ञासा लेकर आये हैं और उनसे मिलना चाहते हैं। उसने कहा कि बाबाजी अभी व्यस्त हैं, नहीं मिल सकते। तो हमने कहा, "ठीक है। जब वो फुर्सत होंगे तब मिल लूंगा। बताओ तो सही कि वो कब फुर्सत होंगे ?" इस पर उसने मेरा परिचय पूछा। मैंने बता दिया कि छात्र हैं, कानपुर में रहकर पढ़ाई करते हैं। हमने यह नहीं बताया कि हम आई. आई. टी. में पढ़ते हैं। बताते तो शायद वो जाने देता या पायलट बाबा को मेरे आगमन की सूचना दे देता। लेकिन हम यह नहीं चाहते थे कि कोई हमसे इसलिए मिले क्यूंकि हम आई. आई. टी. से हैं। और किसी धर्मगुरु से तो यह मैं कदापि अपेक्षा नहीं कर सकता। खैर उसने मुझे मिलने नहीं दिया। हम वापस आ गए। फिर कई वर्ष बाद यह पता चला कि वो काले धन को सफ़ेद करने के अपराध में धर लिए गए हैं।

तो भैया हम बाबाजी की बात कर रहे थे। उनके पास कोई भी व्यक्ति पहुँच जाए, चाहे वो किसी भी मज़हब का हो, जाति का हो, अमीर हो या गरीब हो, पढ़ा लिखा हो या अनपढ़ हो, वो सबसे उतने ही प्रेम से मिलते थे। हाँ, लेकिन एक बात का ध्यान रखना पड़ता था कि अगर आप कुछ अनर्गल बोलेंगे तो फिर वो आपको छोड़ेंगे नहीं। इतने जोर से डाँटते थे कि अच्छे-अच्छे लोगों की सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती थी। लेकिन ऐसा भी नहीं था कि वो केवल डाँट कर छोड़ देते हों। डाँटने के ठीक बाद वो बड़े प्रेम से समझाते भी थे। उनका अपना एक तरीका था लोगों को निग्रह बिंदु पर लाने का। उन्होंने स्वयं एक बार कहा था, "आदमी के विचारों में इतना कुछ निरर्थक चलते रहता है कि किसी सही बात के लिए जगह ही नहीं होती। इसलिए उसे जोर से हिलाना पड़ता है ताकि थोड़ी देर के लिए उसके निरर्थक विचारों का प्रवाह रुक जाए और सही बात को भीतर जाने का मार्ग मिले।"

एक दिन बाबाजी दोपहर को सो रहे थे। हम उनके पास गए तो उन्होंने अपनी आँखें थोड़ी सी खोली और फिर मूंद ली। उस समय मुझे ऐसा लगा जैसे कोई शेर सो रहा हो और लेकिन वो इतना सतर्क है कि उसके आस-पास अगर एक पत्ता भी खड़कता है, तो वो अपनी आँखें थोड़ी सी खोल कर देखता है और फिर बंद कर लेता है। बाबाजी का व्यक्तित्व बिलकुल एक शेर जैसा ही था, ख़ास कर उनकी आँखें और उनका जबड़ा। साथ ही अगर कोई उनसे दर्शन पर वाद विवाद करे तो वो एक पहलवान की तरह ताल ठोंक कर खड़े हो जाते थे और मैदान में

उतर जाते थे या यह कहो कि वो हमेशा मैदान में ही रहते थे। उनकी तलवार हमेशा म्यान से बाहर ही रहती थी। और यह स्वाभाविक भी था; क्यूंकि अगर कोई अकेला व्यक्ति अब तक की पूरी परंपरा को चुनौती दे रहा हो, ७०० करोड़ लोगों के सामने जो अकेला खड़ा हो तो बिना ऐसे व्यक्तित्व के वो कितने देर टिकेगा।

उनके साथ अच्छी बातों का जो सिलसिला शुरू हुआ वो फिर कभी नहीं रुका। जब भी बाबाजी के साथ होते तो हम एक स्पंज की तरह वो जो भी बोलते उसे स्वयं में अवशोषित कर लेते। ऐसा शायद ही कोई विषय होगा जिस पर मैंने बाबाजी से बात न की हो और हर बार उनका उस विषय पर पकड़ देखकर चमत्कृत न हुआ हूँ। मध्यस्थ दर्शन पर उनसे बात होती ही थी लेकिन उसके अलावा भी बहुत से विषयों पर बात होती रहती थी जैसे - विज्ञान, तकनीकी, कला, नृत्य, संगीत, शास्त्र, पुराण, कहानी, उपन्यास, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, नाटक, खेल-कूद, पूजा-पाठ, योग-यज्ञ, गणित, ज्योतिष, तंत्र इत्यादि। इसी सन्दर्भ में एक घटना याद आ रही है। यह बात नवम्बर २०१० की है, जब बाबाजी जीवन विद्या सम्मलेन समाप्त होने के पश्चात बाँदा से कानपुर आये थे और मानवीय शिक्षा संस्कार संस्थान कानपुर में कुछ दिन रुके थे। सौभाग्य से उस दौरान लगभग पूरे समय मैं बाबाजी के साथ ही था। एक दिन शाम को हम बाबाजी की सेवा कर रहे थे और साथ में अच्छी बातें चल रही थी। अचानक बाबाजी बोले, "बेटा। अभी एक पुड़िया तो हमने खोला ही नहीं।" हमने पूछा, "वो क्या बाबाजी ?" तो बोले, "ज्योतिष। अभी जितने भी ज्योतिषाचार्य हैं, मैं उन सबका पितामह हूँ।" फिर उन्होंने अपना एक संस्मरण सुनाया। बोले, "जब हम साधना काल में थे यह तब की बात है। पेंड्रा रेलवे स्टेशन में एक व्यक्ति नौकरी करते थे, जिनसे हमारा परिचय था। उनके घर में एक बच्चे ने जन्म लिया। घर के लोगों ने काशी के ज्योतिषाचार्यों से उस बच्चे की जन्म कुंडली बनवाई। पंडितों ने कहा, 'यह बच्चा अल्पायु है। ५ वर्ष से अधिक नहीं जीएगा। इसके दूर करने का उपाय हम कर सकते हैं, लेकिन इसमें काफ़ी धन खर्च होगा।' घर के लोग यह सुनकर उदास हो गये। वो लोग अभी असमंजस में ही थे कि रेलवे वाले सज्जन घर पहुँच गए। सारी बातें सुनने के पश्चात उन्होंने तय किया कि इस बारे में हमसे सलाह लिया जाए। "बाबाजी ने प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए बताया कि वो अगली ही गाड़ी से पेंड्रा रोड के लिए निकल पड़े और सीधा नागराज जी के घर पहुँच गए। बाबाजी को सारी बातें बताई। उस समय रात्रि हो गई थी। बाबाजी ने उसी समय दीपक के प्रकाश में उस बच्चे की कुंडली बनायी, उस पर अपने हस्ताक्षर किये और उसे उस सज्जन को देकर बोले, "बच्चा अल्पायु नहीं है। इसके स्वास्थ्य में कोई दोष नहीं है। लेकिन इसकी पढ़ाई पर ध्यान दें। इसकी शिक्षा में दोष हो सकता है। "वो सज्जन बहुत खुश हुए और बाद में जब उन्होंने यह जन्म-कुंडली काशी के विद्वान ज्योतिषाचार्यों को दिखाया तो वो बोले, "जिसने भी यह कुंडली बनायी है, एक दम सही बनायी है। हम लोगों का कुछ चीजों पर ध्यान नहीं गया था, इसलिए गलती हुई।" वो बच्चा आज भी जीवित है, लेकिन पढ़ नहीं पाया। यानि बाबाजी की दोनों भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई। हमने पूछा, "बाबाजी। आपने यह पुड़िया खोली क्यों नहीं ?" तो बोले, "इससे मजमा लगता है और हमें मजमा नहीं लगाना।"

बाबाजी दार्शनिक तो थे, लेकिन शुष्क नहीं थे; जैसा प्रायः ज्ञानी लोग हो जाते हैं। उनमें विनोद की मात्रा भी प्रचुर थी। एक दिन शाम को बाबाजी अपने कक्ष में बैठे थे। अचानक दिल्ली के योगाचार्य प्रेम भाटियाजी आ गए और बाबा से योग करने को कहने लगे। बाबाजी ने कहा, "ठीक है। हो जाए।" फिर क्या? लगे भाटिया जी, बाबाजी को अपना योग कराने। जैसा-जैसा भाटियाजी बोलते, बाबाजी एक आज्ञाकारी शिष्य की तरह करते जाते। बीच-

बीच में भाटियाजी बाबाजी का उत्साह बढ़ाते, "वाह जी वाह! बहुत अच्छे। क्या बात है जी। वाह जी वाह।" धीरे-धीरे भाटियाजी योग से दर्शन पर उतर आये और कुछ समीक्षा करने लगे। थोड़ी देर बाबाजी सुनते रहे, फिर बोले, "भाटियाजी। यह जो आप हमको सर्कस करा रहें हैं वो हम बहुत कर चुके हैं। समाधि के पहले ६४ आसन सिद्ध करने पड़ते हैं। हम वो सब करके बैठा हूँ।" अब इस पर भाटियाजी क्या बोलते ?

ऐसी बहुत सी बातें हैं। बाबाजी के साथ जीना ही अपने आप में अध्ययन था। यद्यपि हमने बाबाजी के सम्पूर्ण वाङ्ग्मय का कई बार पठन किया है, किन्तु फिर भी मैं यही कहूँगा कि जो उनके साथ रहकर समझा सीखा, वो किसी भी वाङ्ग्मय से बड़ा है। जब हम सब छोड़ कर बाबाजी के पास ज्ञान के लिए गए थे तो तब उन्होंने कहा था, "मैंने पर्याप्त अध्ययन करा दिया है। मेरी आयु भी हो गयी है। इसलिए अध्ययन कराना बंद कर दिया है। लेकिन आपकी जिज्ञासा ठीक है। हम आपको अध्ययन करायेंगे।" और उन्होंने पूरे मनोयोग से मुझे अध्ययन कराया जो मेरी ज़िंदगी की सबसे बड़ी उपलब्धि है। अभी हाल में ही एक अमेरिकी मित्र ने पूछा, "तुम्हारे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि क्या है ?" हमने उससे कहा, "मेरे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि मैं श्री अग्रहार नागराजजी का शिष्य हूँ।"

बाबाजी ने हमको बहुत स्नेह दिया और उनको हमसे बहुत अपेक्षाएं भी थी लेकिन अपनी अनुशासनहीं न जीवन शैली और अनियमित दिनचर्या की वजह से उनकी एक भी अपेक्षा पूरी न कर पाए। इसका हमे बेहद अफ़सोस होता है, लेकिन उम्मीद करते हैं कि भविष्य में कुछ करेंगे ज़रूर। आज हमारा जीवन पहले से काफ़ी अनुशासित है और दिनचर्या भी व्यवस्थित है, बाबाजी अगर हमारी आज की स्थिति को देखते तो बहुत खुश होते। एक और चीज का दुःख होता है कि उनके अंत समय में हम उनके साथ नहीं थे। यह तो हमें सूचना थी कि उनकी तबियत ठीक नहीं चल रही। लेकिन अंत तक सोचते रहे कि वो ठीक हो जायेंगे। किन्तु बाबाजी ने 5 मार्च को सुबह 7:52 बजे शरीर त्याग दिया। तब हम अमेरिका में थे और सूचना भी देर से मिली। इसलिए उनके अंतिम दर्शन नहीं कर पाये।

बाबाजी के बारे में जब भी लिखने बैठता हूँ, तो बहुत सी बातें याद आने लगती हैं। समझ नहीं आता, क्या-क्या लिखूं। जितना भी लिखता हूँ कम लगता है। अमीर खुसरो की तरह हम भी अपने साँसों की माला पर अपने गुरु के नाम का सिमरन करते हैं।

करे स्मरण श्री नागराज को अकिंचन पवनकुमार।
अर्पित कृतज्ञता जिनके चरणों में करहुँ इसे स्वीकार ॥

पवन कुमार
शोध छात्र, यांत्रिकी अभियंत्रण
टेनेसी विश्वविद्यालय
संयुक्त राज्य अमेरिका

गागर में सागर

[आज, दिनांक 1 नवम्बर 2016 को 3.15 दोपहर को पुत्र चिरंजीव उम्मेद नाहटा का मुम्बई से फोन आया कि वो श्री ए. नागराज जी की स्मृति में स्मर्णिका निकालना चाहते है। उनका आग्रह है कि मैं भी आदरणीय बाबाजी पर कोई लेख लिखूँ, जिसे वो अपनी पत्रिका में प्रकाशित कर सकें। नाहटाजी का विशेष आग्रह है कि सागर को चम्मच में समेट कर चार पृष्ठों में ही देना है। सागर को तो किसी में भी नहीं लाया जा सकता, पर मैं, चम्मच में ना सही पर गागर में भरने का प्रयास अवश्य ही करूंगा। देखें, कितनी सफलता मिलती है।]

मानव जन्म से ही अपने आस-पास ज़मीन आसमान के बीच जो घटता है, जानना चाहता ही है; क्योंकि यह मानवीय स्वभाव है। मेरा जन्म या शरीर यात्रा जहाँजैसी भी प्रारम्भ हुई, इसके बाद जो सुना, माना, पढ़ा या सुनाया; वही मान्यता के रूप में हमारे मन मस्तिष्क में छाई हुई है। यह हमारे अकेले की बात नहींनहीं है, सारी मानव जाति के साथ भी यही हुआ। जितने आप्त प्रमाण समाज में उपलब्ध हैं, मुझे भी अध्ययन, मनन करने का अवसर मिला; जिसमें वर्ण व्यवस्था जाति, धर्म, ऊँच-नीच में मानव बंटकर रह गया है।

अखण्ड मानव जाति खण्ड-खण्ड होकर ईर्ष्या, द्वेष, विरोध व युद्ध की स्थिति में जीने के लिये विवश हो गई। मैं अपनी शरीर यात्रा कहूँ या संघर्ष यात्रा, इसमें अनेक उतार चढ़ाव के साथ जो मैंने देखा समझा वह इस प्रकार है:-

'यह संसार कोई चलाता है, चलाने वाला सबके काम व लेना-देना तय करता है। इसमें मानव का कोई हस्तक्षेप नहीं है। इसके साथ ही मुझे विदुर नीति, मनु स्मृति, चाणक्य आदि महान विद्वानो को भी पढ़ने का अवसर मिला। और भी कई विद्वान ऋषि, मुनि, महर्षियों ने मानव जाति के लिए बहुत कुछ किया, जो अदभुत है। उपलब्ध आप्त प्रमाणों में षड् दर्शन, वेद, पुराण, उपनिषद, गीता, भागवत, रामायण, बाइबिल, बुद्ध, कबीर, कुरान, महावीर, व्यास अनेक विद्वानों से लेकर कनफ्युशिय्स, कार्ल मार्क्स तक सब ने कहीं न कहीं शुभ का प्रयास किया है। उन महान विद्वानों के कारण मानव में जो अच्छाईयां हैं, वो इन्हीं के कारण हैं। इसलिये सभी विद्वान वन्दनीय तो हैं ही।'

श्री आदरणीय महर्षि ए. नागराज जी के दरष/परष सौभाग्य से मेरे घर पर ही हुए। उनके चरण मेरे घर पड़ने व उनसे वार्तालाप करने पर लगा कि विश्वास और न्याय स्वयं सशरीर मेरे सामने है। उनके पास हर प्रश्न का उत्तर जोरदार ठहाके के साथ, निरुत्तर कर देने की स्थिति तक मैंने एक महान व्यक्तित्व के साक्षात दर्शन किये। बाबाजी से ही ज्ञात हुआ कि उन्होंने अनुसंधान करके अस्तित्व को समझा है और उस अनुसंधान को मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद के नाम से कई भागों में प्रकाशित किया है। उसके पश्चात आदरणीय ए. नागराजजी से हमारा पारिवारिक सम्बन्ध हो गया, और मुझे दर्शन को समझने का अवसर मिला।

मध्यस्थ दर्शन में बाबाजी ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है, विगत में वो सारे शब्द उपलब्ध हैं। परन्तु मेरे खयाल से उन शब्दों के वास्तविक अर्थ अब स्पष्ट हुए हैं। विगत के विद्वानों के सारे अच्छे प्रयास के बावजूद भी

कुछ छूट गया था। वह अखण्ड मानव समाज, सार्वभौम व्यवस्था और उसका प्रमाण यह छूटने से जो भी पाया, जनमानस में सहज/सफल नहीं हो पाया। मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तितववाद में एक भी ऐसी बात नहीं कही गयी, जिसका प्रमाण नहीं हो। प्रकृति की चारों अवस्थाओं से लेकर व्यापक की परस्पर पूरकता के साथ मानव मानवीयतापूर्ण आचरण सहजता/सरलता के साथ प्रमाण पूर्वक जी सकता है - यह स्पष्ट हो गया। इसमें कहीं भी रहस्य व चमत्कार नहीं है।

आधारहीन मान्यताओं के कारण अखण्ड मानव समाज में अवरोध आज तक होता रहा है। शिक्षा व संस्कारों में शुभ घटित नहीं हो पाया और सारी मानव जाति दीनता, हीनता पूर्वक जीने को विवश हो गई। यही मानव जाति की पीड़ा है। मध्यस्थ दर्शन में बाबा जी ने एक-एक पहलू को स्पष्ट किया है। अणु से लेकर ब्रह्माण्ड, चींटी से लेकर आगे डायनासौर के साथ चारों अवस्थाओं को व्याख्यायित किया जो मानव के लिये अध्ययन विधि से सार्वभौम व्यवहारिक रूप में सहजता से प्रत्येक के लिये उपलब्ध है। प्रिय, हित, लाभ; न्याय, धर्म, सत्य तक दृष्टि, विषय, स्वभाव को स्पष्ट कर दिया है। आदरणीय बाबाजी ने जितनी कठिनाई से पाया है, ठीक वैसा का वैसा बड़ी ही सरलता के साथ मानव जाति के लिये अर्पित, समर्पित कर दिया है। श्री ए. नागराज जी ने हमारे पूर्वजों के कार्य को लक्ष्य तक ठीक पहुँचाया, इसके बाद भी एक शब्द नहीं कहा कि यह उन्होंने किया है। सदैव यही कहा कि पूर्वजों के आशीर्वाद और यह मानव जाति के पुण्य से उनके द्वारा हो गया है।

श्री ए. नागराजजी ने बार-बार कहा कि किसी भी वस्तु विषय का प्रमाण पुस्तक नहीं होती, व्यक्ति ही प्रमाण है। पुस्तकें तो शास्त्र व सूचना के व आप्त प्रमाण के रूप में होती हैं। उन्होने बार-बार कहा कि वह प्रमाणित हैं।

साथियों, मैने संक्षिप्त मे जो कुछ कहा, कोई नई बात नहीं है। जो- जो भी श्री नागराजजी के साथ रहे, उनसे मिले, सुना, समझा, वो सभी जानते होंगे कि उनका स्वभाव, व्यवहार, भाषा शैली, आचरण कितना सहज और पारदर्शी था। मेरा श्री ए. नागराजजी से पारिवारिक सम्बन्ध रहा। हमारा परिवार लगभग 45 वर्ष उनसे जुड़ा रहा, और मेरे जैसा प्यासा जिज्ञासु, पीड़ित, मैंने नहीं देखा। मैंने अपनी सारी जिज्ञासाएँ उनके सामने रखी, उन्होंने उन्हें शान्त किया और आज मैं यह कहने की स्थिति में हूँ कि मुझ जैसा बिगड़ा हुआ, जिददी, दोषयुक्त को आदरणीय श्री नागराजजी ने झेला या बर्दाश्त किया और इस लायक कर दिया कि मैं सूर्य को उसकी रोशनी कैसी है, बताने ही चल पड़ा।

दोस्तों मेरे उनके बीच या दो परिवार का एक परिवार बना, जैसे जीवन और शरीर, वीणा और स्वर, प्राण-शरीर व जीवन व जिन्दगी का रिश्ता रहा है। वो मुझसे बहुत प्यार करते थे, और मुझे ही अधिक डाँटते थे - यह उनकी महता कृपा रही, उनका स्नेह आशीर्वाद रहा।

मेरी अपनी व्यक्तिगत उपलब्धि की बात करें, तो मैने वह सब कुछ पाया जो ईश्वर से पाया जा सकता है। अगर मैं व्यापक परमात्म सत्ता को साकार स्वरूप में देखने की बात कहूँ तो मेरे अनुसार वह श्री महर्षि ए. नागराज जी शर्मा हैं। मेरी बात रहस्य और आदर्शवाद या चमत्कार में ना चली जाए, इसलिये बहुत थोड़े में ही कहूँगा। मेरी पत्नी के जीवनदान, पत्नी द्वारा पूर्ण प्राप्ति हेतु चित्रकुट में खुद पूजा करवाना। मुझे क्षणिक सृष्टि दर्शन का आभास

करवाना, दिव्य देवी दर्शन और शरीर जागरण हेतु विशेष स्थान पर कुछ इस तरह मारना कि दर्द का आनन्द, दिव्य-आत्माओ के साथ सम्पर्क होता रहे।

बस इतना ही तो कहना ठीक नहीं है, पर जैसा हमारे पुत्र श्री उमैद नाहटा का आदेश, निर्देश है, उसके कारण उसी सीमा में गागर में सागर भरने की जोखिम उठाई है। साथियों, इतना तो मैं दावे के साथ कहता हूँ कि श्री ए. नागराजजी के मध्यस्थ दर्शन को शिक्षा के माध्यम से अध्ययन कराया गया तो विश्व में एक ही विकल्प है कि इससे अखण्ड मानव समाज, सार्वभौम व्यवस्था में जीकर, युद्ध व दु:खों से मुक्त होकर समाधान, समृद्धि, अभय व सहअस्तित्व को पाकर समझदार मानव ही देवता होंगे, इसमें कोई शक नहीं और यह धरती ही स्वर्ग होगी। अपनी बात समाप्त करते हुए इतना कहना चाहता हूँ कि मैने अपनी समझ से मध्यस्थ दर्शन पर गीत, कविता, गज़ल, शेरो-शायरी, स्मृति-संस्करण, मैं कौन हूँ के साथ बहुत कुछ लिखा है। वह संस्था के माध्यम से उपलब्ध हो सकता है। जिन्हें पढ़ने की इच्छा हो, पेनड्राइव में भी पा सकते हैं।

धन्यवाद,

डॉ॰ बी॰ एल॰ दायमा
इन्दौर 4520010 मध्यप्रदेश

बाबाजी और नागपुर – कुछ संस्मरण।

कुछ दो साल पहले की बात। मुझे अछोटी से फोन आता है – "बाबाजी बुलढ़ाना जा रहे हैं, जाते हुए पहले नागपुर में रुकेंगे। क्या आप व्यवस्था कर सकते हैं?" कुछ देर तो मुझे लगा "क्या यह सच है?" थोड़ा देर लगा यह बात पचाने में; सोचा, इतने बड़े महापुरुष मेरे घर आयेंगे यह तो जीवन में आनेवाला दुर्लभ अवसर है और मैंने हाँ भर दी और काम पर लग गए।

बाबाजी व उनके साथ १०-१५ लोग सबके ठहरने की तथा खाने की व्यवस्था में पूरा परिवार जुट गया। केवल हफ्ता ही था। विद्या से जुड़े हुए सभी लोगों का सहयोग लेकर पूरी तैयारी हुई और वह दिन आया।

सुबह से फोन चालू – बाबाजी निकल चुके है – अब भंडारा पहुँचे है – अब यहाँ, अब वहां, पूरे ७-८ घंटे का रास्ता ४-५ घंटे में ही तय करके बाबाजी नागपुर में प्रवेश किये और वहाँ से मेरे घर आते-आते करीब एक घंटा लग गया। सबसे पहले बाबाजी की गाड़ी घर के सामने पहुँची। मैं मिलने गया – प्रणाम करके पहले श्री साधन भाई को व्यवस्था दिखा ही रहा था तो बाबाजी ने गाड़ी से ही आवाज दी, " हेमंत को बुलाओ।" मैं गया, तो बोले, "खाना क्या बनाया?" मैंने सब बताया, तो गाड़ी से ही बोले, "लेके आओ – हम यहीं खायेंगे।" मुझे तो कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है। अच्छा, तब मेरा बाबाजी से परिचय भी इतना नहीं था कि उनसे मैं आग्रह करूँ। फिर भी कुछ-कुछ बोला तो उन्होंने मुझे समझाया, "पैर में रौड है, उतरने-चढ़ने में तकलीफ होगी और फिर बुलढ़ाना भी शाम तक पहुँचना है।" मन थोड़े देर के लिए थोड़ा नाराज़ तो ज़रूर हुआ लेकिन मैंने सोचा कि बाबाजी

ने जो सोचा वह ठीक ही होगा। मेरे लिए तो उनका यहाँ तक आना ही एक अविस्मरणीय घटना थी। तुरंत घर से थाली में उनके लिए खाना ले आये और उन्होंने बड़े प्यार से सभी कुछ खाया। घर के केले और अमरुद भी थे, वह भी खाए।

और फिर एक अवसर मिला जब केवल बाबाजी और मैं गाडी में, बाकी सब घर में खाना खा रहे थे। तब मैंने बाबाजी से पूछा, "बाबाजी प्रमाणीकरण के लिए क्या अकेले परिवार प्रयास करे या किसी समूह के साथ जुड़े?" बाबाजी ने जवाब दिया "जो आप सुगम समझो।" केवल चार शब्द –कोई उपदेश नहीं, कोई जबरदस्ती नहीं – no do's and don't's। कितना विश्वास। मेरे छोटे बेटा जी भी गाड़ी में बैठे थे, उन्होंने एक सवाल पूछा,"बाबाजी, पहले के ज़माने में सन्यास क्यों लेते थे?" बाबाजी ने बड़े प्यार से बताया कि उनके पास कोई विकल्प ही नहीं था। एक ९ साल के बच्चे की जिज्ञासा को भी उन्होंने इतने सम्मान के साथ जवाब दिया, वह मुझे बहुत अच्छा लगा। उसके बाद घर में आए हुए सभी नागपुरवासियों का परिचय गाडी में बैठे -बैठे ही हुआ। सबके साथ वही प्यार से बात और सम्मान के साथ पेश आना। मेरा बाजु में बैठे अध्ययन चालु ही था। मेरी पत्नी से कहा, "बड़े शहर में अच्छा काम कर रहे हो – आशीर्वाद है।" तब तक सभी लोगों का भोजन हुआ, सभी तृप्त हुए - यह सुनकर बहुत अच्छे भाव का अनुभव हुआ। बस, एक-आध घंटा ही हुआ था कि बाबाजी की यात्रा हम सबको एक उत्साह, ऊर्जा और प्यार देते हुए आगे चली।

बाद में मुझे पता चला कि नागपुर में वह अपने एक पुराने शिष्य स्वर्गीय श्री शर्माजी के यहाँ उतरने वाले थे लेकिन कुछ कारण वश कार्यक्रम बदला था। इसी यात्रा में जब शर्माजी के सुपुत्र श्री केशवजी और उनका परिवार मेरे यहाँ मिले थे तो उन्होंने कहा, "मै आपके यहाँ अगली बार ज़रूर आऊँगा।" और ये वचन उन्होंने कुछ महीनों में ही केवल शर्माजी के परिवार को मिलने के लिए अछोटी से नागपुर आकर पूरा किया। ९४ साल की उम्र में केवल पारिवारिक संबंध को निभाने के लिए बाबाजी का ये आचरण हम सब के लिए एक मिसाल ही था। तब तक थोड़ा परिचय भी हो चुका था तो उन्होंने आग्रह करके अछोटी से मुझे अपने साथ ही आने को कहा। नागपुर में शर्माजी के घर पधारते ही मेरे बारे में पूछा और जब उनको पता चला कि मैं उन्हीं की गाड़ी के पीछे वाली गाड़ी में साथ-साथ आया तो कहे, " बहुत बढ़िया-बहुत बढ़िया।" फिर बोले "नागपुर में सम्मेलन करोगे?" मैंने कहाँ, "हाँ, ज़रूर।" मुझे लगता है इस बात के पीछे नागपुर की योग्यता से ज़्यादा मेरा सम्मान करना था।

इसके बाद भी महाराष्ट्र में यात्रा के दौरान दो बार नागपुर में थोड़े देर के लिए रुकना हुआ। तब भी वह मुझे बुलाकर कहते, "हम आपके यहाँ आये थे और खाना खाए थे।" मुस्कुराते हुए यह भी कहते थे कि उन्हें अभी भी याद हैं। उनके ये शब्द तृप्ति देते थे। इस दौरान नागपुर में एक मंदिर के भक्त-निवास में रुकना हुआ तो उन्होंने जाने से पहले, मंदिर के जो ट्रस्टी थे, को बुला कर कुछ पैसे दिए और कहा, "यह हमारे तरफ से।" जब उन्होंने दान रशीद देने की बात कही तो कहे, "यह तुम्हारे लिए है।" जैसे परिवार में कोई बुजुर्ग जाते हुए घर के बच्चे के हाथ में कुछ रख जाता है – वह भाव लगा। उन ट्रस्टीज ने जो भी समझा हो (वह बहुत प्रतिष्ठित व पैसेवाले लोग थे) लेकिन उनका आचरण एकदम नियंत्रित होते हुए देखा। जहाँ भी जाते एक परिवार भाव का परिचय होता था।

रायपुर से नागपुर में आते हुए मौदा गाव में एक रबड़ी वाले की दूकान है। नागपुर में आते-जाते वहाँएक स्टॉप ज़रूर होता था। वह व्यक्ति भी बहुत आनंद और उत्साह के साथ बाबाजी और सभी लोगों को सम्मान के साथ सेवा देता। दूसरी बार नागपुर आते समय जब बाबाजी वहाँ रुके थे तब उन्होंने बहुत ज़ोरदार सम्मान के साथ स्वागत किया था, ऐसा बताते हैं। इस तरह बाबाजी के साथ यात्रा में भी एक अलग ही आनंद का अनुभव होता था।

दर्शन से परिचय हुआ था तब मैं शब्दों पर ज़्यादा ध्यान देनेवालों में से, या यूँ कहें कि "क्या कहा है?" इस पर ध्यान ज़्यादा देनेवाले बुद्धिजीवियों जैसा था। हमेशा लोग कहते थे कि बाबाजी को मिलना भी उतना ही महत्वपूर्ण है, लेकिन मैं उस तरफ ज़्यादा ध्यान नहीं देता था। थोड़ा ऐसे भी था कि बाबाजी को मिलने के लिए जो पात्रता चाहिए वह पहले अर्जित करें (शायद मेरा अहंकार होगा)। लेकिन कुछ मित्रों के आग्रह से बाबाजी से मिलना हुआ और उसके बाद जो प्रामाणिकता का अध्ययन हुआ, उससे ऐसा लगा कि शायद मैं थोड़े पहले ये बात सुन लेता।

बाबाजी का मुझे बहुत ही अल्प सान्निध्य मिला, लेकिन उतने ही समय में उन्होंने जो अध्ययन कराया है वह दर्शन के प्रति निष्ठा को इतना मजबूत किया है कि इसके अलावा अभी जीवन में कोई सार्थक काम दिखता ही नहीं। उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ और बचे हुए शरीरयात्रा में दर्शन को समझने और प्रमाणित करने के लिए स्वयं को परिवार सहित समर्पित करता हूँ।

हेमंत मोहरीर एवं परिवार

नागपुर (15-01-2016)

श्री ए.नागराज जी के दर्शन व उनसे प्राप्त प्रेरणा व कार्यक्रम

श्रद्धेय बाबा श्री ए.नागराजजी एवं उनके दर्शन से मेरा परिचय सन् 2002 में हुआ। परिचय शिविर उपरांत मुझे ऐसे लगा कि "जीवन विद्या" की शिक्षा स्कूलों में शिक्षकों एवं बच्चों को तत्काल दिया जाय। इसी बीच अभ्युदय संस्थान अछोटी (छ.ग.) में बाबा जी से प्रायः प्रत्यक्ष भेंट होती रहती थी; क्योंकि मैं अभ्युदय संस्थान अछोटी के ठीक पास के गांव मुरमुंदा के सरकारी स्कूल में प्रधानाचार्य था।

एक बार मैंने बड़ी ही उत्सुकता व जिज्ञासावश बाबा जी से चर्चा के दरम्यान आग्रह किया, "बाबा जी आपका यह "दर्शन" प्रत्येक मानव के लिए उपयोगी है। आप ऐसा क्यों नहीं करते कि हमारे प्रदेश के शिक्षामंत्री या मुख्यमंत्री से मिलकर इस विषय को पूरे प्रदेश के बच्चों को पढ़ाने के लिए कोई कार्यक्रम बनाते, कोई आदेश आदि निकलवाते। "बाबा जी मेरी तरफ़ देखकर बोले,"आपने समझने का काम किया?" मैंने कहा, "बाबा जी मैंने 3-4 परिचय शिविर किया है। मुझे बहुत अच्छा लगता है, और मेरा विश्वास है कि इसे प्रत्येक बच्चा अच्छा से समझ पाएगा। बाबा जी तुरंत बोले – "अच्छा लगना और अच्छा होना दोनों अलग-अलग बात है। आपने तो इसे बच्चों के साथ प्रयोग करके देखा ही नहींनहीं है। फिर कैसे कह सकते हो, उन्हे अच्छा लगेगा? वे सब समझदार बन जाएँगे।"

मैं कुछ समझ पाता उससे पहले वे बोले – "आप सब अभी समझे नहीं हो और बच्चों को समझाना चाहते हो, आपकी जिज्ञासा मैं समझ सकता हूँ। एक काम करते हैं - अभ्युदय संस्थान में कुछ लोग इसे ठीक समझ रहे हैं, कुछ समझ गये हैं। उनके साथ आप अपने स्कूल में बच्चों के बीच "चेतना विकास मूल्य शिक्षा" पर कुछ दिन काम करो। यदि बच्चों में सकारात्मक फल-परिणाम दिखेगा तो हम आगे आपके सुझाव पर विचार करेंगे।" अब मेरी हालत तो खराब हो गई, मैंने कहा, बुरे फँसे। पुनः मेरी तरफ देखकर बाबा जी बोले - बोलिए ऐसा हो सकता है कि नहीं। अब मेरे पास हाँ कहने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहींथा। मैंने कहा, " हां बाबा जी, आप चाहते हैं, तो हो सकता है।" बाबा जी बोले- "मैं नहीं, आप चाहते हो तो कार्यक्रम तय करते हैं। आपको संस्थान के हमारे साथियों के साथ स्कूल के बच्चों को पढ़ाने में सहयोग और समय देना होगा।" मैंने कहा – "जी बाबा जी।" बाबा जी बोले," ऐसे में काम नहीं चलेगा- इस कार्यक्रम की रूपरेखा को लिखना पड़ेगा, हम सबके गवाही सहित। तब ज़िम्मेदारी तय होगी।"

फिर पूरे कार्यक्रम (योजना) की रूपरेखा एक प्रकार से ईकरारनामा लिखा गया। बाबा बोलते गये और मैं लिखने लगा। अंत में पहला हस्ताक्षर बाबा जी स्वयं किए। फिर उस गोष्ठी में बैठे शेष छः लोगों ने हस्ताक्षर किए। तब बाबा जी बोले- "अब अच्छी बात हो गई, इसको करके देखा जाय- किसी को क्या तकलीफ है।" 9 मई 2006 को अभ्युदय संस्थान अछोटी में श्री अंजनी भैयाजी के निवास पर हम दोनों के साथ श्री अंजनी अग्रवाल,

श्रीमती मीना अग्रवाल, श्री संदीप शर्मा, श्री मृत्युंजय शर्मा और श्री ईश्वरानंद जैन की उपस्थिति में यह दस्तावेज तैयार हुआ था।

फिर गर्मी की छुट्टी उपरांत जून महीने से स्कूल में जीवन विद्या की पढ़ाई, परिचर्चा, शिविर, गोष्ठी आदि कार्यक्रम होते गया। कुछ साल के मेहनत के बाद वो दिन आया जब इस मुरमुंदा स्कूल के बच्चों ने साबित किया कि वे इसे समझकर जीना शुरू कर दिए हैं। आपस में, परिवार में संबंधों की पहचान कर मूल्यों में जीना, व्यवस्था को समझना अब उन्हें आने लगा था। उनकी स्कूल की पढ़ाई भी पहले से बेहतर हो गया थी। साफ-सुथरे होकर रोज़ स्कूल आना, अब उन्हें अच्छा लगने लगा था। इनके इस कार्य का प्रमाण पत्र उस दिन मिल गया जब एक दिन जिले के कलेक्टर साहब अपनी पूरी टीम के साथ स्कूल आये।

लगभग 3 घंटे स्कूल के बीचों बीच गुलमोहर पेड़ के नीचे बालसभा लगी। 6वीं से 8वीं कक्षा के लगभग 170-180 बच्चों से बात करके, विभिन्न प्रकार के प्रश्न, चर्चा और कहानी के माध्यम से सवाल-जवाब करके कलेक्टर साहब को बहुत अच्छा लगा।

उन्होने बच्चों से कहा- "मैं अभी कुछ दिनों में बहुत सारे स्कूलों में गया, ज्यादातरतर बच्चे चुप मिले, पूछने पर कोई जवाब नहीं देते थे। परन्तु आप लोग मेरे हर बात का जवाब दे रहे हो, और अच्छी-अच्छी बातें कर रहे हो। कौन सिखाते हैं ये अच्छी बातें, कहां से सीखे हो?"

- बच्चों ने एक स्वर में जवाब दिया- "जीवन विद्या वाले दीदी, भैया जी लोग सिखते हैं, स्कूल में ही सीखे।"

"अच्छा, क्या है जीवन विद्या? और क्या-क्या सीखे हो बताओ ?"

7वीं कक्षा का एक छात्र विद्यानंद बोले,"इसमें हम शरीर के बारे में पढ़ते हैं, जीवन के बारे में पढ़ते हैं, मानव के बारे में पढ़ते हैं, परिवार के बारे में, संबंध और न्याय के बारे पढ़ते हैं।"

कलेक्टर साहब बोले, "अच्छा 'न्याय' भी पढ़ते हो, हमें भी तो बताओ न्याय में क्या पढ़ते हो?" उस बच्चे ने जवाब दिया, "रात में हम सब खाने के बाद रोज़ एक दूसरे के काम के बारे में पूछते हैं। एक दिन पिता जी ने मुझे कुछ काम दिया। अगले दिन मैंने पिता जी का सब काम कर दिया और पिता जी ने मेरे दिये सब काम को....., हम दोनो बहुत खुश हुए - यही न्याय है।"

कलेक्टर साहब बच्चे की न्याय वाली परिभाषा सुनकर बहुत खुश हुए। बोले, हम तो न्यायालय में ही न्याय की बात सुनते थे। आपने तो बिलकुल नई बात बताई। तब तो जीवन विद्या की समझ वाली चर्चा अब ज़िले भर के स्कूलों और शिक्षकों तक पहुँच गई। और हम सबका उत्साह बढ़ते गया। लोग अब स्कूल में इस बात को देखने आने लगे।

इस बीच बाबाजी का अभ्युदय संस्थान आना हुआ। स्कूल में कलेक्टर वाली घटना को अंजनी भैया और मीना भाभी ने बाबाजी को बताया। सूचना मिलने पर मैं भी बाबाजी से मिलने संस्थान गया। बाबा बहुत खुश हुए और बच्चों की भांति मुझे पूछने लगे, "आपके स्कूल में अच्छी बात हुई है। सुनाओ तो क्या हुआ?" मैं खुशी-खुशी

उस घटना को बताते गया। बच्चों के साथ काम करने का अच्छा प्रतिफल आया था। बाबाजी हर जगह मेरे इस काम की चर्चा करते थे। हैदराबाद के राष्ट्रीय सम्मेलन 2009 में मेरा विशेष परिचय कराया कि इन्होंने स्कूल में बच्चों के साथ सफ़ल प्रयोग किया है।

योग संयोग देखिए, सन् 2007 के अंतिम महीने में छ.ग. के मुख्यमंत्री डॉ. रमन सिंह से बाबा जी की भेंट हुई। और तात्कालीन स्कूल शिक्षा सचिव छ.ग. श्री नंदकुमार के नेतृत्व में छ.ग. स्कूल शिक्षा विभाग के सभी अधिकारी, शिक्षक एवं बच्चों के लिए "जीवन विद्या" का पाठ्यक्रम लागू हो गया, जिसका सुखद परिणाम दिखाई दे रहा है। सन् 2009 से देश में शायद पहली बार " जीवन विद्या अध्ययन शिविर" शिक्षा विभाग के सेवारत शिक्षकों के लिए लागू हुआ, जो आज पर्यन्त जारी है। लगभग 150 शिक्षक अध्ययन कर पांरगत हो गये हैं। मैं स्वयं 2009 के प्रथम बैच में 1 वर्षीय अध्ययन शिविर शिक्षा विभाग के माध्यम से किया हूँ।

आज बाबा जी के प्रति मेरी कृतज्ञता हर पल, हर क्षण अर्पित रहती है। वे प्रत्येक के साथ संबंधों का निर्वहन बखूबी करते थे। एक-एक बात का ध्यान रखते थे। उनकी यह प्रेरणा हमेशा उर्जा देती रहती है, राह दिखाती है। हर काम ज़िम्मेदारीसे करो, कोई अच्छा किया है, उसका उत्साहवर्धन करो। यह लेख लिखते समय पूज्यनीय बाबा जी के साथ आदरणीय अंजनी भैया जी से प्राप्त प्रेरणा हमेशा याद करता हूँ।

केशव साहू

मुरमुंदा (कुम्हारी) दुर्ग

तत्सान्निध्य

मेरा दसवीं कक्षा के बाद २०१२ में सोम ताउजी का पहला शिविर हुआ। उस वक्त मेरी ऊम्र १५ वर्ष थी। पहले शिविर में ही कुछ चीज़ें भास हुईं थी। इसके बाद उसके मूल प्रणेता आदरणीय बाबाजी के प्रति कौतूहल जाग गया था।। संयोगवश एक माह बाद ही गणेश वर्मा भैया के साथ अमरकंटक जाना हुआ और बाबाजी से पहली मुलाकात हुई। अमरकंटक में गाड़ी से उतरते ही श्री रवि सिन्हाजी ने मुझे गले से लगा लिया। उनका और बाकी सभी लोगों के स्वागतभाव का मुझपर काफ़ी प्रभाव पड़ा। बाबाजी से मिलने पर गणेशभाई ने मेरा और मेरे पिताजी का परिचय दिया।

बाबाजी ने पूछा, "क्या करते हो?" मैंने उत्तर दिया,"पढाई करता हूँ।"

बाबाजी ने तुरंत ऊँचे स्वर में कहा, "पढ-पढ़ कर तो इतना मोटा चश्मा लग गया है और पढ़कर क्या करोगे?" पहली बार ऐसा हुआ कि किसी व्यक्ति ने मुझसे ऊँचे स्वर में कहा और मुझे ज़रा भी क्रोध नहीं आया। मैं मंत्रमुग्ध सा हो गया। उस रात बाबाजी से इतनी ही बात हुई। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने मुझसे खुश होकर कहा कि बाबाजी ने तो पहली बार में आपको डाँट दिया। इसका मतलब है कि उन्होंने आपको स्वीकार लिया। मैंने उन लोंगो से पूछा कि बाबाजी ने मुझसे ऐसा क्यों कहा कि पढ़ -पढ़ कर तो इतना मोटा चश्मा लग गया है और कितना पढूंगा। तब उन लोंगों ने कहा कि बहुत बार बाबाजी हमारा भी ध्यानाकर्षण करवाते हैं पर उस वक़्त वो बात हमें समझ में नहीं आती लेकिन हम इतना जानते हैं कि बाबाजी हमारी स्थिति के अनुसार हमारा मूल्यांकन करते हैं। ये सँवाद आज तक मेरी स्मृति में स्थापित है।

अगले दिन सुबह से ही मै बाबाजी के पास बैठा था। दोपहर में बाबाजी ने मुझसे कहा, "सब खाना खाने जा रहे हैं, तुम भी जाकर खाना खा लो।" मैने कहा, "मेरा मन नहीं है।" बाबाजी ने और २-३ बार कहा। जब मै फिर भी नहीं माना तब बाबाजी ने अम्बा बुआ और गणेश भैया को बुलाया और पूछा कि ये बालक खाना क्यों नहीं खा रहा है? अम्बा बुआ ने कहा कि इसका आज उपवास रखने का मन है। बाबाजी ने कहा ठीक है। मै वहाँ बैठा रहा। कुछ समय पश्चात एक मक्खी बाबाजी के कंधे पर आकर बैठ गई। बाबाजी ने रैकेट की तरफ इशारा किया। मैंने रैकेट तो उठा लिया पर बाबाजी के कंधे पर बैठी हुई मक्खी को कैसे मारूँ, ये सोच कर डर रहा था। तब बाबाजी ने कहा, "एक मक्खी तो तुम मार नहीं पा रहे हो, और क्या कर सकोगे तुम?" बाबाजी के ऐसा बोलने के पीछे का आशय क्या है, उस वक़्त मै उसे समझ नहीं पाया। फिर उस दिन शाम को हम वापस आ गए।

बाबाजी से दूसरी मुलाकात लगभग डेढ़ वर्ष पश्चात् अछोटी में अंजनी ताउजी के घर पर हुई। तब तक दर्शन की कुछ-कुछ सूचना मिलने लगी थी और विद्या को समझने का मन बनने लगा था। बाबाजी से इस हेतु बात हुई। बाबाजी ने लक्ष्य को लेकर पूछा कि मैं क्या करूँगा? मैंने कहा कि बड़ा होकर स्कूल खोलूँगा। बाबाजी ने फिर पूछा, "स्कूल कैसे खोलोगे?" मैंने कहा, "पहले व्यवसाय करके पैसा कमाऊँगा, फिर उस पैसे से स्कूल खोलूँगा।" बाबाजी बोले, "तुमको कुछ नहीं आता भई तुम अध्ययन करो।" तब बाबाजी को अवधेश भैया ने कहा कि अध्ययन के लिए माताजी की सहमति नहीं है। बाबाजी, "जैसा माँ बोलती हैं वैसा करो। माँ बेटे के बीच झगड़ा कराने वाले

लोग बाहर बहुत मिलेंगे, हम वैसा नहीं हूँ। उनकी आज्ञा लेकर ही आना।" मैंने कहा, "वो कैसे सहमत होंगी?" बाबाजी बोले, "तुम्हारा आचरण देखकर सहमत होंगी।"

इसके लगभग एक वर्ष बाद घर में अनुकूलता बनने लगी और हम अध्ययन में मन लगाने लगे। इस बीच बाबाजी का अछोटी आना हुआ और हमको एक सप्ताह बाबाजी की सेवा में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पहले दिन जब हम उनके पैर दबाने बैठे, तो उन्होंने अंजनी ताउजी से पूछा, "यह बालक क्यों बैठा है?" उन्होंने कहा, "बाबाजी ये आपकी एक सप्ताह तक सेवा करेंगे।" तब बाबाजी ने तुरंत अंजनी ताउजी से कहा, "इसको बाहर निकालो इसको सेवा वगैरह कुछ नहीं आता है।" मुझे तो कुछ समझ नहीं आया। वहां बैठे सभी लोगो ने मुझे प्रोत्साहित किया। फिर वहाँ बैठे एक भाई ने पूछा, "बाबाजी सेवा मतलब क्या?" बाबाजी ने बताया कि जो काम मन से किया जाय वो सेवा है। मैं लगातार एक सप्ताह तक बाबाजी की सेवा में रहा। वो भी क्या दिन थे। रात में बाबाजी, सोम ताउजी, अंजनी ताउजी, साधन ताउजी, योगेश चाचाजी, अशोक गोपाला चाचाजी, श्रीराम चाचाजी, रविकांत भैया, इन सभी के साथ मैं खाना खाता था। वो मेरी ज़िंदगी के सबसे स्वर्णिम पल थे।

पूरा दिन तो बाबाजी से कुछ संवाद होता नहीं था। बस बाबाजी समय पूछ लेते थे और, 'लिटा दो, बिठा दो, साधू को बुला दो, गज्जू को बुला दो'- बस इतनी ही बात होती थी। बाबाजी मेहमानों से भी ज़्यादा बात नहीं करते थे अर्थात प्रयोजन से प्रस्तुत होते थे। कोई बाबाजी से मिलने चाय के समय आया तो चाय पूछ लिया, भोजन के समय आया तो भोजन पूछ लिया और हल्की फुल्की व्यावहारिक बात कर ली।

चौथे दिन मैं संस्थान में टहल रहा था। पता नहीं मेरे मन में क्या आया कि बाबाजी कुछ बोल रहे हैं और मैं भाग कर बाबाजी के पास गया। तब बाबाजी श्रीराम चाचाजी से कुछ बोल रहे थे। श्रीराम चाचाजी बाबाजी से कह रहे थे "अभी हम दोनों गुरु शिष्य परंपरा में हैं.....।" तो फिर बाबाजी ने कहा, "तुम लोग तो अभी गुरु-शिष्य परंपरा को छू भी नहीं पाए हो।" और बोले, "हम आज भी अपनी माता, गुरु, बड़े भाई के साथ संबंध निभाता हूँ।" बस फिर संवाद वहीं ख़त्म हो गया। इस संवाद को सुनने के पूर्व पिछले ३-४ दिनों से मेरे मन में ये हल्का- हल्का विचार गुरु-शिष्य परंपरा को लेकर चल रहा था। इस संवाद को सुनने के बाद ये विचार आया कि श्रीराम चाचा लोग कितने वर्षो से कितनी निष्ठा से लगे हुए हैं; तो मुझे कितनी मेहनत करनी पड़ेगी उनका शिष्य बनने में। साथ ही जब बाबाजी ने ये कहा कि वे आज भी अपनी माता, गुरु व बड़े भाई के साथ सम्बन्ध निभाते हैं तो ये विचार आया कि सम्बन्ध शरीर से कुछ अलग चीज़ है। क्योंकि ये लोग तो आज सशरीर नहीं हैं, फिर भी बाबाजी इनके साथ सम्बन्ध निभा रहे हैं।

फिर सातवें दिन, जो हमारा आखिरी दिन था तो दोपहर में मैं बाबाजी से एक प्रश्न पूछा जो पिछले ७ दिनों से ध्यान में बना हुआ था कि बाबाजी हर समय लेटे-लेटे कुछ सोचते रहते हैं। तो मैंने आख़िरकार साहस जुटाकर पूछ ही लिया, "बाबाजी आप दिन भर चुप ही रहते हो हर समय या कुछ सोचते रहते हो। क्या सोचते हो?" बाबाजी, "कैसे सब अच्छे हो जाएँ, हम वही सोचता हूँ।" फिर बाबाजी ने तुरंत पूछा "तुम क्या सोचते हो?" मैं चुप रहा तो बाबाजी फिर ऊँचे स्वर में बोले, "बताओ भाई तुम क्या सोचते हो?" मैं तुरंत बोल पड़ा, "कैसे मैं अध्ययन

करूँ, हम वही सोचता हूँ।" तब बाबाजी बोले, "ठीक है, बहुत अच्छे।" बस फिर शाम को हम बाबाजी का आशीर्वाद लेकर घर चल दिये।

पिछले सप्ताह भर बाबाजी के साथ जो समय बीता, उसमें पहले तो यह समझ में आया कि सेवा तो मन से ही होती है। अब मैं यह स्वमूल्यांकन कर सकता हूँ कि मैं अगर सेवा कर रहा हूँ और उसमे मन लग रहा है तो सेवा हो रही है अन्यथा वह दबाव, प्रभाव, दिखावा है।

दूसरा यह समझ में आया कि सभी बड़े लोग बाबाजी के साथ कैसे प्रस्तुत हो रहे हैं अर्थात सभी प्रबोधकों का बाबाजी के प्रति सम्मान देखकर हमें बहुत अच्छा लगा। जैसा कि बाबाजी ने एक बार एक जिज्ञासु से कहा था कि सरलता से ज्ञान मिलेगा, इसका हमे पता लगा। बाबाजी प्रबोधकों के साथ, गज्जू भैया तथा अन्य लोग जो कि अध्ययन नहीं कर रहे थे, पर बाबाजी को मानते थे, सबके साथ समान भाव से प्रस्तुत हो रहे थे। जब बाबाजी ने यह कहा कि कैसे सब अच्छे हो जाएँ, वे वही सोचते हैं; तब हमे लगा की लक्ष्य कोई निरंतर चीज़ है। आज मैं भी वही प्रयास कर रहा हूँ कि हर समय अपने लक्ष्य को ध्यान में रखूँ।

सात दिन बाबाजी के साथ रहकर जो भाव बना, अगर उसे एक वाक्य में कहूँ तो जैसे कोई व्यक्ति को अपने इष्ट के सान्निध्य में रहकर शांति का भास होता है, उसी प्रकार हमे भी शांति का अहसास हुआ।

इसके लगभग छह माह पश्चात बाबाजी जब अछोटी आये, तब हम बाबाजी से मिलने अछोटी गए थे। हम बाबाजी के पैर दबा रहे थे। उसी समय आदरणीय गणेश बागड़िया जी भी बाबाजी के पास आकर उनके पैर दबाने लगे। तभी मीना ताईजी आई और बाबाजी को प्रणाम किया और बागड़िया जी से पूछा, "भैया नाश्ते में क्या लोगे?" उन्होंने कहा, "एक गिलास गर्म दूध लूँगा।" तब मीना ताईजी ने तुरंत दूध ला दिया। तब बागड़िया जी ने कहा, "कुछ देर बाद लूँगा।" तब बाबाजी ने बागड़िया जी से कहा, "अभी दूध पियो।" तो बागडिया जी ने कहा, "बाबाजी अभी भूख नहीं है।" तो बाबाजी ऊँचे स्वर में बोले, "अभी पियो।" बागडिया जी ने पूछा, "अभी क्यों पियूँ?" बाबाजी ने उत्तर दिया, "घर की महिला जब बोले तब भोजन कर लेना चाहिए, तो ही परिवार व्यवस्था ठीक से चल सकती है।"

कुछ समय बाद अमरकंटक में बाबाजी के साथ आखिरी बार हमारा संवाद हुआ। हमने बाबाजी से दो प्रश्न पूछे। पहला –"हमारा व्यवस्था में भागीदारी करने का मन है, आप बताइये कि क्या काम करूँ।" तो बाबाजी ने मुझे ज़ोर से डाँट लगाकर कहा, "बिना समझे तुम जो भी करोगे गलत ही करोगे। तुम पहले विचार, व्यवहार, कार्य प्रमाण दो फिर आना हमारे पास यह प्रश्न पूछने।" और दूसरा सवाल पूछा कि बाबाजी स्वयं में विश्वास नहीं बन रहा है जबकि मैं मन लगाकर अध्ययन भी कर रहा हूँ; तो बाबाजी बोले, "पहले मन लगाकर अध्ययन करो फिर स्वधन कमाओ तो स्वयं में विश्वास स्वयंस्फूर्त बन जायेगा।" फिर उसके बाद हमारी बाबाजी से दो तीन बार मुलाकात हुई। फिर हम सालभर विद्या से दूर रहे और इस बीच बाबाजी का शरीर छूटने की घटना हुई, जिससे हम कुछ समय के लिए उदास हो गए थे।

आज इस संस्मरण को हमारी माँ ने हमारे पीछे पड़कर लिखाया है। जब हम छह माह के अध्ययन शिविर में हैं और स्वावलंबन व दस सोपानीय व्यवस्था के लिए हमारे पिताजी ने ज़मीन भी ली है। आज हमारे परिवार को

विद्या से परिचित हुए पांच वर्ष हो चुके हैं और अब मध्यस्थ दर्शन हमारा स्वत्व बन गया है। उस समय तो हमें बाबाजी का कहा उतना समझ नहीं आता था; लेकिन आज जब वो हमारे स्मरण में वापस आया, तब पता लगता है कि बाबाजी ने हर वाक्य हमारी स्थिति के अनुरूप कहा है।

अब तो बस हमें अनुभव, विचार, व्यवहार प्रमाण के लिए ही लगना है।

जय हो। मंगल हो। कल्याण हो।

राहुल अग्रवाल

रायपुर

रुलाई

परम आदरणीय बाबा जी से पहली मुलाकात का संयोग मसूरी में हुआ। बाबा जी अपनी जीवन यात्रा के विषय में बता रहे थे कि किस प्रकार लोगों ने उनकी जिज्ञासाओं का उपहास किया और कैसे-कैसे उन्होंने समाधि को प्राप्त किया और फिर कैसे ज्ञान हुआ। यह सब सुनते हुये अचानक मै भावुक हो गया और मुझे रुलाई छूट पड़ी। यह मेरे स्वभाव के विपरीत था क्योंकि कठिन से कठिन समय में भी मैं रोता नहीं था। मै चुपचाप उठकर अपने कमरे में आ गया। गणेश बागड़ियाजी ने कुछ पहचान लिया और वे मेरे पीछे-पीछे कमरे में आ गये। मै फूट-फूट कर रोता रहा और गणेश जी मेरे पास खड़े रहे। उन्होंने सांत्वना देने की भी कोई कोशिश नहीं की, मै रोता रहा और जब चुप हुआ तो गणेश जी बोले शायद कोई गांठ थी जो खुल गई है।

उसके बाद बाबा जी के शरीर छोड़ने के समय भी मैं नहीं रोया। वह क्या बात थी, यह अभी भी समझ नहीं पाया हूँ। शाम को पहली बार बाबा जी के साथ बैठने का अवसर मिला, बात सौर उर्जा के विषय मे हो रही थी। बिना पूरी बात को समझे मैं बोल पड़ा "बाबा जी सौर उर्जा तो अनइक्वामिकल है"। बाबा ने बड़े प्यार से मुझे अपने पास बुलाया और बोले "ये अनइकनौमिकल क्या होता है? ज़रा हमें समझा दो। मैने समझा है कि अस्तित्व में वस्तु होती है और उसका सदुपयोग या दुरुपयोग होता है"। यह बात सुनकर मैं सोच में डूब गया और सत्यता मेरे सामने आती चली गई। बाबा से दर्शन के विषय में काफ़ी कम बात हुई, अधिक जानकारी तो उनकी किताबों को पढ़ने से ही हुई। मेरे लिए तो उनका जीना ही दर्शन था, उनका जीना मुझे समझ में आता भी था और प्रेरणा भी देता था। काफ़ी चीजें स्पष्ट हुई हैं और बाकी भी उनके आशीर्वाद से स्पष्ट हो जाएँगी ऐसी आश्वस्ति होने लगी है। बातें तो अनेक विषयों पर हुई पर शेष फिर कभी।

विवेक चतुर्वेदी

कानपुर

बाबाजी और मेरा जीवन

बाबा ए. नागराजजी ने 24 वर्ष की आयु में जो प्रश्न पूछा, वह बिलकुल न्युटन के द्वारा पूछे गये प्रश्न जैसा सभी को सहज लगेगा। परंतु उन महान व्यक्तियों से पहले वे प्रश्न अन्य किसी के दिमाग में नहीं आये। उस प्रश्न के पूछे जाने के बाद सभी को प्रश्न सही लगता है। हालाँकि उस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए जो तीक्ष्ण बुद्धि व लगन चाहिये, वह सहस सभी में नहीं होती। परंतु उन प्रश्नों का उत्तर मिलते ही पूरे मानव समाज को हमेशा के लिए लाभ मिलते रहता है।

न्युटन ने जिस तरह प्रश्न के उत्तर के रूप में गुरुत्वाकर्षण की खोज की; उसी तरह बाबाजी ने प्रश्न के उत्तर के रूप में 'सह अस्तित्व' की खोज की। न्युटन के प्रश्न के बारे में (हालाँकि कुछ लोग यह नहीं मानते कि न्युटन ने ऐसा प्रश्न पूछा) अधिकांश लोग जानते हैं, क्योंकि गुरुत्वाकर्षण की चर्चा करते समय उस बारे में बात हो ही जाती है। परंतु सह अस्तित्व पर अभी भी बड़े पैमाने पर चर्चा नहीं होती। गुरुत्वाकर्षण के ज्ञान व गणना से पूरे विज्ञान जगत व मानव समाज को लाभ हुआ। उसी प्रकार सह अस्तित्व के ज्ञान से लाभ होता है। उस पर अधिक गहराई मेँ जाने से पहले उस प्रश्न को मै यहाँ प्रस्तुत करना चाहूँगा, जो बाबाजी ने 24 वर्ष की आयु में पूछा :

"आप कहते हैं कि ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या (असत्य) है। आप यह भी कहते हैं कि ब्रह्म से ही जगत की उत्पत्ति (पैदा) हुई है। तब मेरा प्रश्न यह है कि सत्य से असत्य की उत्पत्ति कैसे हो सकती ह? "

उस प्रश्न का उत्तर बाबाजी को ही खोजना पड़ा। उन्होंने पाया- ब्रह्म सत्य है, परंतु जगत मिथ्या नहीं; अपितु जगत शाश्वत है।

जैसे ही जगत शाश्वत वाली बात समझ में आती है, 'सह अस्तित्व' वाली बात भी समझ में आ जाती है। ब्रह्म व जगत सह अस्तित्व में हैं, यह बात समझ में आती है। सूर्य और पृथ्वी सह अस्तित्व में हैं, यह बात भी समझ में आती है। सभी ग्रह, आकाशगंगा और इस पूरे ब्रह्मांड में जो कुछ है, सभी सह अस्तित्व में हैं; यह बात समझ में आती है। इसी ब्रह्मांड में पृथ्वी है, जिस पर मनुष्य है। अर्थात मनुष्य भी पृथ्वी और प्रकृति के साथ सह अस्तित्व में है - यह भी बात समझ में आती है। मनुष्य-मनुष्य भी एक दूसरे के साथ सह अस्तित्व में हैं, यह भी बात समझ में आती है। अतः जाति, धर्म, देश, प्रदेश, रंग, वेश-भूषा, नस्ल इत्यादि भेद नहीं; अपितु सह अस्तित्व में रहने वाले मनुष्यों के संबंधों को अधिक आकर्षक बनाने के लिये उपयोगी बातें हैं - यह भी समझ में आती है। इसके बाद अलग से प्रेम, भाईचारा, एकता इत्यादि पर भाषण ठोकने की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती।

यह बात भी समझ में आती है कि परिवार में सदस्यों का सह अस्तित्व है। यह बात भी समझ में आती है कि ग्राहक हैं, इसलिए दुकानदार हैं; बच्चे हैं, इसलिए स्कूल हैं; स्कूल हैं, इसलिए शिक्षक हैं; शिक्षक हैं, इसलिए शिक्षा सम्पन्न हो पाती है। सभी सह अस्तित्व में हैं। एक है, तब दूसरा है। दूसरा है, तभी पहला है। अतः शिक्षक कभी विद्यार्थी कें बारे में बुरा न सोचे। वैसे ही विद्यार्थी कभी शिक्षक के बारे में बुरा न सोचे। यदि किसी की कोई भी बात दूसरे को बुरी लगती है, तो उसे झेलें मत; क्योंकि दोनों को साथ ही रहना है। उस बात को आपस में

सुलझाएं, झेलें नहीं। अतः mutual tolerance की बात गलत है। साथ ही में रहना है, साथ ही में जीना है; तो मज़े के साथ क्यों न जिएँ। किसी को tolerate क्यों करें? इस प्रकार से पूरा जीने का तरीका उस एक अंतर से बदल जाता है। जीवन आनंदमयी हो जाता है।

इस अंतर से और एक महत्वपूर्ण बात बनती है। भौतिक व अभौतिक वस्तुओं का सह संबंध भी इससे समझ आता है। विज्ञान और अध्यात्म के बीच सेतु बनते हुए नज़र आता है। प्लेटो और अरस्तु के विचारों में भी सह संबंध नज़र आता है। अध्यात्मवादी लोग जगत को मिथ्या समझकर, उसे क्षणिक सुख की संज्ञा देकर उसको तिरस्कार योग्य मानते थे। अब चूँकि जगत मिथ्या नहीं शाश्वत है, इसलिए उसके तिरस्कार करने की जरूरत नहीं है- यह बात समझ में आती है। अर्थात भोजन, पानी, निद्रा, मैथुन, संगीत ये तिरस्कार योग्य नहीं। अपितु मनुष्य इनके सह अस्तित्व में जिये, यही उसके लिये अच्छी बात है - यह समझ में आती है। मनुष्य परिवार में जिये, विवाह करे, अपने बच्चों के साथ जिये - यह बात भी समझ में आती है।

जगत शाश्वत है, इसका अर्थ वह अपरिवर्तनीय है; ऐसा नहीं है। वह परिवर्तनशील है, परंतु मिथ्या नहीं है। इसलिए आज जो लकड़ी दिख रही है, वह भी जलकर राख हो जाएगी। परंतु वह अपना अस्तित्व नहीं खोएगी। केवल उसका रूप, गुण परिवर्तित होगा। अर्थात जगत शाश्वत है, यह कहते ही हम आधुनिक विज्ञान में पहुँच जाते है। इस तरह यह उत्तर, ब्रह्म (जो कि अभौतिक है), के साथ जगत (जो कि भौतिक है), का सह-अस्तित्व स्थापित करता है। भौतिक व अभौतिक का संबंध स्पष्ट करता है, इसलिए अध्यात्म व विज्ञान के बीच सेतु निर्माण करता है। ठीक उसी तरह प्लेटो का कहना है कि "खुद को समझो, दुनियाँ को समझने की आवश्यकता नहीं" तथा अरस्तु का कहना कि "दुनियाँ को समझो, खुद को समझने की आवश्यकता नहीं"। बाबाजी द्वारा खोजा गया उत्तर इन दोनों परस्पर विरोधी मतों को एक साथ लाकर खड़ा कर देता है। दुनियाँ को समझते–समझते खुद को समझा जा सकता है क्योंकि हम दुनियाँ के साथ सह अस्तित्व में हैं। उसी प्रकार विज्ञान को ठीक से समझने पर अध्यात्म समझ में आने लगता है। ऑक्सीजन और हाइड्रोजन दो ज्वलनशील पदार्थ मिलकर पानी बनाते हैं, जिसका गुण उसके दोनों घटकों के गुणों के विपरीत शीतलीकरण का है। इसे emerging properties कहते हैं।

बाबाजी से यह सब मिला, मेरा जीवन धन्य हो गया। उनके दर्शन सभी के लिए लिखित रूप मे उपलब्ध हैं। सभी उसका लाभ उठाएं व पूरे मानव समाज को सुख, समृध्दि व समाधान से भर दें। यही शुभकामनाओं सहित।

नंदकुमार

भाप्रसे - प्रधान सचिव शालेय शिक्षण, महाराष्ट्र राज्य
मंत्रालय मुंबई – 32

अनुमति, मार्ग दर्शन और आशीर्वाद

दिनांक 11 फरवरी 14

परम श्रद्धेय बाबाजी,

सादर प्रणाम!

आशा है आप सकुशल अमरकंटक पहुँच गये होंगे। कल मैंने आपसे चर्चा करने का मन बनाया था, लेकिन परिस्थितियाँ ऐसी थी कि चर्चा नहीं कर सका। दरअसल मैं सिर्फ कुछ ही लोगों - सोम, बीआर, अंजनी भैया - की उपस्थिति में आपसे चर्चा करना चाह रहा था, और अपनी वर्तमान मनःस्थिति एवं परिस्थिति को यथावत रखना चाह रहा था, जिसे न कर पाने का मुझे बेहद अफसोस है। अतः इस पत्र के माध्यम से अपनी बात रख रहा हूँ।

कुछ मुद्दे ऐसे हैं जो आपकी जानकारी में पूरी तरह से संभवतः नहीं हैं। इसलिये मैं सारी बात रखने का प्रयास कर रहा हूँ जो निम्नानुसार हैं:

1. आपने मध्यस्थ दर्शन का अनुसंधान कर समूची मानव जाति को भ्रममुक्त होकर जीने के लिये प्रेरित किया है, ताकि मानवीय परंपरा स्थापित हो सके। आपके 30 बरस की तपस्या और अनुसंधान ने मुझे नयी ज़िंदगी दी है।

2. दिनांक 23 से 29 मई 1997 को स्व. सत्यजी के 7 दिवसीय जीवन विद्या शिविर से मेरी ज़िंदगी की दिशा बदल गई। बाद में आपसे चर्चा कर, अध्ययन, अभ्यास आदि से सोचने समझने की क्षमता में अदभुत बदलाव आया।

3. जब मैंने सन् 1994 में नौकरी छोड़कर नयी ज़िंदगीजीना प्रारंभ किया, तबसे ही समाज में सकारात्मक बदलाव लाने के लिये सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक व्यवस्था के बेहतर विकल्प की तलाश करता रहा। विकल्प के रूप में मध्यस्थ दर्शन से बेहतर और विकल्प नज़र नहीं आता। लेकिन इस दर्शन के आधार पर मानव परंपरा कैसे बने, इस पर हमेशा गहन चिंतन करने की स्थिति बनी रही।

4. 1999 से 2004 के बीच अपनी क्षमता के अनुरूप पूरा प्रयास करते हुए परिवार सहित अभ्युदय संस्थान की स्थापना से लेकर परंपरा स्थापित करने के लिये समुचित प्रयास किया, लेकिन मेरी समझ की कमी और सही तालमेल के अभाव में मुझे वापस रायपुर आना पड़ा। यह मेरी ज़िंदगी का सबसे दुखद निर्णय था। लेकिन लौटा तो यह सोचकर कि जो भी जैसा भी समझा, उसे गाँवों में प्रमाणित करूँगा।

5. सन 2005 से 2010 के बीच एग्रीकॉन के माध्यम से मध्यस्थ दर्शन के समझ में आ पाये कुछ सूत्रों के आधार पर खेती में प्रयोग किया, ग्रामीण विकास के लिये गाँवों में काम किया। ये प्रयास भौतिक स्तर पर काफ़ी सफल रहे, किसानों, विषेशकर बस्तर किसानों के आर्थिक विकास, बंजर भूमि में फलोद्यान, धान की जैविक खेती

का सफल प्रयोग, टिषु कल्चर केला आदि से निश्चित से ही उनकी आर्थिक स्थिति में सुदृढ़ता आयी। मानवीय समाज व्यवस्था बन सकी, ऐसा नहीं कह सकता; लेकिन संभावनाएँ भरपूर दिखाई दी।

6. मानवीयतापूर्ण व्यवस्था को समझकर जीने के लिये सन् 2011 में पुनः निश्चय किया कि अब अछोटी में जाकर रहूँ, पत्नी शुभ्रा को परिचय शिविर करवाया, बेटे अभिन को भी शिविर करवाया। दर्शन के प्रति स्वीकृति होने के बावजूद पत्नी ने रायपुर में रहना और रेडियो में कार्य करना ही उचित समझा। 2012 में मैंने तय किया कि मैं अछोटी में अकेले ही रहकर अध्ययन करूँगा और समय-समय पर रायपुर आता-जाता रहूँगा। अध्ययन से मेरी दर्शन के प्रति स्पष्टता बनती चली गई। सन् 2012-13 में मैंने अपना अधिकांश समय तन-मन-धन सब कुछ दर्शन के अध्ययन और संस्थान की व्यवस्था में भागीदारी के लिये लगा दिया। सितंबर में अवधारणा गोश्ठी के लिये अमरकंटक आया। उस गोश्ठी में आपसे चर्चा के दौरान स्पष्ट हुआ कि ज्ञान का अनुभव, मानवीयपूर्ण आचरण को 100 प्रतिशत जीने में अभ्यासपूर्वक लाने के बाद ही हो सकता है। विचार के स्तर पर स्वधन, स्वनारी, दयापूर्ण कार्य व्यवहार के प्रति मेरी पूर्ण स्वीकृति तो बन चुकी थी, जीने में अभ्यासपूर्वक लाने के लिये प्रयास भी कर रहा था लेकिन मानवीय मूल्यों का निर्वाह कर पाने में काफ़ी प्रयास के बावजूद मैं अपने को कमज़ोर पा रहा था। खासकर पत्नी के साथ मेरा व्यवहार न्यायपूर्ण नहीं था, बल्कि मैं उनपर नाराज़ भी हो जाता था। इसकी वजह सिर्फ़ इतनी थी कि मुझे लगता था कि पत्नी मेरा साथ बिल्कुल नहीं दे रही है जबकि मैं उनका साथ प्रयत्नपूर्वक, अस्वीकृति के बावजूद दे रहा था।

7. अभ्युदय संस्थान के सभी मित्रों ने मेरा भरपूर साथ दिया। जो करीबी मेरी पारिवारिक स्थिति से परिचित थे, उन्हें मालूम था कि मैं कितना प्रयास कर रहा हूँ। मैंने विगत ढाई सालों से तमाम परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाते हुए गंभीर प्रयास किया; इसी कड़ी में, हिंगना में ज़मीन भी खरीदा। लेकिन परिवार में मेरा व्यवहार, मानव व्यवहार दर्शन का अध्ययन करने के बावजूद न्यायपूर्ण नहीं रहा। इसे मैं अपने समझ में कमी और अध्ययन के अधूरेपन के रूप में देखता हूँ। अमरकंटक की अवधारणा गोष्ठी के बाद मैंने स्वीकार लिया कि इस शरीर यात्रा में मुझे अनुभव नहीं हो सकता और अपनी असफलता को ढंकने का अन्य प्रयास करने लगा। इसी वजह से मेरा ध्यान अध्ययन से भी हट गया।

8. मुझे ऐसा लगता है कि नियति ने मुझे कठिन कार्यों को करने भेजा है। मेरी कड़ी परीक्षा बाकी है, लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि मैं भ्रमित प्रभावों से मुक्त रहकर व्यापक सत्ता में संपृक्त जड़-चैतन्य इकाईयों के विकासक्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति में उपयोगी होकर मानव परंपरा के अवतरण में कोई छोटी-सी भूमिका निभा सकूँगा। और यही मेरी वर्तमान यात्रा की हर स्थिति-परिस्थिति में मेरा लक्ष्य होगा।

9. मैं विगत 20 सालों से रूप, बल, धन, पद के प्रभाव से मुक्त रहा हूँ। मेरा अब तक का कार्य-व्यवहार इसका प्रमाण है। मैंने पद स्वीकारा या छोड़ा है तो सर्वशुभ की आकांक्षा में। मुझे स्वीकारने में कोई हिचक नहीं कि मैं अब जो निर्णय ले रहा हूँ, वह मेरी कुछ कमजोरियों की वजह से ही है। लेकिन इसका अर्थ कतई नहींनहीं है कि मैं राजनीति या पद से अपनी कोई पहचान बनाना चाहता हूँ। मुझे गत वर्षों में जो पहचान, सम्मान मिला है वह मेरी अपेक्षा से अधिक ही है।

मेरी वर्तमान स्थिति परिस्थिति का स्व-मूल्यांकन निम्नानुसार है -

1. स्वयं के स्तर पर: मैं विचार के स्तर पर इस स्पष्टता को स्वीकार चुका हूँ कि ज्ञान ही मेरे सुखी होने का आधार है। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान के बिना मानव निरंतर सुखपूर्वक नहीं जी सकता। इस ज्ञान के अभाव में मानव भ्रमित होकर अर्थात दुखपूर्वक जीने को विवश है। मैं स्व के अर्थात स्वयं में विचार रूप में शांतिपूर्वक जीता हूँ। वैचारिक क्लेश से मुक्त हूँ। ज्ञान हुआ नहीं है लेकिन निश्चित ही ज्ञान की सूचना मध्यस्थ दर्शन के माध्यम से, खासकर मानव व्यवहार दर्शन के अध्ययन से, मुझ तक पहुँच चुकी है। अस्तित्व में प्रत्येक इकाई में व्यवस्था है; जीवन परमाणु, मानव, परिवार, अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था की स्पष्टता तर्क-संगत विधि से विचार स्तर पर बनी है; इसका अनुभव होना शेष है। ज्ञानपूर्ण विचार का व्यवहार और कार्य में याने आचरण में आना अभी बाकी है। विचाराभ्यास से संतुष्ट हूँ पर व्यवहाराभ्यास और कर्माभ्यास में कमी महसूस करता हूँ।

2. परिवार के स्तर पर मूल्यों का निर्वाह अपनी अपेक्षानुरूप नहीं कर पा रहा हूँ; जो निश्चय ही ज्ञान की कमी को प्रमाणित करता है। मैं अपनी पत्नी को दर्शन के प्रति आश्वस्त नही करा पाया हूँ, जो मेरे भ्रमित आचरण का प्रमाण है। मेरी पत्नी कई मायनों में मुझसे बेहतर है। वह स्वयं अपने आपको मध्यस्थ दर्शन के योग्य अपना मूल्यांकन नहीं करती है, लेकिन मुझे हमेशा अछोटी में रहकर अध्ययन करते रहने के लिये प्रेरित करती रही है और घर में न रहने को लेकर शिकायत नही करती है। बल्कि उसने ही प्रस्ताव दिया था कि उसकी नौकरी की वजह से मुझे उसको घर से लेने जाने और छोड़ने में असुविधा होती है तो हम लोग किराये का मकान उसके आफिस के निकट ले लें और मैं अछोटी में निश्चिंत होकर अध्ययन और व्यवस्था में भागीदारी करूँ। लेकिन मैं अछोटी में अकेले रहते हुए स्वयं को अधूरा महसूस करता हूँ। पत्नी का वहाँ मेरे साथ न होना या अभ्युदय के कार्यक्रमों में मेरे साथ न होना, शिविरार्थियों और अपरिचितों के मध्य अनेक प्रश्न खड़ा करता है; जिसका सही जवाब न दे पाना मुझे असहज कर देता है। इस कारण मैं साथियों के बीच अपने अधूरेपन को महसूस करता हूँ।

3. मेरा बेटा हम दोनों से बेहतर है। उसे हमारी व्यस्तता और कार्य का पूरा अहसास बचपन से ही है। उसने हम दोनों के समय न दे पाने की कभी शिकायत नहीं की और न ही हमसे सामान्य बच्चों की तरह अधिक अपेक्षा रखता है। समझदारी और उस अनुरूप आचरण के स्तर पर वह हम दोनों से अच्छा है। यही तथ्य उसकी सामान्य पढ़ाई में झुकाव न होने के बावजूद हमें आश्वस्त करता है कि वह भविश्य में हमसे बेहतर होगा।

4. समाज के स्तर पर वर्तमान व्यवस्था जो कि अव्यवस्था है मुझे काफ़ी उद्वेलित करती है। मानव समाज की बेहतरी के उद्देष्य से ही मैंने सामाजिक सेवा या सुधार को अपना लक्ष्य बनाकर शासकीय सेवा से इस्तीफ़ा दिया था। मानवीय समाज का स्वरूप मध्यस्थ दर्शन से स्पष्ट हो सका। लेकिन दर्शन समाज तक पहुँच सके, इसकी विधि मुझे लगता है अभी ठीक से नहीं बन पायी है, या इस पर स्पष्टता बाकी है। मेरी समझ इस मामले में आपसे या अन्य साथियों से संभवतः भिन्न है। मेरा मानना है कि मध्यस्थ दर्शन जीने की वस्तु तभी बन सकता है जब इसकी सूचना सर्वमानव तक पहुँचे। समाज की बेहतरी में जो लोग गंभीरतापूर्वक प्रयासरत हैं, उन प्रतिभावान लोगों तक इसकी सही सूचना पहुँच सके, इस हेतु वर्तमान प्रयास पर्याप्त नहीं है। हो सकता है कि मैं अनुभव संपन्न

होने योग्य नहीं हूँ लेकिन मुझसे बेहतर अनेक लोग वर्तमान समाज में हैं, जिन तक यह सूचना ठीक ठीक नहीं पहुँच सकी है। ये व्यक्ति मध्यस्थ दर्शन का अध्ययन कर प्रमाणित हो सकते हैं।

5. समाज में बहुसंख्यक प्रतिभावान समर्पित व्यक्ति, प्रमाण के आधार पर किसी तथ्य या दर्शन को स्वीकार करते है। ऐसे लोगों को जोड़ने में राजनैतिक व्यवस्था में भागीदारी वर्तमान समय की आवश्यकता बन चुकी है। मेरा यह मानना है कि इस देश में 8 दिसंबर 2013 के बाद से नयी राजनैतिक व्यवस्था की स्थापना के लिये अनुकूल परिस्थितियां निर्मित हो गई है। देश की राजनीति निर्णायक मोड़ पर आ खड़ी है। कुशासन से मुक्ति की चाहत जनमानस में घनीभूत हो रही है और सुशासन की अपेक्षा बढ़ गई है। इन अपेक्षाओं को पूरा करने के लिये आम आदमी पार्टी के प्रति लोग आशा भरी निगाहों से देख रहे हैं; लेकिन यह पार्टी परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था की सही समझ के अभाव में जन अपेक्षाओं को संभवतः पूरा न कर पाये। वैकल्पिक राजनीति के इस दौर में मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद जनमानस को सही दिशा देने में सशक्त विकल्प है। इस आधार पर राजनैतिक दल का उदय होना वर्तमान समय की अनिवार्यता है। मैं अपनी स्वयं की समझ, पारिवारिक स्थिति और समाज की वर्तमान परिस्थिति का आंकलन कर इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मैं अब तक की इस शरीर यात्रा के एक निर्णायक मोड़ पर आ खड़ा हूँ और वैकल्पिक राजनीति में प्रवेश कर अपनी बेहतर भूमिका देखता हूँ। आम आदमी पार्टी ने मुझे छत्तीसगढ़ की राजनीति में अपनी सशक्त मौजूदगी दर्ज कराने का कार्यभार सौंपा है। इसे मैं प्रदेश और बाद में देश में मध्यस्थ दर्शन-सहअस्तित्ववाद आधारित राज्यनैतिक व्यवस्था की स्थापना के लिये एक उपयुक्त अवसर मानता हूँ। अतः इस महती कार्य को अपनी सही समझदारी, ईमानदारी, ज़िम्मेदारी और भागीदारीपूर्वक संपन्न कर सकूँ, इसका आशीर्वाद आपसे माँगता हूँ। बाबाजी आपने मुझे और इस कारण मेरे परिवार को नयी ज़िंदगी दी है। मैं यह जीवन मध्यस्थ दर्शन ज्ञान को समर्पित कर चुका हूँ जिसके प्रकाश से भ्रमित मानव जाति अज्ञानता के अंधकार से मुक्त हो सकती है और सुख समृद्धि की मानव परंपरा का अभ्युदय हो सकता है। आपकी अनुमति, मार्ग दर्शन और आशीर्वाद से ही मेरी यह यात्रा प्रारंभ और पूरी होगी।

अशेष अपेक्षाओं के साथ,

आपका ही

संकेत ठाकुर

रायपुर

मध्यस्थ दर्शन- मेरी नजर में

श्रद्धेय ए. नागराजजी (बाबाजी) द्वारा प्रतिपादित मध्यस्थ दर्शन की कुछ बातें मुझे अपने शुरुआती शिविरों के दौरान छू गई, जिसके कारण मैंने इसे पूरी तरह से समझने एवं उसके अनुरूप प्रयोग-व्यवहार करने का निर्णय लिया।

इस दर्शन को समझने एवं जीने के क्रम में स्वयं के शुभ (जीवन लक्ष्य - निरंतर सुख पूर्वक जीना) एवं सर्वशुभ (मानव लक्ष्य - समाधान, समृद्धि, अभय एवं सह-अस्तित्व) दोनों को पूरा करने का मार्ग प्रशस्त होता है। इस आधार पर व्यक्तिगत उन्नति एवं सामाजिक उन्नति के लिए साथ-साथ काम हो सकता है। परिवार के एक सदस्य के रूप में व्यवस्थापूर्वक जीते हुए भी समाज में सार्थक भागीदारी की जा सकती है। पहले मुझे ऐसा लगता था कि सामाजिक सक्रियता होने पर परिवार का ध्यान नहीं रखा जा सकता है।

दर्शन की अभिव्यक्ति सम-सामयिक होने के कारण यह सहजतापूर्वक लोगों को पकड़ में आता है एवं वर्तमान में मानव जाति के जीने से जुड़ी समस्याओं का स्पष्ट समाधान प्रस्तुत करता है। चाहे वह पर्यावरण असंतुलन का मुद्दा हो, राष्ट्रों के बीच युद्ध का मुद्दा हो या मानव-मानव के बीच संबंधों के बिखराव का। सार्वभौमिक, तर्कसंगत एवं व्यावहारिक (प्रयोग एवं व्यवहार सुगम) होने के फलस्वरूप यह शिक्षा-संस्कार की वस्तु हो सकती है एवं शिक्षा-संस्कार प्रक्रिया द्वारा इसे सर्वमानव तक पहुँचाया जा सकता है। अत: यह जाति, पंथ, समुदाय एवं वर्ग भावना से मानव की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है।

इस आधार पर व्यक्ति के जीने के सभी 4 आयाम (अनुभव/समझ, विचार, व्यवहार एवं व्यवसाय) तथा पाँचो स्थितियों (व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व) में एकसूत्रता पूर्वक जिया जा सकता है।

यह मानव-मानव संबंधों की सटीक व्याख्या करता है एवं इस आधार पर संबंध पूर्वक जीते हुए भी स्वयं के ज्ञान, समाधान के लिये प्रयास किया जा सकता है। अतः इस विधि में संबंध पूर्वक जीना ज्ञान-प्राप्ति हेतु बाधा नहीं है, बल्कि जितना-जितना हम संबंधों में पूरकता का निर्वाह कर पाते हैं, उतना ही अपने समझने का प्रमाण मिलता है एवं आगे समझने के लिए उत्साह बनता है।

यह अखण्ड समाज एवं सार्वभौम व्यवस्था की सटीक व्याख्या करता है तथा संबंध एवं व्यवस्था पूर्वक जीने के क्रम में इस स्थिति को पा लेना एक सहज उपलब्धि सा लगता है। इस आधार पर व्यक्ति एवं समाज/व्यवस्था की पूरकता समझ में आती है। इस दर्शन से मानवीय शिक्षा, मानवीयतापूर्ण आचरण, मानवीय संविधान और सार्वभौम व्यवस्था का स्वरूप एवं इनके बीच का अंतर्संबंध स्पष्ट होता है; जिसकी सुनिश्चितता के आधार पर मानव परंपरा में मानवीयता के समावेश तथा उसकी निरंतरता की संभावना लगती है।

इस अस्तित्व को मैं पूरी तरह से समझ सकूँ, इसके लिए मेरी पात्रता विकसित हो सके; इस हेतु मैं निरंतर प्रयासरत हूँ। इसे सुनिश्चित करने के लिए मैं इस मध्यस्थ दर्शन को समझने एवं इसे लोगों के साथ संवाद करने हेतु संकल्पित हूँ, क्योंकि यह दर्शन मुझे अस्तित्व/वास्तविकताओं का एक सटीक विवरण (description)

महसूस होता है एवं वास्तविकताओं को समझने की प्यास हर मानव में है ही। इस दर्शन को मुझे एवं सर्वमानव को उपलब्ध कराने के लिए बाबाजी एवं समस्त मानव-जाति के प्रति कृतज्ञता (इस दर्शन की उपलब्धि को बाबाजी ने समस्त मानव-जाति का पुण्य-फल कहा है)।

श्याम कुमार
मानवीय शिक्षा संस्कार संस्थान
मंधना, कानपुर

श्रद्धाँजलि स्वरूप संस्मरण

1954 में सर्वोदय साहित्य से मेरा परिचय हुआ। उस साहित्य के गहन अध्ययन से गाँधी जी के व्यक्तित्व का आँकलन भी हुआ और आकर्षण भी। स्वराज्य शब्द और स्वराज्य के लिये कार्य करना मेरी ज़िंदगी का लक्ष्य बन गया। संत विनोबा जी द्वारा संचालित भूदान-ग्रामदान अभियान कार्यक्रमों से निष्ठापूर्वक जुड़ गया। बाबू जयप्रकाश नारायण के मार्गदर्शन में कुछ समय लगाया। किसान-आन्दोलन में भी भागीदारी की। इस तरह लगभग 40 वर्षों तक इन कार्यों में स्वयं को खूब तपाया।

तृप्ति और संतुष्टि की खोज में संयोगवश 1994-95 में गोविन्दपुर-खारी, ज़िला-बिजनौर, उत्तर प्रदेश के स्कूल प्रांगण में आयोजित जीवन विद्या शिविर में आदरणीय भाई यशपाल सत्य से स्वराज्य की विषद् व्याख्या सुनकर हृदय गदगद हो गया। स्वराज्य का मंत्र तो मन में था ही, "सह-अस्तित्व" एक भारी भरकम नया शब्द मंत्र भी हृदयंगम हो गया; अर्थात् जुड़ गया। वह शिविर मेरे जीवन में सूर्योदय जैसा काम कर गया। उसी क्रम में, कुछ दिनों बाद 1995 में ही उसी स्थली पर श्रद्धेय बाबा नागराजजी से भेंट हुई। जिस तरह मुझे उन्होंने गले लगाया, मैं भाव विभोर हो उठा। इसके पूर्व अनेक मूर्धन्य मनीषियों (उच्चकोटि के विद्वान साधक) से आशीर्वाद प्राप्त हुए थे; पर ऐसे लगाव की प्रतीति नहीं हो पायी थी। तब से लेकर 20 वर्षों तक उनके द्वारा यह भाव बना रहा; मिलने पर प्रकट होता ही रहा।

एक परम ज्ञानी आदमी इतना साधारण-सामान्य और सरल ढंग से जीता हुआ अभी तक के जीवन में मै देख पाया, यह मेरा सौभाग्य है। मेरठ के एक छोटे से मकान में साथियों सहित मुझसे मिलने स्वयं पहुँच जाना, एक महान आदमी के चरित्र की ऐसी ऋजुता (सरलता) आज भी स्मरणीय है। नागौद-मध्यप्रदेश में बाबाजी के साथ भाई यशपाल जी और मेरी, विश्व-विद्यालय को लेकर कुछ क्षणों की एक गहन गोष्ठी आज भी याद है, रोमांचित करती है। 10 परिवार व एक गाँव को लेकर बैठने के लिये कई बार के मेरे से अकेले में हुए वार्तालाप आज भी जीवित हैं।

सर्वोदयी साथियों को जीवन-जागृति अभियान में जोड़ने हेतु मैं प्रयत्नशील बना रहूँ, इस हेतु वह बराबर साहस भरते थे। मिलने पर पहला प्रश्न यही पूछते थे। मैं उनके सान्निध्य हेतु उनके पास आता रहूँ, सतत् प्रयास

करते थे; याद दिलाते थे। परिवार विधि से सुख व समृद्धि पूर्वक अपने परिवार सहित एक जागृत मानव सहजता से जीता हुआ हमने देखा है; प्रेरणा पाई है।

अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था अर्थ में स्वराज्य, सर्वतोमुखी समाधान अर्थ में सर्वोदय, तथा परम सत्य अर्थ में सह-अस्तित्व का स्पष्टीकरण - शेष शरीर यात्रा तक, जीवन-जागृति के लिये पूरा संजीवनी बन गया है; गन्तव्य बन गया है। पथ्य भी बन गया है और पाथेय भी। मानव कुल गौरव श्रद्धेय बाबा नागराजजी के प्रति उनका स्मरण करते हुए कुछ शब्दों के माध्यम से अपनी भावांजलि अर्पित करते हुए मैं प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ।

रामजी भाई

नासिक

दिल में बसे बाबाजी की कुछ यादें

शायद 1988 की बात है; बाबा नागराज जी का आई.आई.टी. दिल्ली में आना हुआ। प्रो. पद्मा वायुदेवन के संपर्क से डॉ. सत्यदेव शर्माजी ने योग क्लब के अंन्तर्गत उनको बुलाया। डॉ. शर्माजी ने सत्य की खोज में न जाने कितने महापुरुषों को बुलाया होगा व उनसे ज्ञानार्जन करने का प्रयास किया। बाबाजी की बातें सुनकर, उनके जीवन की यात्रा व उनके अनुभव सुन कर मन गदगद होता था; पर शायद वह राजमार्ग जो मंजिल तक पहुँचा दे, स्पष्ट नहीं होता था। उस समय के एक दो संस्मरण याद आते हैं:

(क) अमरकंटक की पहाड़ियों से दिल्ली की चिलचिलाती धूप में बाबाजी का आगमन हुआ, तो शायद पसीना रुकने का नाम ही नहीं लेता था। बाबाजी की गुजारिश- कोई कूलर अथवा ए.सी. का इंतजाम हो जाए तो फिर चैन आए, चर्चा का विषय बना। क्या संतों व योगियों को गर्मी व सर्दी का प्रभाव तंग करता है? एक मान्यता है कि नहीं, ऐसा नहीं होता?

(ख) आमने-सामने बैठकर बाबाजी से वार्तालाप कर रहे थे व बाबाजी किसी व्यक्ति अथवा घटना की समीक्षा कर रहे थे। अनायास ही मेरे मुख से निकला, "बाबाजी, क्या इसमें करुणा दिखाई देती है?" बाबाजी ने मेरी तरफ देखा, मुस्कुराए व बोले "क्या कहा ? क्या कहा ?" पर शायद दुबारा कुछ कहने का साहस मेरे में नहीं था।

समय बीतता गया। डॉ. यशपाल सत्य जी व रण सिंह आर्य जी (बाद में डॉ.) के सान्निध्य में सत्य की ओर कुछ न कुछ ध्यानाकर्षण होता रहा। सन् 1997 में सत्यजी का ऐतिहासिक शिविर अमरकंटक में हुआ, जो मैने ऋतम्भरा के साथ किया व तत्पश्चात् बाबाजी के घर पर कई वर्षों तक आना जाना लगा रहा व माताजी, अम्बा दीदीजी व भाभियों का स्नेहपूर्ण स्वागत मन को लुभाता रहा। शायद 2003 की बात होगी; मसूरी में पवन गुप्ताजी, अनुराधाजी व अन्य साथियों के समक्ष रखा कि मुझे स्वयं में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिख रहा है व आगे का रास्ता आँखों से ओझल हो गया है। फिर धीरे-धीरे बाबाजी से संपर्क कम हो गया।

सन् 2009 में पुनः रण सिंहजी के साथ बाबाजी से मिलने अमरकंटक जाना हुआ, विशेषकर उनके स्वास्थ्य का बहाना बनाकर। 2-3 दिन सामान्य चर्चा रही। चलते समय बाबाजी ने पूछा "इसको कब समझोगे?" मेरा सपाट उत्तर, "बाबाजी, कुछ समझ में नहीं आ रहा।" बाबाजी ने कहा, "ध्यान दोगे, तभी समझ में आएगा।"

2014 में एक बार फिर लगा कि शायद कोई सूत्र "कड़ी से कड़ी जुड़ी हुई है" अपनी तरफ खींच रहा है। जून के माह में बाबाजी से मिलना हुआ। एक दिन बाद उन्होंने लेटे-लेटे ही (जब मैं अकेला था) आने का प्रयोजन पूछा, फिर डांट लगाई। अगले दिन जाने से पूर्व, प्रेरणा रूप में प्रोत्साहित किया व कुछ समय रुकने को कहा, फिर हर महीने दस दिन आने को कहा। जुलाई के महीने में दुबारा आने का आश्वासन देकर मैं अमरकंटक से रवाना हुआ, पर वह संभव नहीं हो पाया। इसके बाद एक-डेढ़ वर्ष अनिद्रा के चलते काफ़ी कष्ट में बीता। साधन भैया से बीच-बीच में फ़ोन पर बातचीत होती रही। बाबाजी का साधन भैया के प्रति जो स्नेह व सम्मान था, वो इस यात्रा में बिल्कुल सामने आ गया।

सितम्बर, 2015 में पुनः बाबाजी से मिलने अमरकंटक जाना हुआ। तब तक बाबाजी का स्वास्थ्य कुछ और क्षीण हो गया था। समझ में नहीं आ रहा था कि बाबाजी से क्या और कैसे वार्तालाप किया जाए। साधन भैया ने प्रयास किया तो मैंने आशीर्वाद माँगा कि आगे का रास्ता दिखता रहे। बाबाजी ने कहा, "मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा।" चलते समय हमेशा की तरह दुबारा आने के लिए इंगित करने को कहा। परंतु वो बाबाजी के शरीर छोड़ने के बाद ही संभव हो पाया।

बाबाजी नहीं हैं, पर ऐसा लगता नहीं है; क्योंकि जो स्थान दिल में उन्होंने बनाया, वो शायद इस यात्रा पर्यन्त कोई नहीं ले पाएगा। उनका सहज सरल जीवन, सहज सी बातें और हमारा उलझा हुआ मन। पर अस्तित्व में व्यवस्था, जो शायद प्रत्यक्ष होत हुए भी हमें दिखाई नहीं देती; क्योंकि हमारा मन बड़ी-बड़ी बातों व लोगों को तलाश रहा होता है। काश! इन सरल सहज बातों की गहराई को मैं अनुभव कर पाऊँ।

संजीव जैन

दिल्ली

विश्वास स्रोत

बाबाजी के साथ पहली बार मिलने से पहले ये एहसास ही नहीं था, जबकि उनके बारे में सुना था, कि बाबाजी इतने महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं; और शायद मिलने के ४ वर्ष बाद तक भी ये एहसास उतनी तीव्रता से नहीं था, जितना आज है। सन् २००६ का कोई दिन था (तारीख ठीक से याद नहीं); रायपुर में अनीता दीदी के निवास समता कॉलोनी में बाबाजी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

बाबाजी अपने चिरपरिचित अंदाज में 'हरिहर' बोले। फ़िर, 'कुछ अच्छी बात बताओ' बोले। संकोच के साथ धीरे से पूछी, "बाबाजी, सारे सम्बन्ध में अनेक प्रयास के बावजूद तृप्ति नहीं है, थकान हो रही है।"

बाबा बोले, "और प्रयास करो।" मैंने कहा, "पूरा प्रयास कर लिया, अब और प्रयास नहीं हो रहा।"

बाबा ने कहा, "सम्बन्ध की आवश्यकता है या नहीं? चाहिये या नहीं चाहिये? चाहिये तो और प्रयास, और प्रयास की निरंतरता है; इतना या उतना की बात नहीं है। यही धीरता है।"

अद्भुत था वह ज्ञान। समझ में आया कि लक्ष्य पाना है तो प्रयास, और प्रयास की निरन्तरता है, कोई बहाना या थकान नहीं है; और ये प्रयास आज तक जारी है।

ये हमारा सौभाग्य रहा कि आदरणीय बाबाजी ए. नागराज का सान्निध्य हम सबको मिला। बहुत बहुत कृतज्ञता उनके प्रति। बाबाजी ने हमको ये भरोसा दिलाया कि हम सभी

1--सब कुछ को समझ सकते हैं।

2--सबके साथ जी सकते हैं।

3--सब को समझा सकते हैं।

सोचिये, इससे ज्यादा विश्वास की परिभाषा क्या होगी? और इससे कम में क्या स्वयं के प्रति और सभी के प्रति विश्वास होगा।

एक बार बाबाजी के साथ चर्चा चल रही थी कि पाप और पुण्य है क्या चीज़, और इसमें अंतर क्या है ? जवाब से तो मन खुश हो गया। जवाब था कि मैं सुखी रहूँ, इस प्रयास मे लगे रहना पाप है; और सब सुखी हो जाएँ, इस प्रयास में लगे रहना पुण्य है। कितनी सुन्दर बात है कि सर्वशुभ में ही मेरा शुभ समाया है। अकेले का शुभ कुछ होता नहीं है। अस्तित्व सह-अस्तित्व है। सभी का होना ही मेरा होना है।

शालू अग्रवाल

रायपुर (छ.ग.)

दिव्य मानव का संग

आदरणीय बाबा श्री ए० नागराजजी से मेरी प्रथम भेंट जनवरी 2008 में अमरकंटक में हुई। इससे पूर्व मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद को लेकर सर्व श्री रण सिंह आर्यजी, सोमदेव त्यागीजी, गणेश बागड़ियाजी, साधन भट्टाचार्यजी के संग कई साप्ताहिक शिविर हुए। अमरकंटक में बाबा जी के जन्मदिवस के उपरान्त अतिथिगणों के जाने के बाद मैं और मेरे मित्र डॉ० जगदीशजी तीन दिन के लिये ठहर गये। ये मेरी इस शरीर यात्रा के सबसे सुखद और अविस्मरणीय क्षण थे। उस समय तक बाबा जी द्वारा लिखे प्रबन्ध (दर्शन, वाद और शास्त्र) का एक बार पठन, हो चुका था। बाबा जी के साथ तीन दिनों तक अलग अलग सत्रों में गहन चर्चा भिन्न-भिन्न मुद्दों पर हुई। ऊर्जा, परमाणु, विकास क्रम, रचना क्रम और भी अनगिनत बिन्दुओं पर कमाल की बात हुई।

बाबा जी प्रत्येक पहलू पर चर्चा करते हुये हर मुद्दे को आदमी जात के जीने से जोड़कर ही चर्चा करते। एक शाम बाबा जी की सुपौत्री के आग्रह पर बाबाजी नर्मदा उद्गम स्थली (जो कि उनके आवास के एकदम सामने ही था) गये। मैं पास ही बैठा था। एक सहज जिज्ञासा और थोड़े कौतुहल के साथ मैं भी बाबाजी के संग उस स्थान पर गया और समाधि सम्पन्न, मानव लक्ष्य को प्राप्त किये व्यक्ति को देखा कि कितने सहज ढंग से वो अपनी पोती के साथ लगभग उस बच्ची के निर्देश में सब करके आये। अगली बैठक में मैंने वो जिक्र किया तो बाबाजी ने फ़कत ये ही कहा - "वो तो है।"

एक मीठी सी डाँट खाने का प्रसंग भी है। किसी मुद्दे पर मैंने दो बार कह दिया कि मूल्याँकन होता है, तीसरी बार में बाबाजी थोड़े सख्ती से बोले, "मूल्याँकन होता है कि करते हो?" और झनाक से एक खिड़की-सी खुली। अरे ! भाषा से वस्तु की ओर कितने सहज ढंग से बाबाजी ध्यानाकर्षण करा देते हैं, वो उनका सान्निध्य सदा-सदा अविस्मरणीय है। बाबाजी के साथ उसके बाद भी कई बार मिलना हुआ। वर्ष 2008 का राष्ट्रीय सम्मेलन मेरे गाँव में हुआ। फिर तो लगभग हर एक साल में दो तीन बार बाबाजी के साथ मिलन होता ही रहा।

एक दिन बाबाजी सुबह-सुबह मेरी नाड़ी देख रहे थे। अशोक सिरोही जी साथ में बैठे थे। सिरोही साहब बोले, "बाबा ये कन्चनवीर के परिजन हैं, अछौटी में अध्ययन कर रहे हैं।" बाबा ने नाड़ी को यथास्थान छोड़ दिया; बोले, "वेतन भोगी हो?" मैंने उन्हें स्मरण दिलाया, "बाबा मैं खेती करता हूँ।" पुन: नाड़ी हाथ में लेकर बोले, "बेटा वेतनभोगी प्रमाणित नहीं होगा।"

फरवरी 2013 में अछोटी रायपुर 'जनवाद' पुस्तक का एक सत्र मेरे द्वारा प्रस्तुत था। मैं नित्य प्रतिदिन गौशाला जाता, प्रात: धारोष्ण दूध पीना मेरी नित्य चर्या थी। गौशाला से लौटकर बाबा के पास कम से कम एक घन्टा बैठक होती। गुजरात का एक बड़ा समूह अध्ययनरत था तो उस समूह से भी बहुत से लोग सुबह-सुबह बाबा के संग बैठते थे। एक दिन सहसा बाबा जी बोले, 'सबका अपना स्टाइल है, इनका अपना स्टाइल है।' मैंने बाबाजी की ओर चौंक कर देखा, क्योंकि ये मेरा तकिया कलाम जैसा वाक्य था। उनके चेहरे पर छायी मुस्कुराहट ने खुद ब खुद बयां कर दिया कि वो हर पल हर क्षण अंग-संग हैं। मैने भी आँख झुकाकर नमन किया।

इसी दौरान बाबाजी से अध्ययन स्थली को लेकर चर्चा हुई। बाबाजी ने सहज रूप से सहमति दी और अमरोहा, उ० प्र० में जीवन विद्या अध्ययन केन्द्र की रूपरेखा बाबाजी के संग बनी, जिसका निर्माण अब लगभग पूर्ण हो गया है।

अदम्य साहस, हमेशा जिज्ञासु की तृप्ति के लिये तत्पर। मानव जाति को जीने का एक सम्पूर्ण स्वरूप 'जीवन विद्या ' के रूप में दे गये। मैं अपने को परम सौभाग्यशाली पाता हूँ कि ऐसे दिव्य मानव के संग मुझे जीने का अवसर मिला। भले ही वो समय बहुत ज़्यादा नहीं रहा, किन्तु मेरी स्मृति में सदा-सदा सुखदायी संरक्षित है।

कोटि कोटि नमन!

अरुण सिद्धू

अमरोहा

(नोट: आदरणीय अरुण भाई सिद्धू जी की शरीर यात्रा पूरी हो चुकी है।)

दिव्य मानव - श्रध्देय ए. नागराज जी (बाबा)

मध्यस्थ दर्शन के प्रणेता तथा जीवन-विद्या के रचयिता बाबा नागराज एक दिव्यात्मा ही नहीं एक महामानव भी थे। दीन-हीन मानव को सतत सुख की प्राप्ति कैसे हो; अधर्म, अन्याय, विसंगतियां, वैमनस्य तथा संकुचित सोच के दायरे में सिमटती यह धरती स्वर्ग कैसे बने; सभी एक दूसरे के पूरक एवं उपयोगी बनकर सहअस्तित्वपूर्ण जीवन कैसे जीयें - इसके लिए वे जीवन भर कार्य करते रहे। जीवन-विद्या के इस मुकाम पर खड़ा आज मैं जब पीछे के सभी आदर्शवादी, भैतिकवादी व्यक्तियों को देखता हूँ; तो पाता हूँ कि उनके समक्ष किसी का भी व्यक्तित्व नहीं ठहरता। वे अपने आप में सम्पूर्ण थे, दिव्य थे और मानव के रूप में महामानव अवतरित थे। उनका व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा था कि जो भी उनके सम्पर्क में आया; वह उन्हीं का होकर रह गया।

वर्ष 2004 में पहली बार मैं बाबा के सम्पर्क में आया। अमल-धवल कुर्ता तथा श्वेत लूंगी लपेटे वे ऐसे लगे, मानो वैमनस्य की कीचड़ में श्वेत कमल पुष्प खिला हो। चुम्बकीय प्रभामण्डल से दमकते चेहरे पर चिंतन का गांभीर्य, तप का तेज, वाणी में ओज। उनके सम्पूर्ण, समर्थ व्यक्तित्व को देखकर मैं अभिभूत हो गया। उस समय एक ऐसी अलौकिक अनुभूति हुई, जिससे मैं इस अस्तित्व को नित्य वर्तमान के रूप में समझ पाया; तथा वर्तमान की उपेक्षा की जगह विश्वास स्थापित कर पाया। भूत की पीड़ा की जगह समीक्षा व भविष्य में आशा के फंदे की जगह आश्वस्ति को समझ पाया। देखते-देखते आज एक युग बीत गया; किन्तु एक क्षण भी ऐसा नहीं आया कि उनका सौम्य, शांत और स्मित मुस्कान भरा चेहरा मेरी स्मृति से ओझल हुआ हो।

इसके बाद अनेक ऐसे अवसर आये, जब मुझे बाबा का सान्निध्य मिला। वर्ष 2006 में अमरकंटक शिविर में तो एक सप्ताह बाबा का वरदहस्त मेरे ऊपर रहा। वे बहुत सहज, सरल, शिष्ट और शांत-शालीन इंसान थे। सभी

को शालीनता के साथ दर्शन की गूढ़ बातें भी इतनी सरलता से समझाते थे, कि सब कुछ हाथ की हथेली की तरह स्पष्ट हो जाए। यही कारण था कि उनका उद्बोधन अजस्र अन्तर्धारा की तरह हृदय में समा जाता था। मसूरी सम्मेलन में तो पहले दिन के उद्बोधन को सुन कर मैं रात भर सो नहीं पाया कि जीवन-विद्या की इतनी सरल बात अब तक अध्यात्म और विज्ञान पहचान क्यों नहीं पाया।

बाबा जी अद्भुत अन्तर्यामी थे। उनके सान्निध्य में रहने वाले के मन में जीवन-विद्या को जानने की कितनी ललक है, उसे वे तुरंत भाँप जाते थे। जिसके हृदय में जिज्ञासा का ज़रा सा भी स्फुरण हो जाता था, चेतना की चिंगारी जागृत हो जाती थी; वे उसे और अधिक प्रेरित-प्रज्वलित करते थे, डाँट-फटकार से - (उकसाते, "कब तक सुविधा संग्रह में फँसे रहोगे? अब तक क्या अच्छा हुआ बताओ?") जिन्हें यह विद्या समझ में नहीं आती थी, उनसे वे और अधिक शालीनता से व्यवहार करते थे। जिज्ञासु के व्यक्तित्व को तराशते और उसके चिंतन को निखारते थे। बाबा जी चाहते थे कि जिज्ञासु का मन मानवीय लक्ष्यों व मानवीय चेतना के अध्ययन में लग जाये। इसी को वे ध्यान व अभ्यास के रूप में समझाते थे। मेरी नज़र में बाबा जी विश्व के रोल मॉडल थे, और रहेंगे।

मैं जब भी बाबा जी के साथ अमरकंटक में रहा; बाबाजी का चारो आयामों - अनुभव, विचार, व्यवहार व कार्य तथा पाँचों स्थितियों- (स्वयं, परिवार, समाज, राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्र में जीने का स्वरूप स्पष्ट होने लगता था। तथा बाबाजी एक साथ ज्ञानी, गुरु, पिता, परिवार, समाज तथा व्यवस्था मानव के रूप में दिखते थे।

यद्यपि भौतिक रूप से बाबा आज हमारे बीच विद्यमान नहीं हैं, किन्तु उन्होंने जीवन जीने का जो दर्शन हमें दिया, पृथ्वी को स्वर्ग बनाने का जो रास्ता दिखाया उसके माध्यम से वे सदैव हमारे साथ हैं। उनकी दस सोपानीय विधि तो सम्पूर्ण विश्व के लिए हितकारी और अनुकरणीय है। उस दिव्य चैतन्य को समर्पित मैं उन्हें शत-शत नमन करता हूँ, वंदन करता हूँ।

डॉ. इस्माइल टाक

जयपुर

बाबाजी के साथ बिताए क्षणों की स्मृति

बाबा जी से मेरा मिलना पहली बार वर्ष 1996 के मार्च के महीने में बिजनौर में हुआ, जब मैं एक शिविर के लिए गया हुआ था। उस समय मैं IIT कानपुर में मेकैनिकल इंजिनियरिंग का B.Tech. का द्वितीय वर्ष का छात्र था। शिविर की सूचना मुझे संयोगवश श्री गणेश बाग़ड़िया जी से मिली, जब वे IIT कैम्पस में कुछ साथियों से मिलने आए हुए थे। दिन भर के शिविर के बाद शाम को हम लोग बाबाजी के साथ बैठ कर अपने प्रश्नों का समाधान लेते थे। सामान्यतः मेरे कुछ अटपटे प्रश्न होते थे, जिनपर मुझे डाँट पड़ ही जाती थी। परंतु बाबा जी जिस विश्वास से प्रश्नों का उत्तर देते थे, उससे ये तो दिखता था कि उन्हें अस्तित्व का पूरा ज्ञान है। बाबा जी को देखकर यह भी स्पष्ट हो गया था कि एक ज्ञानी व्यक्ति कैसा होता है; उसका जीना कैसा होता है। मैं इस बात से काफ़ी प्रभावित हुआ कि संपूर्ण अस्तित्व को जानने वाला व्यक्ति इतना सरल हो सकता है। दूसरी बार बाबाजी से मिलना हुआ, जब मैं उसी वर्ष बलिया के रेवती जिले में यशपाल सत्यजी का शिविर कर के उनके साथ जून के महीने में अमरकंटक पहुँचा। मेरा प्रश्नों का क्रम लगा रहता, और मुझे डाँट भी पड़ती रहती; परंतु स्पष्टता भी बढ़ती जाती। उसके बाद तो उनसे मिलने का क्रम सा बना रहा। वर्ष 1997 से गणेश जी के सान्निध्य में अध्ययन का क्रम बन गया। तब तक पुस्तक भी आने शुरू हो गये थे तथा हम सब उनका अध्ययन करते थे।

वर्ष 1998 में मेरा B.Tech. पूरा हुआ, और मैं टाटा मोटर्स, Lucknow में काम करने लगा। 1999 में जॉब छोड़कर मैं कानपुर आ गया; तथा गणेशजी के साथ रहते हुए शिक्षा संस्कार के काम में लग गया। फिर लगभग हर वर्ष अमरकंटक जाना होता रहा; तथा बाबाजी के साथ संवाद होता रहा। हम लोग अंबा दीदी और भाभीजी लोगों का बनाया हुआ स्वादिष्ट भोजन करते, तथा बाबाजी के साथ संवाद होता रहता। हर वर्ष जीवन विद्या सम्मेलन में जाना होता तथा बाबाजी से मिलना होता। इसी बीच बाबाजी एक 'प्रश्न मुक्ति अभियान' के लिए जहाँ-जहाँ भी जीवन विद्या का कार्यक्रम चल रहा था, वहाँ समय दे रहे थे। तो मैं फिर उनसे मानवीय शिक्षा संस्कार संस्थान, कानपुर में मिला। इस क्रम में कुछ बातें जो मैं बाबाजी के बारे में महसूस कर पाया वो इस प्रकार है:

1। किसी भी प्रश्न को सुनकर बाबाजी का जो पहला उत्तर होता था, वो इतना सारगर्भित होता था कि उस पर ठीक से ध्यान देकर समझने की आवश्यकता होती थी। कई बार मैं या दूसरे साथी इससे चूक जाते थे और फिर एक लंबा संवाद चल जाता था; और फिर लगता था कि उसकी आवश्यकता नहीं थी।

2।बाबाजी से मिलकर जो स्नेह मिलता था उससे लगता था कि उन्होंने हर व्यक्ति को स्वीकारा हुआ है। उनकी डाँट से यह भी लगता था कि उन्होंने आपसे काफ़ी अपेक्षा रखी हुई है, जिसपर स्वयं को खरा उतरना है।

3।बाबाजी बड़ी सहजता से कई ऐसी बातों को कह देते थे, जिन्हें स्वयं देखने में कई वर्ष लग जाएँगे। परंतु इससे यह भी समझ में आया कि जो वस्तु जैसी है, उसे वैसा देखा जा सकता है तथा शब्दों में अभिव्यक्त किया जा सकता है।

वर्ष 2007 से 2008 के बीच अमरकंटक में काफ़ी समय रहकर बच्चों के लिए 'सहायक वाचन' की पुस्तक को लिखने का अवसर मिला। इस बीच बाबाजी से काफ़ी संवाद हुआ। उनकी सेवा का भी काफ़ी अवसर मिला। इस तरह लगभग हर वर्ष बाबाजी से संवाद होता रहा, और अपने अंतिम क्षणों तक वे हमें समाधानित करते रहे। अभी भी कभी 'अनुभव' शब्द को कहना होता है, तो एक अनुभव संपन्न व्यक्ति के रूप में उनका स्मरण अवश्य होता है।

बाबाजी के प्रति श्रद्धा तभी पूरी हो सकती है, जब स्वयं अनुभव और प्रमाण सम्पन्न हो जाएँ। इसी प्रयास में हम में से कई साथी हैं, और मैं अपनी और सबकी क्रियापूर्णता और आचरणपूर्णता की कामना करता हूँ।

सधन्यवाद,

कुमार संभव

नोयडा, ऊ०प्र०

मानव चेतना की चमक

हर मानव की तरह मैं भी परिवार, शिक्षा, समाज, सरकार, धर्म, नौकरी, व्यापार आदि से पैसा; पैसों से इंद्रियों से जो अच्छा लगा उसको प्राप्त कर लिया; इसी को अपनी सफलता, इस सफलता के साथ अपने को श्रेष्ठ, समझदार मान लिया था। उसी के अनुसार जी रहा था। नौकरी भी ऐसी थी, जिसमें अपनी ही चलती थी। इसलिए अपनी बात को भी सही मान लिया था, अपनी समझ को भी सही मान लिया था।

वर्ष 1994 में योग के बारे में सूचना मिली, तो जानने की इच्छा हुई कि योग क्या है, इसको समझा जाये। इसके लिए विवेकानन्द केन्द्र ग्वालियर में योग के बारे में सुना कि योग से मन को शान्ति मिलती है तथा बताया कि योगः चित्तवृत्ति निरोधः mastery over the mind - अतः मन पर नियंत्रण होता है। इसके लिए बताया गया कि केवल योग-आसन, प्राणायाम को सीखने से काम नहीं चलेगा। अतः योग प्रशिक्षक का कोर्स करना पडा। योग प्रशिक्षण का कार्य कई वर्षों तक करते रहे, करवाते रहे; परन्तु मन पर नियंत्रण नहीं हुआ। लोग मेरे सिखाने से प्रभावित होते रहे, मेरा सम्मान एवं आदर करते रहे; परन्तु चित्तवृत्ति निरोध नहीं हुआ। विवेकानन्द से जुड़ा रहने के समय केन्द्र के प्रति आकर्षण बना रहा। उसी के चलते कार्यालय में भी, कॉलोनी में भी योग की कक्षायें चलाते रहे तथा पतंजली योग को भाषा के रूप में बताते रहे जैसे युज्जते अनेन इति योगः, योगः चित्तवृत्ति निरोधः, अथ योगः अनुशासनम्, योगः कर्मसु कौशलम्..... आदि। सिखाने के रूप में आसन, प्राणायाम; कुछ ओमकार, ध्यान, धारणा के बारे में सिखाते रहा, बोलता रहा, सुनाता रहा; धारणा, ध्यान से समाधि में मानव पहुँच जाता है। मुझे ध्यान भी समझ में नहीं आया तो समाधि की बात कैसे आती। परन्तु समाधि कोई अवस्था होती है, ऐसा विचार में बना रहा था। आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान जैसा बन पडता था; वैसा करता रहा, करवाता रहा।

विवेकानन्द केन्द्र ग्वालियर एक आध्यात्मिक केन्द्र है। वहाँ मैं शहर के बहुत सारे ज्ञानियों, मनीषियों, विभिन्न धर्मों, विभिन्न आध्यात्मिक विधाओं से परिचित हुआ तथा देश के विभिन्न मिशनों के महापुरूषों, ज्ञानियों से भी मिला; उनके प्रवचन सुने, समझने का प्रयास किया। उनमें मुख्य रूप से विवेकानन्द केन्द्र- जहॉ स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा को लेकर जीने का प्रयास है, चिन्मय मिशन, आर्ष वेदान्त - जहाँ वेद व गीता का पठन मुख्य कार्य था, दिव्य जीवन मिशन, गायत्री परिवार, श्री श्री रविशंकर की सुदर्शन क्रिया, सहज योग, सहज मार्ग रामचन्द्र मिशन, विपश्यना आदि प्रमुख थे। अन्य लोगों का भी आगमन होता रहता था, उनको सुनता रहता था। परन्तु उन सभी लोगों में किसी को भी समाधि नहीं हुई थी, तथा मिलने पर ऐसा नहीं लगता था कि उनका उनके मन के ऊपर नियंत्रण है। मेरा मन भी नियंत्रित नहीं था; फिर भी मैं दूसरे के मन को उसके व्यवहार व बातचीत से जाँच लेता था कि उसका मन नियंत्रित नहीं है। यह क्या वास्तविकता है जिससे यह मैं जाँच लेता था।

वर्ष 2005-06 में विवेकानन्द केन्द्र से सूचना मिली कि एक व्यक्ति आ रहे हैं, जो मन आत्मा, परमात्मा, ईश्वर के बारे में बतायेंगे तथा परिवार, समाज, देश-विदेश में जो समस्यायें हैं; उनके निराकरण का तरीका भी बतायेगें। इसमें 7 दिन का समय लगेगा।

मैंने 7 दिन तक बाबाजी द्वारा प्रतिपादित मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद को सुना। पहले मैनें इसे समझा हुआ माना था। तब मैंने स्वयं में पाया कि बात तो पूरी ठीक है परन्तु मुझे पूरी बात समझ में नहीं आयी। इसके लिए मैंने प्रबोधक से पूछा, इसको समझने के लिए क्या करना है? तो उन्होने बताया कि 2-3 शिविर और करो। और शिविर किये, परन्तु जैसी मैं स्पष्टता चाहता था; वैसी स्पष्टता नहीं बनी। शिविरों में यह बात पता लगी कि बाबाजी ने समाधि संयम किया है; जिस समाधि को योग में अन्तिम लक्ष्य माना है। समाधि में बाबाजी के केवल विचार, इच्छा चुप हुए, ज्ञान नहीं हुआ। इससे मुझे स्पष्ट हुआ कि समाधि की ओर नहीं जाना है, परन्तु मन तो नियंत्रित हो; ऐसा विचार रहा। इसके लिए बाबाजी ने बताया कि संज्ञानीयता के बाद ही मन नियंत्रित होता है; इसके लिए अध्ययन करना है। इसी दौरान जिसे मैं अपनी ज़िम्मेदारी मानता था - बच्चों की पढ़ाई, शादी, नौकरी उनके लिए व अपने लिए मकान, गाड़ी आदि तथा अपनी नौकरी की ज़िम्मेदारी सन् 2013 दिसम्बर में पूरी हो गयी। उसी समय संदेश मिला कि तीन वर्षीय अध्ययन शिविर रायपुर में जनवरी 2014 से होगा; इसको ज्वाइन कर लिया। अध्ययन तो पूरा नहीं हुआ, परन्तु पुस्तकों का पठन पूरा हो गया। पुनः पुस्तकों के पठन में मन ज़ोर से लगने लगा। स्वंय में देखा कि ऐसा क्यों हो रहा है, तो समझ में आया कि वास्तविकतायें स्पष्ट होने लगी हैं।

अध्ययन शिविरों के दौरान तथा वर्ष 2010 में बाबाजी से पहली भेंट हुई। 3 दिन में बाबाजी ने, जो उनके साथ स्वंय में, परिवार में, समाज में, व्यवसाय में, सरकार के बुद्धिमान ज्ञानियों के साथ घटा था उसको बताया। फिर साधना काल, समाधि, संयम से जो मिला उसे भी बताया। इस पहली मुलाकात में मुझे स्वंय में सामान्य रूप से स्वीकृत हुआ था कि हर मानव समान है - यह सच्चाई है, समानता के भाव में रहना है; परन्तु यह नहीं हो पा रहा था – यह द्वंद हुआ था इसलिए अध्ययन में मन लगा है, अभी भी लग रहा है। प्रकृति की व्यवस्था(चूँकि मैं खेती, किसानी से बचपन में जुडा था) ऊपर से ठीक-ठाक दिखाई पड रही थी; परन्तु यह व्यवस्था कैसे ठीक-ठाक है इस ओर ध्यान नहीं था। आज की स्वंय की स्थिति से कह सकते हैं कि जड प्रकृति की प्रत्येक इकाई व्यवस्था में

है, क्योंकि हर इकाई सह अस्तित्व में क्रियाशील है, आचरणशील है। परन्तु जाते समय बाबाजी ने कहा, "मेरी तरह जीना है।" यह शब्द तो पकडा, परन्तु बाबाजी के जीने को नहीं पकड़ा। अब समझ में आ रहा है कि बाबाजी ने अपने शब्दों में कहा था कि सबके साथ निर्विरोधपूर्वक जीना है; सभी के साथ विरोधमुक्त होकर जीना है। अध्ययन के दौरान जब बाबाजी से दुबारा मिला तो उन्होंने सामान्य बात पूछने के बाद पूछा, "बेटा, मानव चेतना समझ में आयी?" तो मैनें उत्तर दिया," बाबाजी समझ रहा हूँ।" तो उन्होंने कहा, "मानव चेतना को समझो और मेरी तरह जियो।"

कुछ दिन बाद स्वयं में ध्यान गया कि मै अभी जीव चेतना में जी रहा हूँ; मानव चेतना की चमक है, रोशनी है। उसके बाद जितनी बार बाबाजी से मिला, बाबाजी ने यही कहा - मानव चेतना समझो और मेरी तरह जियो। अध्ययन के दौरान पता चला कि हर मानव और मेरे पास जीवन है, जिसमें सब कुछ समझने की ताकत है जिसको अक्षय बल, अक्षय शक्ति कहा है। अतः हर मानव सब कुछ अर्थात सहअस्तित्व को समझ सकता है, समझने के बाद सहअस्तित्वपूर्वक जी सकता है। इसी को बाबा जी मुझे बार बार कह रहे थे कि मुझ में समझने की ताकत है, प्रकृति प्रदत्त है, कल्पनाशीलता के रूप में जीवन में है। जीवन व्यापक में सम्पृक्त है, व्यापक ही ज्ञान है। इसलिए हर मानव में ज्ञान की प्यास है, जिज्ञासा है। जब तक मैं ज्ञान का अनुभव नहीं कर लेता हूँ, तब तक प्यासा ही रहूँगा; ज्ञान पाने की जिज्ञासा बनी रहेगी।

बाबाजी ने मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद प्रतिपादित किया है; यह कोई कोरी कल्पना नहीं है। बाबाजी ने अस्तित्व को संयम की अवस्था में जैसा देखा है, वैसा ही प्रतिपादित किया है। अर्थात यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता को जैसा देखा है वैसा ही लिखा है। मुझे पढ़कर यथार्थता, सत्यता, वास्तविकता जैसी है, वैसा ही मुझे समझना है। यथार्थता, सत्यता, वास्तविकता एक ही है कि व्यापक में इकाइयाँ (जड-चैतन्य) संपृक्त हैं; इसको मैं हर समय ध्यान में रखने का प्रयास करता हूँ। अर्थात विचार में सहअस्तित्व नियमपूर्ण, सन्तुलित है; इसको बनाये रखना है तथा मानव न्यायपूर्वक (निश्चित आचरण, मानवीय आचरण) जीना चाहता है, व्यवहार में समाधान चाहता है, उसको प्रदान कर रहा हूँ या नहीं; ऐसा अभी प्रयासपूर्वक करना पड़ता है। यह बिना प्रयास के होने लगे - यही विश्राम होगा, निरन्तर बना रहेगा।

जब मैं मानवीय आचरण अर्थात मानवीय मूल्यों जिनको अभी स्मरण पूर्वक रखना होता है, जैसे हर मानव समझ सकता है यह स्मरण में बना रहता है; हर मानव सही अर्थात व्यवस्था को समझना चाहता है उसी को प्रस्तुत करता है, जिससे मैं भी सुख पाता हूँ दूसरा भी सुख पाता है, इसको भी देख पाता हूँ; स्वयं में व्यवस्था का मतलब मानव के सन्दर्भ में/मेरे सन्दर्भ में, मैं अस्तित्व को सहअस्तित्व में इकाईयाँ हैं; इकाईयों में व्यवस्था है, प्राकृतिक रूप से; इसको हमेशा ही स्मरण में रखता हूँ और यह भी देख पाता हूँ कि जब जब व्यवस्था स्मरण में नहीं रहती विरोध दिखाई पडता है; जब जब व्यवस्था स्मरण में रहती है तो विरोध से मुक्त रहते हैं। यही बातें बाबाजी मुझसे हर मुलाकात में कहे थे। अब मैंने उनके अर्थ को समझ लिया है कि मानव चेतना का मतलब सबकुछ को समझ कर सभी के साथ जीना है। ऐसा ही बाबाजी जीते थे। इसी को बाबाजी ने अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में जीने की बात लिखी है। यह दो शब्दों में बताते थे - मानव चेतना को समझना है, मेरी तरह जीना है।

अब मैं आपके प्रश्न पर आ रहा हूँ कि भविष्य में दुनियाँ को कैसा देखना चाहते हैं। आप भी मध्यस्थ दर्शन को समझ रहे हैं, अर्थात जैसा आप दुनिया को देखना चाह रहे हैं, वैसा मैं भी चाहूँगा। उससे भिन्न कोई भी चाह नहीं सकता जो मध्यस्थ दर्शन को समझ रहा हो। जिसको बाबा जी के शब्दों में "धरती स्वर्ग हो, मानव देवता हो, धर्म सफल हो, नित्य शुभ हो" अर्थात धरती मानव के रहने योग्य बनी रहे, मानव मानव के साथ रहने की योग्यता से सम्पन्न हो तभी नित्य शुभ होगा। हर मानव जब समझदार होगा, मानव में सहअस्तित्व की समझ होगी, जड़ इकाईयों में व्यवस्था की समझ होगी, तब वह जीव जानवरों को नियंत्रित करते हुए स्वनियन्त्रण पूर्वक मानव के साथ न्यायपूर्वक, समाधानपूर्वक जियेगा। तभी सर्व शुभ होगा। ऐसा ही बाबाजी जीते थे। इसी को बाबाजी बार-बार बोले, "मेरी तरह जीना है, ऐसा ही मैं दुनिया को जीते हुए देखना चाहता हूँ।" मुझे जो लिखना था, वह लिख दिया है। भाषा से इतना ही लिखना बना। आप सभी विद्वान हैं भाषा को ठीक कर लेना। इसी विश्वास के साथ....

विचित्र गंगवार

ग्वालियर

'जीवन' को समझा क्या?

सर्वप्रथम श्रद्धेय श्री अग्रहार नागराज बाबाजी को सादर कोटि- कोटि प्रणाम।

आदरणीय बाबाजी के विषय में कुछ लिखने की योग्यता, पात्रता तो मेरी नहीं है। हमारे अध्ययन के साथी उम्मेद भाई जी नाहटा के आग्रह और उत्साहवर्धन के उपरान्त कुछ लिखने का प्रयास किया है। जो भी लिखा है, इसमे एक शब्द भी मेरा नहीं है। सब बाबाजी के सान्निध्य, बाबाजी के वाङ्मय, गुरुजनों, अध्ययन की व्यवस्था, अनुकूल वातावरण और अध्ययन के साथियों के सहयोग एवं प्रयासों का फलन है।
मध्यस्थ दर्शन (जीवन विद्या) की प्रथम सूचना ही इतनी सशक्त थी कि पूर्व की मान्यताएँ टूटने लगीं और इसे स्वीकार कर, अध्ययन का मन बन गया। गुरुजनों का समर्पण, निष्ठा एवं संकल्प के साथ अध्ययन कराना, किसी आश्चर्य से कम नहीं था। अध्ययन के दौरान अनेकों आश्चर्यजनक वास्तविकताओं एवं तथ्यों से साक्षात्कार हुआ।

श्रद्धेय बाबाजी ने महत कार्य किया है - जो आपने पारम्परिक साधना विधि से प्राप्त किया, उसको मध्यस्थ दर्शन के 'वाङ्मय' के रूप में इस धरती की सम्पूर्ण मानव जाति को समर्पित किया है। अध्ययन विधि के द्वारा परमाणु से लेकर सभी ग्रह-गोल और ब्रह्माण्डों की वास्तविकताओं को देखने, जानने, समझने और प्रयोजन को स्पष्ट करके समाधान सहित मानव के निरन्तर सुख-समृद्धि पूर्वक जीने का मार्ग प्रशस्त करके इस धरती पर मान्य रहस्यों को समाप्त कर दिया है।

सृष्टि की सभी वास्तविकताओं को सरल अध्ययन विधि के द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति के लिए सृष्टि दर्शन का मार्ग प्रशस्त किया है। इस धरती पर प्रथम बार ऐसा महत कार्य बाबाजी के द्वारा ही हुआ है, जो सम्पूर्ण मानव जाति पर अतुलनीय एवं असीम उपकार है।

अध्ययन के दौरान कई बार बाबाजी के सान्निध्य का सुख प्राप्त हुआ है। एक सत्र अछोटी में स्थगित होने के कारण वो सत्र बाबाजी और साधन भाई के साथ अमरकंटक में सम्पन्न हुआ; जो अद्वितीय साबित हुआ। बाबाजी का दया, कृपा एवं करुणामय भाव, सभी के साथ समानता का व्यवहार तथा सेवा भाव अद्भुत था। श्रद्धेय बाबाजी और साधन भाई के परिवार के साथ व्यतीत किये गये दिनों का अनुभव आज भी रोमांचित कर देता है।

अपने परिवार के साथ अछोटी प्रवास के दौरान भी 'दिव्य मानव' के सान्निध्य सुख की अनुभूति का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बाबाजी के सान्निध्य में रहकर बाबाजी की सेवा के साथ व्यापक, सृष्टि, जीवन और प्रकृति व सहअस्तित्व को देखने, जानने, समझने के कई अवसर, आदरणीय बाबा जी की गत शरीर यात्रा में मुझे प्राप्त हुए हैं। ये मेरी इस शरीर यात्रा की एकमात्र पूर्ण एवं सार्थक उपलब्धि रही। पूर्व की सभी प्राप्तियाँ इसमें समाहित हो गयीं।

श्रद्धेय बाबा जी द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति को समर्पित "मध्यस्थ दर्शन" का वांगमय, अध्ययन विधि से सम्पूर्ण को देखने, जानने, समझने के लिए परिचय शिविर, अध्ययन प्रक्रिया का प्रारूप और सृष्टि की समस्त वास्तविकताओं को 'मानवीय शिक्षा विधि'" के द्वारा विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक का प्रारूप एवं स्थापना का अविश्वसनीय और अद्भुत कार्य करके 'मानवीय शिक्षा' की नींव इस धरती पर रखा है, और समस्त मानव जाति के लिए समाधान के द्वारा समृद्धि और निरन्तर सुखपूर्वक जीने का मार्ग सुलभ किया है। बाबाजी ने सृष्टि के रहस्यों पर ज्ञान का प्रकाश डालकर सृष्टि को मानव जाति के सम्मुख स्पष्ट एवं आलोकित कर दिया है। आदरणीय बाबाजी ने परम्परा के शब्दों को उनके वास्तविक अर्थों में परिभाषित करके समस्त मानव जाति के लिए अध्ययन को सरल, सहज एवं सुलभ कर दिया है।

आदरणीय बाबाजी जब भी अछोटी आते, हर बार मुझे सान्निध्य सुख की प्राप्ति के साथ-साथ सेवा का अवसर भी प्राप्त होता; साथ ही बहुत कुछ जानने, समझने का बहुमूल्य अवसर भी प्राप्त होता। अध्ययन के उपरान्त सत्यापन भी बाबाजी के समक्ष हुआ; जो मेरा ही नहीं मेरे सभी साथियों का सौभाग्य था। सत्यापन में बाबाजी ने सभी साथियों से एक ही प्रश्न पूछा।

"जीवन" को समझा क्या?"

"जीवन" समझ में आया क्या?"

"जीवन" को जाना क्या?"

इस एक छोटे से सत्यापन ने मुझे "जीवन" के महत्व से परिचित करा दिया। जीवन अर्थात "स्वयं" को समझे बिना आगे की यात्रा सम्भव नहीं है; ऐसा विचार मेरी वृत्ति में स्थापित हो गया। सत्यापन के उपरान्त अध्ययन "स्वयं" में आरम्भ हुआ। "जीवन" की क्रियाएँ "स्वयं" में स्पष्ट होना आरम्भ हुईं। "स्वयं" की ओर ध्यान गया। आज भी स्वयं, "स्वयं" के अध्ययन में रत हूँ।

श्रद्धेय बाबाजी ने साधना की पूर्णता एवं फल प्राप्ति अर्थात सृष्टि दर्शन के अनुभव के उपरान्त अपनी सम्पूर्ण शरीर यात्रा व्यापक, जीवन+शरीर के संयुक्त स्वरूप अर्थात मानव, मानवीय आचरण एवं शेष प्रकृति के महत्व,

सहअस्तित्व और उसके होने और रहने के प्रयोजन जैसे अति महत्वपूर्ण विषयों से, सृष्टि की हर एक इकाई होने व रहने के प्रयोजन को, इस धरती के मानव को परिचित कराने में और अपने अनुभव की परम्परा को स्थापित करने में गत शरीर यात्रा को पूर्णतया समर्पित किया है। अपनी धरती पर वर्तमान तक मानव को परिभाषित नहीं किया गया था। जीवन व शरीर के संयुक्त रूप में मानव को प्रथम बार श्रद्धेय बाबाजी ने ही परिभाषित किया है। गठनपूर्ण परमाणु, पुँजाकार स्वरूप, दसों क्रियाएँ, क्रम, कार्य, गतिविधियों और फल परिणाम, प्रयोजन सहित सभी मानव के जानने समझने का मार्ग सुलभ कर दिया है। "स्वयं" को समझकर ही मानव की "जागृति" की यात्रा सम्भव है। स्वयं यानि "जीवन" के वास्तविक स्वरूप को आधुनिक विज्ञान भी वर्तमान तक प्रमाणित नहीं कर पाया है। "जीवन" के संदर्भ में बाबाजी ने विज्ञान के लिए शोध के अनेक द्वार खोल दिए हैं।

श्रद्धेय बाबाजी ने मानव, मानवीयतापूर्ण आचरण और सहअस्तित्व सम्बन्धित सभी तथ्यों को जाँचने परखने का अवसर सभी को समान रूप से उपलब्ध करा दिया है। जो भी चाहे अध्ययन विधि से वास्तविकताओं का ज्ञान प्राप्त कर, किसी भी कसौटी पर जाँच परख सकता है। सृष्टि में सब कुछ निश्चित है और नियमपूर्वक है। जो था, वही है; जो है, वही था। विश्वासपूर्वक सृष्टि के रहस्यों को आवरण मुक्त करके सम्पूर्णता के अर्थ में "दिव्य मानव" श्रद्धेय श्री अग्रहार नागराजजी ने उदघाटित एवं प्रमाणित किया है। बाबाजी के अतिरिक्त किसी ने भी इस धरती पर सृष्टि की वास्तविकताओं को वर्तमान तक उदघाटित एवं प्रमाणित नहीं किया है।

श्रद्धेय बाबाजी ने व्यापक, जीवन, मानव और प्रकृति के होने व रहने के प्रयोजन को परिभाषित तो किया ही है; साथ ही प्रकृति की चक्रीय व्यवस्था, उसकी आवर्तनशीलता, मानव-मानव सम्बन्ध व मानव का समस्त सृष्टि के साथ सम्बन्धों और अंतर्संबंधों सहित सहअस्तित्व को देखना, पहचानना, जानना व समझना और उसके अनुसार "मानवीय जीवन शैली" को विकसित करने के लिए गत शरीर यात्रा में अनवरत, अथक एवं अदभुत प्रयास करके "मानवीयतापूर्ण" जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है। "मानवीय जीवन शैली" विकसित करके एवं जी कर प्रमाण सहित इस धरती पर उपलब्ध करा दिया है। इस धरती पर "मानवीयता" को स्थापित करने के लिए, बाबाजी के अथक, निरन्तर, सार्थक एवं प्रयोजन के अर्थ में किये गये प्रयासों व कार्यों को, मेरे लिए शब्दों में उकेरना सम्भव नहीं।

"जीवन विद्या" की प्रथम सूचना, परिचय शिविर, अध्ययन प्रक्रिया, व्यवस्था का प्रारूप, परिवारों का परस्परता में कार्य व्यवहार, श्रमपूर्वक प्राकृतिक उत्पादन, अध्ययन के लिए अनुकूल वातावरण और परिवारों का सम्बन्धों में जीना, भावों का आदान प्रदान, ये सभी मेरे लिये अत्यंत प्रेरणादायी साबित हुए हैं। स्वयं को देखने, जानने और समझने का अवसर भी प्राप्त हुआ। स्वयं में अंतर्नियोजन और बहिर्गमन के स्पष्ट होने से स्थिरता का भास हुआ। सृष्टि के होने और सृष्टि की हर एक वास्तविकता के नियमों को, गति को और प्रयोजन एवं परिणाम को जानने, समझने की इच्छा बलवती हुई। अत्यंत सरल अध्ययन प्रक्रिया के द्वारा, इस धरती के सभी मानव, वह चाहे किसी भी वातावरण से हों, किसी भी देश में हों, किसी भी भाषा के बोलने वाले हों, किसी भी काल में हों; सब जान सकते हैं, समझ सकते हैं, जी सकते हैं; समाधान को प्राप्त कर, निरन्तर सुख समृद्धि को प्रमाणित कर सकते हैं। इससे शुभ और महान कार्य किसी भी धरती पर है ही नहीं।

श्रद्धेय बाबाजी ने आधुनिक विज्ञान के लिए भी शोध के लिए निश्चित मार्ग का मार्ग दर्शनकिया है। धरती की "व्यवस्था" को समझकर, व्यवस्था में "आवर्तनशीलता" को बनाए रखने के महत्व और आवश्यकता को भी स्पष्ट किया है। व्यवस्था नित्य वर्तमान है। सृष्टि में विकास क्रम, विकास निरन्तर गतिशील है। शेष प्रकृति एवं विकास क्रम-विकास, मानव की "जागृति" के लिए ही है। मानव जागृति ही "शुभ" है। अपनी धरती पर "सर्वशुभ" स्थापित करने में अपनी ऊर्जा को नियोजित करना और सभी मानव इस शुभ कार्य को करने के लिए प्रयासरत हों, ऐसा श्रद्धेय बाबाजी का प्रयास निरन्तर रहा है।

"सहअस्तित्व ही सर्व शुभ है"।

सृष्टि की हर एक इकाई सभी इकाइयों के साथ सम्बन्धों और अंतर्संबंधों को पहचानकर निरंतर निर्वाह करते हुए गतिशील है। सृष्टि की सभी इकाईयाँ सभी इकाइयों के साथ अनुकूलता में हैं। सृष्टि की सभी इकाईयाँ एक दूसरे की उपयोगिता व पूरकता में हैं। सृष्टि में हर एक परमाणु, हर एक वस्तु, हर एक वास्तविकता, मानव के प्रयोग, उपयोग और सदुपयोग के लिए ही है। सृष्टि की हर एक- एक इकाई, वर्तमान से विकसित अवस्था की ओर निरन्तर गतिशील है। सृष्टि में हर एक इकाई, हर एक वस्तु कभी रुकता नहीं है। सृष्टि में हर एक परमाणु, हर इकाई, हर वस्तु, हर वास्तविकता आगे की ओर ही अग्रसर है; वर्तमान से उन्नत अवस्था की ओर अग्रसर है। यही विकास है।

सृष्टि में कुछ भी मरता या समाप्त नहीं होता है। सृष्टि में परमाणु से मानव शरीर तक हर इकाई रचना-विरचना की चक्रीय व्यवस्था में है। सृष्टि में हर इकाई एक स्थिति से दूसरी स्थिति में अर्थात विकसित स्थिति की ओर गतिशील है। सृष्टि में हर एक वस्तु, "वास्तविकता" नित्य वर्तमान है। सृष्टि की हर एक वस्तु प्रकाशमान है। सृष्टि की हर एक इकाई/वास्तविकता रुप, गुण, स्वभाव-धर्म पूर्वक स्पष्ट है। मानव ही हर वस्तु/वास्तविकता को देखने, पहचानने, समझने में सक्षम है। सृष्टि में हर एक वस्तु प्रयोजन सहित है। मानव सृष्टि की हर एक वस्तु के प्रयोजन को विवेक सम्मत विज्ञान के द्वारा जान समझ कर, प्रयोजन के अर्थ में प्रयोग करके उसकी चक्रीय व्यवस्था एवं आवर्तनशीलता को बनाए रखकर सदैव अभावमुक्त होकर निरन्तर सुखी व समृद्ध होता है।

निरन्तर सुख/विश्राम की प्रप्ति ही हर एक मानव का चरम लक्ष्य है। इस धरती का हर एक मानव निरन्तर सुख की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयासरत एवं अग्रसर है। सृष्टि के हर एक परमाणु में सम्पूर्ण सृष्टि का बीज समाया है। सृष्टि में हर एक अपने गंतव्य को प्राप्त करके ही संतुष्ट व सुखी होता है, यानि विश्राम की स्थिति को प्राप्त करता है। सृष्टि के हर एक परमाणु में सम्पूर्ण सृष्टि का डिजाइन मौजूद है। सृष्टि की हर एक वस्तु, सभी इकाइयों के साथ सहयोग करते हुए "संगीतमयता" में प्रकृति के विकास क्रम को सुचारु रुपसे गतिशील करके मानव जाति की "जागृति" के लिए ही अनवरत प्रयासरत है।

सृष्टि की समस्त इकाईयाँ एक दूसरे की पूरक व सहयोगी हैं। सृष्टि में समस्त इकाईयाँ साथ-साथ हैं। सृष्टि की समस्त इकाईयाँ "सहअस्तित्व" में हैं। सृष्टि की सभी इकाईयाँ एक स्थिति से दूसरी स्थिति अर्थात उन्नत स्थिति की ओर अग्रसर हैं। सृष्टि में सभी इकाईयाँ परस्परता में एक दूसरे की सहयोगी एवं पूरक हैं। सृष्टि में "प्रतिद्वंदिता" नहीं है; सृष्टि में "प्रतिस्पर्धा" नहीं है; सृष्टि में "संघर्ष" नहीं है। प्रकृति में विकास-क्रम, विकास है। मानव में

जागृति-क्रम, जागृति है। सृष्टि में एक कण भी कम नहीं होता; सृष्टि में कुछ भी मरता नहीं है। सृष्टि में हर एक परमाणु रचना-विरचना व चक्रीय व्यवस्था में है।

परमाणु से रचित एवं विकसित सृष्टि की सर्वोच्च विकसित भौतिक इकाई यानि मानव शरीर में रचना विरचना एवं चक्र है। भौतिक परमाणु से सर्वोच्च विकसित एवं सर्वश्रेष्ठ इकाई "गठनपूर्ण परमाणु" नित्य वर्तमान हैं। गठनपूर्ण परमाणु ही "जीवन" है। "जीवन" मैं स्वयं ही हूँ। जीवन नित्य वर्तमान है। जीवन सदा सदा वर्तमान है। जीवन कभी मरता नहीं; अक्षम शरीर से सक्षम शरीर में मुंतकिल होता है। पुनर्जन्म नहीं होता है।

मैं "स्वयं" ही जीवन हूँ। मैं नित्य वर्तमान हूँ। शरीर परिवर्तन सृष्टि का नियम है। नियम ही शाश्वत सत्य है। उपरोक्त एवं सृष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान बाबाजी ने मानव जाति को प्रमाण सहित उपलब्ध करा दिया है। सम्पूर्ण में, मानव ही सम्पूर्ण का ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी है। सम्पूर्ण को जानने, समझने की योग्यता पात्रता मानव में ही है। सम्पूर्ण को जानने के लिए मानव अनवरत प्रयासरत है। सम्पूर्ण को जानना ही मानव यात्रा का गंतव्य है। सम्पूर्ण के बिना संतुष्टि नहीं है। सम्पूर्ण को जान कर ही मानव सम्पूर्ण से अपने सम्बन्ध और अन्तर्सम्बन्धों का निर्वाह करता है। सम्पूर्ण से सम्बन्धों का निर्वाह ही "सहअस्तित्व" अर्थात "जागृति" है। "सहअस्तित्व" ही नियम है। सम्पूर्ण को समझकर और सम्पूर्ण को जीकर ही मानव "सर्वशुभ" को प्रमाणित करता है। "सर्वशुभ" में ही सम्पूर्ण का शुभ है।

श्रद्धेय बाबाजी के अकल्पनीय एवं अद्भुत प्रयासों ने इस धरती पर मानव के निरन्तर सुख, समृद्धि अर्थात मानव जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति को सभी मानव के लिए सम्भव कर दिया है। सृष्टि दर्शन ही सृष्टि "ज्ञान" है। सृष्टि "ज्ञान" ही संतुष्टि है। "संतुष्टि" ही सुख है। सुख ही "विश्राम" है। विश्राम ही "निरन्तर सुख" है। निरन्तर सुख ही "चरम लक्ष्य" है। इस से कम में "सुख" नहीं है। मानव के समस्त प्रयास निरन्तर सुख की प्राप्ति के लिए ही हैं।

"स्वयं" में सम्पूर्ण को समा लूँ, सम्पूर्ण को जान लूँ; ऐसी इच्छा है। यात्रा और प्रयास निरन्तर जारी है। वर्तमान शरीर यात्रा में मेरा इतने महान, नियति सहज और विशाल कार्य में सहभागी बनना "परम सौभाग्य" से कम नहीं है।

श्रद्धेय बाबाजी के प्रति कृतज्ञता के साथ पिछले सभी लोगों के प्रति कृतज्ञता एवं आभार व्यक्त करता हूँ; जिन्होंने मुझे यहाँ तक की यात्रा में मार्गदर्शन व सहयोग किया है।

सधन्यवाद

"इति सिद्ध्म् "

अमीर उल हक

अमरोहा

बाबा

बाबा से पहली मुलाक़ात बिजनौर के सम्मेलन में हुई थी। ठंड थी; अंधेरा हो गया था। बाबा चारपाई में रज़ाई ओढ़ कर आधे लेटे हुए बैठे थे। पवन और मैं उनके सामने बैठ गए। कमरे में एक मोमबत्ती का मद्धिम सा उजाला था। बाबा का चेहरा साफ़ दिखाई दे रहा था। उन्होने हम दोनों से हमारी पढ़ाई के बारे में जानना चाहा और पूछा क्या हम उससे संतुष्ट थे? हम दोनों ने कहा कि हम अपनी अपनी पढ़ाई से बिल्कुल संतुष्ट नहीं थे।

इस परिचय के तुरंत बाद उन्होने एक वाक्य कहा, "सत्ता में संपृक्त इकाई।" फिर संपृक्त का अर्थ समझाया: डूबा, भीगा और घिरा। "सत्ता का मतलब क्या है बाबा?" मैंने पूछा। बाबा का उत्तर आज भी याद है। उन्होने अपने एक हाथ के इशारे से अपने और मेरे बीच की खाली जगह की ओर इशारा कर कहा, "ये जो हमारे बीच की दूरी है, ये खाली जगह, इसी को सत्ता कहते हैं। ये सत्ता हर इकाई के बाहर और अंदर दोनों जगह है। हम इसमें संपृक्त हैं- इससे घिरे हैं, इसमें डूबे हैं और इसमें भीगे हैं- जैसे रुई तेल में भीगी होती है...इसी से हमारी पहचान है, इसी से हमें ऊर्जा मिलती है और इसी कारण हम एक दूसरे से और हर इकाई से परस्पर जुड़े हैं।"

बाबा को जो लोग जानते हैं, उनके लिए यह कोई नयी बात नहीं; वे जानते हैं कि बाबा ऐसा हमेशा कहते थे। लेकिन मेरे जीवन की यह एक महत्वपूर्ण घटना है। बाबा ने हाथ के इशारे से सत्ता की ओर इशारा किया तो मुझे वह प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। बहुत थोड़े समय के लिए ही सही, शायद आधा मिनट ही हो, पर उतनी ही देर में मेरे अंदर कुछ घटा। मैंने देखा, वह खाली स्थान, वह शून्य, बहता हुआ उस कमरे की हर चीज़ को एक साथ जोड़ता हुआ चल रहा है, दीवारें, चारपाई, मेज़, रज़ाई, मुझे, पवन को, बाबा को, सब को एक करता हुआ। बाबा बोलते जा रहे थे, और मुझे लग रहा था, मुझे उस ईश्वर का दर्शन हुआ, यानि वह जो कण कण में व्याप्त है। वह ईश्वर जिसकी बात अभी तक सुनी थी, पढ़ी थी, पल भर ही सही, उसकी एक झलक मुझे दिखी।

बाबा ने उसी दिन तय किया कि वे मसूरी आएंगे, और "सिद्ध संस्था' देखेंगे। वे आए भी और हमारे घर पर भी ठहरे। उनके साथ हमारा एक बेहद सहज और आत्मीय रिश्ता बन गया, जो हमें उनके पास बार बार खींच कर ले आता था। इसके बाद "सिद्ध" में जीवन विद्या शिविरों का सिलसिला शुरू हुआ। साल में तीन चार शिविर लगातार होते थे और हर शिविर में कुछ नया समझ में आता था; एक प्यासे को पानी मिल जाने के बाद की जैसी तृप्ति होती है, ठीक वैसा ही हर शिविर के बाद मुझे लगता था।

लेकिन बाबा के साथ जो दिन पवन और मैंने अमरकंटक में गुज़ारे, वे सबसे अलग थे। बाबा चारपाई पर तकिया के सहारे बैठे बैठे हम दोनों से, "कहाँ पहुँचे?" वाले सवाल से बात शुरू करते। कैसे समय बीत जाता, पता ही नहीं चलता। बीच बीच में अम्बा दीदी स्वादिष्ट नाश्ता बनाकर भेजती रहती और बाबा बड़े स्नेह से हमारे साथ बैठ कर खाते। मुझे याद नहीं पड़ता कि इतना लाड़, इतना प्यार और इतनी ख़ातिरदारी, मुझे ना तो कभी इससे पहले कभी मिली थी और ना आज तक मिली है।

मध्यस्थ दर्शन की अभी समझ भी ठीक से नहीं बन पायी थी, लेकिन मैंने अति- उत्साह के कारण पौण्डिचेरी के औरोबिंदो आश्रम द्वारा संचालित भारतीय मनोविज्ञान की कोंफरेंस में भाग लेने का मन बना लिया। बाबा से मार्गदर्शन लिया, और पौण्डिचेरी जाकर, मध्यस्थ दर्शन पर आधारित 'लर्निंग टू लिव' नाम का पेपर भी पढ़ डाला।

वहाँ भाग लेने के बाद कई बातें समझ में आयीं। भले ही उस आयोजन का नाम 'भारतीय मनोविज्ञान' रखा गया था, लेकिन वहाँ भारतीय मनोविज्ञान या दर्शन की कोई बात नहीं हो रही थी। जब श्री औरोबिंदो जैसे प्रख्यात चिंतक के आश्रमवासी ही उसके संयोजक थे, तो ऐसा होना स्वाभाविक था; कि श्री औरोबिंदो के मनोविज्ञान पर आधारित शोध को ही पेश करने वाले को पर्याप्त समय मिल रहा था; अन्य विचारकों या मतामत को समय या स्थान नहीं के बराबर दिया जा रहा था।

परिणाम जो भी हुआ हो, लेकिन इस कारण बाबा से खुलकर कई प्रकार के प्रश्न करने का सुअवसर मिला। और इस दौरान कई बार, "आगे पाठ, पीछे सपाट" वाली बाबा की डांट भी सुनने को मिली। उन दिनों बाबा मुझे 'अणु' और पवन को 'पावन' बुलाते थे। बाबा मुझसे हमेशा कहते थे कि मैं नर-नारी समानता की बात अधिक करती हूँ; शायद इसीलिए वे मुझे सुनीता पाठक के साथ मिलकर किसी विश्वविद्यालय में नर-नारी समानता पर शोध करने का सुझाव भी देते थे। लेकिन इसका संयोग नहीं बन पाया। हम जब भी मिलते वे मुझसे कहते, "क्यो री अणु, तुम अभी भी नर-नारी समानता की ही बात पर अटकी हो?" और ज़ोर से ठहाका मारकर हँसते। मैं कहती, "नहीं बाबा, अब समझ गयी हूँ; जीवन न नर है और ना नारी है। जीवन सिर्फ़ एक गठन पूर्ण परमाणु है।" फिर भी बाबा हँसते रहते।

अमरकंटक की एक घटना मुझे आज भी याद है। ठंड के दिन थे। दोपहर का खाना खाने के बाद, धर्मशाला के बरामदे में बाबा और माताजी कुर्सी में बैठ कर धूप सेक रहे थे। मैं माताजी के पास ही बैठी थी। अक्सर जैसा ठंड के मौसम में होता है, धूप थोड़ी आगे सरकती जा रही थी। बाबा ने माताजी से कहा, "महाराजजी, कुर्सी को थोड़ा आगे कर लीजिये।" माताजी, संकोचवश, बहुत धीमे स्वर में बोलीं, "अपने आप ये इतने बड़े महाराजजी हैं, और मुझे महाराजजी बुला रहे हैं।"

बाबा ने सुन लिया। और बोले, "मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूँ। मैं तीन कारणों से इनका सम्मान करता हूँ। पहला कारण: जब मैंने घर बार छोड़कर साधना के लिए अमरकंटक आने का निर्णय लिया तो इन्होनें भी मेरे साथ आने का निश्चय किया। मैंने समझाया कि इनको अपने घर में बहुत आराम मिल रहा था, मेरे साथ तकलीफ़ उठानी होगी; लेकिन वह सब छोड़कर मेरे साथ चल पड़ीं। मैं इसलिए इनका सम्मान करता हूँ।

दूसरा कारण: ये बहुत बहादुर हैं। मैं साधना के लिए घने जंगल की गुफ़ा में जाता था। एक बार लोगों ने डराया कि जंगल में बाघ के हमले होने का ख़तरा है। इन्होंने कहा कि वे भी मेरे साथ जाएंगी, क्योंकि बाघ पहले औरतों को खाता है। इसलिए मैं इनका सम्मान करता हूँ।

और तीसरा कारण: मैं अपनी साधना में लगा रहता; और घर चलाने की, बच्चों के खाने की सारी व्यवस्था की ज़िम्मेदारी, इनको अकेले ही उठानी पड़ी। कभी-कभी तो दुकान से खाने का ज़रूरी समान, मांगकर भी लाना

पड़ता था। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि इन्होने मुझसे एक दिन भी कोई शिकायत नहीं की। मैं इसलिए इनका इतना सम्मान करता हूँ।"

बाबा के साथ बिताए समय की ऐसी ना जाने कितनी बातें याद आती हैं। यहाँ मैंने कुछ अंतरंग प्रसंग लिखे हैं, जो मुझे बहुत प्रिय हैं। इतने दिनों तक बाबा का स्नेह भरा सान्निध्य मुझे मिल पाया, बस इस एक बात को सोचकर मेरा मन कृतज्ञता से भर उठता है। साथ में एक मलाल भी है कि मैं अध्ययन में आगे नहीं बढ़ पायी। बाबा ने एक बार मुझसे कहा था, "मैं तो तुझे बहुत बहादुर समझता था अणु, पर तू तो बड़ी लुंज-पुंज निकली रे।"

सही कहा था आपने बाबा, मैं उतना नहीं कर पायी जितना मैंने सोचा था। चूक गई। लेकिन मैंने केवल आपको ही गुरु माना है बाबा, तो अगले जन्म में आपके साथ बहादुरी से जमकर अध्ययन कर, समझदार बनूँगी। इस बात का मुझे विश्वास है।

अनुराधा
मसूरी
दिसंबर 2016

ज़िम्मेदारी का अहसास

हम अपने शहर में बहुत से मुद्दों में उलझे थे, जिनका जवाब हमें नहीं मिल रहा था - जैसे परमाणु, अल्लाह, शैतान, भूत-प्रेत, विवेक, अनन्त अस्तित्व का आपस में क्या सम्बन्ध है। मरने के बाद और पैदा होने से पहले मानव की क्या स्थिति रहती है? आदर्शवाद और पदार्थवाद के बीच में स्थिति त्रिशंकु जैसी बनी हुई थी। कई राजनैतिक, अध्यात्मिक, आर्थिक और सामाजिक मुद्दों पर बहुत खोपड़ पच्चीसी की, मगर कोई संतोषजनक उत्तर की प्राप्ति नहीं हुई।

इसी ऊहापोह के चलते मध्यस्थ दर्शन से हमारा परिचय श्री अरुण कुमार जी के द्वारा हुआ था। सन् 1999 के आसपास से उनसे मेरा परिचय था; 4- 5 साल तक उनका साथ रहा। उनके यहाँ मैं कंप्यूटर की सेवाएँ देता था। बीच में वो मौलाना महमूद मदनी के साथ कुछ राजनैतिक गतिविधियों में लगे रहे। फिर 2011 में उनसे मेरी मुलाक़ात मेरी दुकान पर हुई। कोई फोटोस्टेट के काम से आये थे। मैंने उनसे जिद करके पूछा कि कहाँ थे इतने दिन? फिर उन्होंने कुछ बताया कि अग्रहार नागराज नाम के व्यक्ति हैं, जो परमाणु की बात करते हैं। मुझे जिज्ञासा हुई। मैंने इस बात का ज़िक्र अमरोहा के मेरे मित्रों से किया। उन्होंने भी जिज्ञासावश उनसे पूरी तफ़सील से बात की। वो रोज़ाना शाम को आते थे और 7 से 11 बजे तक रहते थे। उनके द्वारा ही सर्वप्रथम हमें मध्यस्थ दर्शन की सूचना प्राप्त हुई। इसके लिए अमरोहा के मेरे मित्र और परिवार सदैव उनके एहसानमंद रहते हैं।

बाबाजी से हमारी पहली मुलाक़ात कानपुर में सर्वधर्म सम्मेलन में हुई। वो किसी राजनैतिक व्यक्ति से बात कर रहे थे। अरुणजी ने हमारा परिचय बाबाजी से करवाया। पहली निगाह में जो स्थिरता उनमें हमने देखी, वो

काबिले गौर थी। वो जिस राजनीतिक नेता से बात कर रहे थे, उनका कहना था कि हम वेदों को पढ़े हैं। तो बाबाजी ने मजबूती से जवाब दिया कि आप तो संघर्ष की बात करते हो। संघर्ष किससे? अपने जैसे ही आदमी के खिलाफ़? अरे भाई आपने वेद पढ़े हैं, मुझे वेद याद हैं। ऐसा सुनकर वह व्यक्ति निरुत्तर हो गया। यह पहला अवसर था जब मैंने किसी व्यक्ति को इतनी बेबाकी से मानव के प्रति प्रेम की भावना को मजबूती के साथ महसूस किया। समुदाय चेतना का लेशमात्र भी प्रभाव नहीं था।

दूसरी मर्तबा, अछोटी में उनसे मिलने का मौक़ा मिला। उस समय भी सम्मेलन का मौक़ा था। वहाँ भी हम अरुण कुमारजी के साथ बाबाजी से मिले। उस समय बाबाजी ने हमसे पूछा कि उलेमा को क्या यह प्रस्ताव जमेगा। मैंने कहा, 'जमेगा; मगर समय लगेगा।'

तीसरी बार बाबाजी के जन्म दिन के मौके पर सपरिवार अमरकंटक जाना हुआ; तो उन्होंने पूछा कि कैसे आना हुआ? यानि आने का प्रयोजन क्या है? मैंने कहा कि यह समझना था कि अध्ययन के प्रति निष्ठा कैसे उत्पन्न हो? आपने फ़रमाया कि सर्वशुभ के लिए अध्ययन में उतरेंगे; तो निष्ठा पैदा होगी।

मैंने पहली बार अपने जीवन में ऐसे व्यक्ति को देखा, जिसके पास अस्तित्व के हर प्रश्न का उत्तर है। बस कल्पनाशीलता को दौड़ाने की आवश्यकता है और अपनी पूर्व मान्यताओं को जाँचने की ज़रूरत है।

बाबाजी के दर्शन को जो प्रबोधक जिज्ञासुओं के समक्ष रखते हैं; उनसे मिलकर भी बाबाजी के सान्निध्य का अहसास होता है। श्री रण सिंह आर्य, श्री साधन भट्टाचार्य, श्री गणेश बागडिया, श्री योगेश शास्त्री, श्री सुरेन्द्र पाठक, श्री अजय दायमा, श्री सोमदेव त्यागी, सुवर्णा दीदी इत्यादि के आचरण से बाबाजी की याद ताज़ा होती रहती है और एक ज़िम्मेदारी का अहसास बना रहता है कि हमें सही को समझना जीना है सर्वशुभ के अर्थ में। अमरोहा में मेरे मित्र जिन्होंने मेरे कहने मात्र से मध्यस्थ दर्शन के शिविर मेरे साथ किये, समझने के लिए ज़ोर लगाया और सहयोगी भाव बनाये रखा; उनका भी मैं आभारी हूँ। इनमें श्री अरशद फ़ारूकी, श्री अमीरुल हक, श्री नाहिद खां, श्री बाबर अब्बासी, श्री कलीम फ़ारूकी, मौलाना उमैर फ़ारूकी, शुऐब गौसी, रूमी फ़ारूकी, ज़ुहैब फ़ारूकी, अरीब फ़ारूकी, हकीम जमशेद नवाज़, स्वर्गीय श्री हकीम तनवीर, श्री फ़िरोज़ खां, श्री आकाश चौधरी, श्री हरिओम वर्मा, श्री नवाज़िश नकवी, श्री सलीम खानकाही, श्री मुराद अली खां, श्री साजिद रऊफ एडवोकेट, पंडित चन्द्रपाल शर्मा, श्री नदीम शहनशाह, श्री गुलशेर, डा० नसीम, इत्यादि। आज भी हम लोग गोष्ठियां करते हैं; और समझने का प्रयास करते हैं। इन मित्रों के साथ, बाबाजी से जुड़े संस्मरण का ज़िक्र चलता रहता है; और इंसानियत के लिए उनके अनुसंधान को समझकर उनके प्रति कृतज्ञता के भाव पर ध्यान जाता है।

डा० ज़िया उल बद्र

मोहल्ला: मजापोता. अमरोहा

बाबाजी से मुलाकात और प्रभाव

सभी बच्चों की तरह, एक अच्छा इंसान 'बनने' की कामना बचपन से ही रही है। यह कुछ छुपी हुई-सी इच्छा बचपन में सबकी बात मानकर, मदद करके छलकती थी; तो बड़े होने पर अच्छा 'बनने' के मौजूद तरीकों में गोते लगाकर, खुद को शरीर मानकर चलने के क्रम में, मर्यादा निभाते हुए जो भी चखा, वो जल्द ही फीका लगने लगता था। जब जीवन अपना प्रभाव दिखाता था तो जप, ध्यान, भजन, विपश्यना, रेकी, पूर्व जन्मों का स्मरण के अलावा संतों की किताबें, भगवत गीता या उपनिषद पढने का प्रयास वाला भाग हावी होता था। पढ़ कर समझने का अभ्यास न होने के कारण किसी भी किताब को पूरा तो नहीं पढ़ पाती थी, परन्तु थोड-सा पढ़ने पर ही इससे जो मुझे चाहिए वह नहीं मिलेगा; जल्द ही भास जाता था। कुल मिलाकर इन दो मानसिकताओं की प्रतिस्पर्धा में अपना फ़जीता तो बनता ही था। इसके साथ-साथ घूम-घूम कर फिर उन्ही प्रयासों में और तन्मयता से लगना होता था; यह मानकर कि शायद अपने प्रयास में ही कुछ कमी रह गई होगी। इन सबका उपकार तो हुआ, लेकिन थकान और मायूसी भी हुई। क्या चाहिए था, यह सटीकता से तय नहीं हो पाया था; लेकिन क्या नहीं चाहिए था, इसका एहसास हमेशा था और बेचैनी भी। जीकर समझने की तरफ़ झुकाव ज़्यादा था और अभी तक एक भी व्यक्ति नहीं मिला था जिसके जीने से मैं 'निरंतर' प्रेरित होती। अब तो बस एक ऐसे इंसान की तलाश थी, जो किसी तरह दिखा दे (केवल किताबों में नहीं, जी कर भी) कि सही-सही जीने का क्या मतलब है? सही का पैमाना क्या है? जीने में कैसा दिखेगा? जो खुद के और हज़ारों अन्य बच्चों के पास जा पाए। इसका भाषाकरण मैं सिर्फ़ अभी कर पा रही हूँ, तब केवल एहसास था और उसके साथ तलाश।

इस तलाश के दौर में ही हुई बाबा जी से पहली मुलाकात – सिद्ध संस्थान में। बाबाजी को 3-4 दिन सुना; उन्होंने जो भी बोला, कुछ समझ नहीं आया था। सिर्फ़ एक शब्द, 'संगीतमयता', अन्दर तक उतरा था। बचपन की कामना को पूरा होने का अवसर सा लगा। अब कुछ ठोस मिलेगा, इसी आशा की ख़ुशी में मैं कितनी भी लम्बी दौड़ दौड़ने के लिए तैयार थी। इसी का तो इंतज़ार था।

इस समझने के क्रम में हुई दर्शन से मुलाकात और फिर दोस्ती। इसके साथ-साथ अच्छा 'बनने' से अच्छा 'होने' का फ़र्क और इस यात्रा का आरंभ। पिछले १२-१४ वर्षों में समझने के क्रम में कोई चमत्कार, दिल की घंटी, दिव्य रौशनी, आनंद ही आनंद, (जो काफ़ी किताबों या फिल्मों में लिखा/दिखाया जाता है), जैसा कुछ नहीं हुआ। बल्कि जिस नीव पर खड़ी थी, उसका हिलना डुलना से लेकर ध्वस्त होना भी हुआ; और यह क्रम अब भी जारी है। पहले और अब में फर्क इतना है कि अब मानी हुई नीव के हिलने से खुद का ज्यादा हिलना नहीं होता; और असली नीव क्या है, यह काफ़ी साफ़ दिख जाता है। इस पर कदम रखने से कभी घबराहट भी होती है; क्योंकि पुरानी सोच का बरसों का अभ्यास, चाहे भुलावे वश, पर लगता तो सुखदायी था।

इस अध्ययन क्रम में कई बड़े उपकार हुए हैं। बाबाजी द्वारा प्रस्तावित सूत्रों की झलक 'दिखना' एवं अपने में घर करने का कार्यक्रम शुरू होना, एक बहुत बड़ा उपकार। इसके फलस्वरूप मेरे विचार, मानसिकता और व्यक्त करने की पात्रता दर्शन अनुरूप धीरे धीरे बढ़ना, एक और उपकार। तर्क अब गोल गोल घूम कर व्यक्तिगत सोच को

पुष्ट करने वाला गुंजल-युक्त वेताल नहीं लगता; बल्कि तर्क का सम्बन्ध अब तात्विकता से जुड़ा दिखता है, जो सीधा भी है और गोल भी, लेकिन बिना गुंजल के; क्योंकि अस्तित्व में केवल व्यवस्था ही है, गुंजले नहीं। इससे स्वयं में तर्क की योग्यता बढ़ी है और अब गुंजल वाले प्रचलित अधपके तर्क में छुपी तात्विकता को बिना ज्यादा उलझे साफ़ देख पाती हूँ- यह तीसरा उपकार। चौथा, अब अपने में बने चित्रण का तथा उसके पीछे छिपी मानसिकता का ज्यादा विचलित हुए बिना आंकलन पहले से ज्यादा इमानदारी से कर पाती हूँ। अपनी मूल चाहना पर ध्यान देते हुए अब अपने विचार, भाव भंगिमा, भाषा पर भी ध्यान जाने लगा है। और दूसरे की भाषा, भाव भंगिमा में निहित मूल चाहना पर। इससे विश्वास, कि हर इंसान मेरे जैसा ही सुखधर्मी है, का मूल्य अपने में पहले से ज्यादा टिका दिखता है। सम्मान और विश्वास मूल्य के ट्रेलर अब कम अंतराल में अपने में प्रकशित होते हैं; और फलस्वरूप इससे संबंधों में तालमेल अब सिर्फ अभ्यासवश झेल कर या मन को फुसला कर नहीं बल्कि समझ के साथ होता है। अब घटना और परिस्थिति में उलझने के बजाय, थोड़े से प्रयास से ही, ध्यान मूल्यों और निहित चाहना पर जाता है। इससे संबंधों में दूसरों के प्रति नाराज़गी या बहुत ज्यादा चिपकाव वाला भाग अब काफ़ी संतुलित हो गया है।

कार्य के स्तर पर अब तर समाज में प्रचलित तरीकों में ही कुछ अच्छे कार्यों में गोते लगाने और फिर न टिकने पर वापिस एक नए की तलाश के चक्कर से छूटना हुआ है। इन जीने के कार्यक्रमों का आंकलन और समीक्षा अब अच्छा 'लगने' पर टिके होने से हटकर, 'अच्छा क्या है' पर टिकता है। इससे गलत और सही का अनुमान सटीक होने लगा है, ओर अपनी भागीदारी कहाँ और कैसे होगी; यह तय होने लगा है। इसके अनुरूप कार्यक्रम क्या होगा, इसकी तैयारी भी शुरू होती दिखती है। और एक उपकार यह भी हुआ है कि अब कार्य या कोई चीज़ खरीदने के समय, उसका प्रयोजन छलांग लगाकर सामने आ जाता है; जो अच्छा लगने वाले भाग को अपने सही स्थान पर खड़ा कर देता है। ऊट-पटांग कार्य और खरीददारी की तरफ अब रुझान पहले से काफ़ी कम हुआ है। इससे जीने में काफ़ी राहत भी है और उत्साह भी; कि सही कार्य और सही उपयोग से कम अब चलता ही नहीं है। केवल संवेदनाओ द्वारा आवेशित गति को सुख मानकर जीने वाला भाग कभी कभी नीरसता जैसा भासता है; लेकिन नए का टिकना अभी निर्माण स्थिति में है, तो थोडा नए पुराने का नृत्य तो स्वाभाविक ही है। मुख्य बात यह है कि अब दोनों में अंतर दिखता है और नए को पुष्ट करने की चाहना और निष्ठा, दोनों पहले से ज्यादा बलवती होती दिखती है। अब कभी कभी पुराने अभ्यास को भी घास डालने में इतनी हिचकिचाहट नहीं होती; क्योंकि सही पर टिकने का विश्वास गहरा हो गया है।

कुल मिलाकर अपना जीना पहले से बढ़िया हुआ है, ऐसा निश्चय के साथ कह सकती हूँ। क्योंकि सम्पूर्णता की समझ का टिकना अभी बाकी है, इसलिए सुख-दुःख अब भी साथी तो हैं ही। इनके तहत हिलना डुलना भी होता रहता है, लेकिन उत्सव इसका है कि निर्णय अब एक या दो पहलु को लेकर नहीं, प्रयास पूर्वक ही सही लेकिन जितनी सम्पूर्णता की समझ अब तक बनी है, उसको लेकर ही होते हैं। जीना अब एक बुलबुले से दूसरे बुलबुले पर छलांग लगाकर नहीं, बल्कि समझ के ठोस धरातल पर पहले से ज्यादा टिका दिखता है। इस कच्ची-पक्की समझ का रस जीने में अपनी मिठास को चखाते हुए पूरा समझने के लिए प्रोत्साहन की थपकी तो देता ही है; साथ साथ इसमें निष्ठा सहित चेष्टा और प्रयासपूर्वक लगे रहने के लिए नित्य ठुड्डा भी मारता है। जीवन में इस

ठुड्डा मारने वाले भाग को दर्शन द्वारा पुष्ट होने को मैं बाबाजी का सबसे बड़ा उपकार मानती हूँ। यह मुझे सही रास्ते पर बने रहने के लिए सतर्क व सजग रखता है।

कृतज्ञता सहित,

- अच्छा इंसान 'बनने' और 'होने' में फ़र्क दिखाने के लिए,
- अच्छा इंसान हो सकते हैं, एक ही जनम में, ऐसा उत्साह जगाने के लिए,
- हर इंसान सही समझना चाहता है इसलिए समझेगा ही,
- सच को समझ कर जीना और समझाना होता ही है और इसकी परंपरा हो सकती है,
- भूमि स्वर्ग और इंसान देवता हो सकता है;
- यह सिर्फ़ एक आदर्शवादी संकल्पना नहीं बल्कि एक वास्तविकता हो सकती है

ऐसा विश्वास होने के लिए, बाबाजी को शत्-शत् प्रणाम।

अध्ययन क्रम में

रेणु भाटिया

मैसूर

जागृति के प्रणेता

बाबाजी (आदरणीय ए.नागराज) से मेरी पहली मुलाकात अमरकंटक में हुई। उस समय मेरी उम्र लगभग 57 वर्ष थी। सभी भौतिक सफ़लताओं के बाद भी मन में तनाव परेशानी तथा अपने अधूरेपन के अहसास के साथ मैं बाबाजी से मिलने गया था। श्री सोम देव त्यागी से तथा जीवन विद्या की बातों से मैं प्रभावित था। सहज ही जीवन विद्या के प्रणेता बाबाजी से मिलने की मेरी जिज्ञासा थी। बाबाजी दिखने में जितने सहज थे, उतने ही व्यवहार में सरल थे। मुझसे ऐसी बातें करते थे मानों हम पुराने परिचित हों। उनका आग्रहपूर्वक अपने साथ बैठाकर भोजन कराना तथा बार-बार कहना "कुछ अच्छी बात बताओ", मुझे आज भी याद है। उस समय ऐसा लगता था कि हम अच्छी बात करने में भी समर्थ नहीं थे। हम बाबाजी से ही अच्छी बात करने को कहते थे। फ़िर वो जीवन विद्या समझाने लगते थे। शुरूआत में उनकी बात समझ में नहीं आती थी।

उनके कहने पर मैंने जीवन विद्या के कई शिविर किये। इस दौरान बाबाजी से हमेशा मिलना होता था। जैसे-जैसे मैं शिविर करता गया मेरी समझ में स्पष्टता आती गई। एक प्रसंग मुझे याद आ रहा हैद्य मैं मसूरी में गणेश भाई बागड़िया जी का शिविर कर रहा था। भैया मुझसे बार-बार एक ही प्रश्न पूछ रहे थएे "पशु की तरह जीना चाहते हो या मानव की तरह" हर बार मेरा उत्तर एक ही होता थाए "मानव की तरह"। परन्तु जब उन्होंने इसकी समीक्षा की कि वर्तमान में हम मानव होते हुए भी किस प्रकार जी रहे है तब पता चला कि हमारा जीना

पशु-जैसा ही है। प्रश्न उठा कि आखिर पशु कैसा जीता है? इसे गणेश भाई ने समझाते हुए कहा कि "पशु केवल चार स्तर पर ही जीते है। ये चार स्तर हैं : आहार, निद्रा, भय, मैथुन।"

क्या हम मानव होते हुए भी इन्ही चार स्तरों पर फँसे हुए नहीं हैं? हम मानव इन चारों स्तरों को बहुत फैलाकर जीते हैं, पर मूल जीने के चार ही आधार है। यह बात जैसे ही मुझे समझ में आई मैं स्तब्ध रह गया। अब तक मैं अपने आप को समझदार मानकर जीता था, मेरी यह मान्यता ध्वस्त हो गईं। जैसे-जैसे मैं 'जीवन विद्या' शिविर करता गया, मुझे मेरी गलत मान्यताएँ दिखने लगी। मैं जिसे सही समझता था, जिसे सुख समझता था, जिसे सफलता समझता था, सभी मेरा भ्रम ही निकला।

आदरणीय बाबाजी से मेरा व्यक्तिगत सम्पर्क लगातार बना रहता था। एक रोचक प्रसंग याद आ रहा है। एक बार लम्बे अन्तराल के बाद उनसे मिलने गया। उन्होंने देर से आने का कारण पूछा और अनायास ही मेरे मुहँ से निकल गया कि व्यस्तता के कारण नहीं आ सका। जवाब में उन्होने तुरंत एक सूत्र कहा, "निर्णय लेने की अक्षमता बराबर व्यस्तता"। यह कहकर वे दूसरों के साथ चर्चा में व्यस्त हो गये। यह सूत्र मुझे उस समय समझ नहीं आया था, पर मैंने नोट कर लिया था। कुछ दिनों बाद एक दिन हमारे समाज में एक आवश्यक मीटिंग थी। ठीक उसी दिन रायपुर में बाबाजी का कार्यक्रम भी था। मेरी तीव्र इच्छा बाबाजी के कार्यक्रम में जाने की थी। पर चूंकि मैं समाज के प्रमुख पद पर था, इसलिए मीटिंग में मेरा उपस्थित रहना आवश्यक था। उस समय अचानक मुझे बाबाजी का वो सूत्र याद आया। मुझे अहसास हुआ कि प्रमुख पद स्वीकारने का मेरा निर्णय गलत था। यही मेरी निर्णय लेने की अक्षमता थी। इसके बाद प्रमुख पद की अवधि समाप्त होने पर मैंने फिर से पद में बने रहने के आग्रह को नहीं स्वीकारा। इसी प्रकार कई दिखावे के कार्यक्रम से तथा गैर ज़िम्मेदार दोस्तों से और अनावश्यक मनोरंजन के कार्यक्रमों से मैने अपने को अलग कर लिया। इसके बाद मेरे पास समय ही समय था अपने जीवन को और अधिक विस्तार से समझने के लिए। इस समय मैंने यह भी अनुभव किया कि मैं अनावश्यक तनावों से मुक्त हो रहा हूँ।

ऐसा ही एक और प्रसंग है। एक बार बाबाजी से मिलने मैं और सोम भैया भिलाई गये। यहाँ मिश्रा जी के घर बाबाजी ठहरे थे। हम दोनो पैर दबाते हुए बाबाजी से बातचीत कर रहे थे। उस समय टी.वी. पर भारत-पाकिस्तान का क्रिकेट मैच का प्रसारण चल रहा था। मिश्रा जी की बहू बार-बार आकर बाबाजी को मैच का स्कोर बताया करती थी। मुझसे रहा नहीं गया और मैंने पूछ ही लिया "बाबाजी आप और क्रिकेट?" बाबाजी ने प्रेम से समझाते हुए कहा "मुझे क्रिकेट में कोई रुचि नहीं है। मुझे उस महिला से मैत्री करने में रुचिहै ताकि कभी मैं उसे सही समझा सकूँ। उसकी मान्यता को बिना ठेस पहुँचाये उसकी रुचि में रुचि लूगाँ, तभी तो मैत्री होगी।" आगे समझाते हुए एक सूत्र कहा "दुकान सजी है सजी रहे तभी समझाना बनता है। वर्तमान में पूरे समाज में जो मान्यता परम्परागत बनी है वो बनी रहे उसे आहत न किया जाये, तभी हम अपनी बात समझा सकते है।"

इस प्रसंग का मेरे निजी जीवन में बहुत असर हुआ। मेरे संबंध अपनी पत्नी के साथ उतने मधुर नहीं थे, जितने मैं चाहता था। इस घटना के बाद मैं अपनी पत्नी की रुचि में रुचि लेने लगा और उसकी मान्यताओं को ठेस

न पहुँचे इसका ध्यान रखने लगा। इसका परिणाम यह आया कि पत्नी के साथ मेरे संबंध मधुर होते गये। जीवन में तनाव कम हो गये और घर में खुशी का वातावरण बनने लगा।

एक बार यूँ ही बाबाजी से मैंने कहा "बाबाजी मुझे बहुत गुस्सा आता है। गुस्सा आना तो स्वाभाविक है, गुस्सा न आये क्या ऐसा हो सकता है?" बाबाजी ने सहजता से कहा "क्रोध आता नहीं है हम करते हैं।" फिर एक सूत्र कहा, "स्वयं की अक्षमता का प्रदर्शन ही क्रोध है।" आगे सूत्र को समझाते हुए कहे, "जहाँ हमारी सहन करने की क्षमता समाप्त हो जाती है, वहीं से हमें क्रोध आता है। क्रोध आते ही हम संवेदनहीन हो जाते हैं और विवेक खो देते हैं। हमें अपनी सहनशक्ति बढ़ाना होगा। मैंने पूछा ये कैसे हो सकता है?" बाबाजी ने उत्तर दिया, "जीवन ज्ञान से समझदारी आती है और समझदारी से सहनशक्ति बढ़ती है। हम नासमझ की गलती से प्रभावित नहीं होते हैं, और संयमित रहते हैं।" आगे फिर उन्होंनें एक सूत्र कहा "नासमझ की गलती से अप्रभावित रहना ही मेरी योग्यता है, यही क्षमा है।"

बाबाजी ने तो बहुत सहजता से कह दिया, पर बहुत प्रयास करने पर भी क्रोध आ जाता है, जिसे समझदारी से दूर करने के प्रयास में लगा हूँ। धीरे-धीरे क्रोध कम हो रहा है।

बाबाजी के साथ हुए अनुभव से औरों का भी शुभ हो इसी भाव से लिखा है।

दिनेश राठोड़

रायपुर

कहाँ रहोगी?

मैंने जीवन विद्या का पहला शिविर नवम्बर 2003 में IIIT हैदराबाद में किया। प्रबोधक गणेश बागडिया भैया थे। शिविर उपरांत गणेश भैया ने बाबाजी को फोन कर शिविर संपन्न होने की सूचना दी; जिस पर बाबाजी ने पूछा, "मुखिया (श्री राजीव संगल, निदेशक IIIT) बैठे कि नहीं?" गणेश भैया ने कहा, "मुखिया व उनका पूरा परिवार शिविर में बैठा।" इस पर बाबाजी ने अपनी प्रसन्नता जाहिर की। पहले ही शिविर में मुझे 'वस्तु' के प्रति पूर्ण स्वीकृति हो गई। लगभग डेढ़ वर्ष बाद मेरे गले में गुठली हुई, जिसके निदान के लिए बाबाजी से मिलने पहली बार सपरिवार अमरकंटक जाना हुआ। हम लोग रात 12 बजे घर (धर्मशाला) पहुँचे। वहाँ पर बाबाजी, माताजी व अम्बा दीदी सब हमारे इंतजार में जगे हुए थे। अम्बा दीदी व वर्षा बेटाजी ने हम सबको भोजन करवाया। इस पूरी यात्रा में मैं बाबाजी, माताजी व पूरे परिवार के स्नेह से अभिभूत होकर हैदराबाद लौटी। साथ ही बीमारी का निदान भी हुआ। शेफाली (गोनू) बेटा जी को आयुर्वेद लेना चाहिए, यह विश्वास भी बाबाजी की आयुर्वेद चिकित्सा को देखकर बना।

शेफाली की आयुर्वेद की पढ़ाई के दौरान एक गर्मी की छुट्टियों में, मैं शेफाली को लेकर अमरकण्टक गई। इस यात्रा का आशय यही था कि शेफाली बाबाजी की आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति को देखे। इस दौरान मैं दर्शन की

पुस्तक पढ़ती रही। बाबाजी को देखकर मुझे लगता कि मैं उनसे दर्शन समझ लूँ, पर पूछने में स्वयं को असमर्थ ही पाती। साधन भैया कहते, "दीदी बाबा के पास खूब बैठो" और मैं कहती, "मैं बैठ कर क्या करूँ? मुझे तो बाबाजी से डर लगता है।" मैं अपनी असमर्थता की पीड़ा को लेकर हैदराबाद लौटी। IIIT हैदराबाद में 10-15 लोग मिलकर हर रविवार को जीवन विद्या पर गोष्ठी करते थे। मैंने उस गोष्ठी में कई बार यह दोहराया, "आप लोग (intellectuals) छुट्टी लेकर बाबाजी के सान्निध्य में अध्ययन करिए। आप लोगों को दर्शन जल्दी समझ में आएगा। तब संसार को मध्यस्थ दर्शन पहुँचाना आसान होगा।"

अप्रैल 2013 में हम लोग IIT (BHU), Varanasi आ गए। यहाँ आना है कि नहीं, इसके लिए बाबाजी से ही पूछा। बाबाजी ने कहा, "वहाँ जाओ।" हैदराबाद के रहन-सहन से बनारस के रहन-सहन को सर्वथा भिन्न पाया। यहाँ का व्यक्ति बहुत आराम में है। खाने-पीने के ठाठ हैं; मौसमी आहार की बहार है। BHU कैम्पस का नैसर्गिक वातावरण किसी स्वर्ग से कम नहीं। साथ ही बनारस की गंदगी किसी नर्क से कम नहीं (गलियों की गंदगी, सोच से बाहर)। यहाँ आने के लगभग 10 माह बाद IIT (BHU) के छात्रों का attendance को लेकर एक बड़ा मुद्दा बना। लगभग 4000 छात्र रात्रि के 12 बजे सड़क पर आ गए। यह हम लोगों के लिए एक अलग ही दृश्य था। यह मुद्दा अध्यापक और स्टाफ की मदद से जल्द सुलझ गया। इसके कुछ माह पश्चात BHU के छात्रों में चुनावों को लेकर झगड़े हो गए। इन झगड़ों को आग देने का काम करने वाली गंदी राजनीति देखी। तब मेरा मन उचट गया। जैसे ही झगड़े शान्त हुए, मैं व राजीव अमरकण्टक गये। मैंने बाबाजी से 'मन उचटने' की बात कही और कहा, "मैं अब बनारस में नहीं रहूँगी।" इस पर बाबाजी ने पूछा, "फिर कहाँ रहोगी? रामेश्वरम में रहोगी? कन्याकुमारी में रहोगी?" बाबाजी को ऐसा पूछते देख मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ कि वर्तमान स्थिति में पूरी धरती गलती व अपराध से भर चुकी है, मुझे अभी तक इतना भी समझ में नहीं आया। मैं चुपचाप बनारस लौट आई। तब से मध्यस्थ दर्शन को गहराई से समझने व जीने में प्रयासरत हूँ। बाबाजी के साथ जब-जब मैंने कुछ पूछा, उनके उत्तर सूत्र रुप में मिले। वे सूत्र आज भी खुल रहे हैं।

बाबाजी साथ ही हैं, यह अहसास बराबर बना ही रहता है। इसी के साथ श्रद्धेय बाबाजी को शत्-शत् नमन।

निशा संगल

आई. आई. टी. (बी. एच. यू.) वाराणसी

बाबाजी का सानिध्य

मैं 2015 में दिवाली के पश्चात बाबाजी की सेवा हेतु अमरकंटक गया था। वहाँ पहले से ही हेमलाल भाई (छत्तीसगढ़), देवांग भाई (गुजरात) सेवा में थे ही और यश्वंत भाई (उस्मानाबाद, महाराष्ट्र) से पहुँचे थे। बाबाजी के परिवार के साथ एक सप्ताह रहने का यह मेरे लिए सौभाग्यशाली अवसर था। परिवार मे हुए स्वागत से मुझे घर के सदस्य जैसे ही लगा। अम्बा दीदीजी की सेवा और श्रम, साधन भैया की लगन और सभी के स्नेहपूर्ण व्यवहार से अपने घर जैसे ही लगा।

बाबाजी उस समय निमोनिया से बीमार थे। वे ज़्यादातर विश्राम ही करते थे; ज़्यादा बातचीत नहीं करते थे। हम बाबाजी से बीच-बीच मे पूछते, "आप ठीक हैं क्या?" उनका बुलंद आवाज मे जवाब आता "मैं बिल्कुल ठीक हूँ, मुझे कुछ नहीं हुआ है।" मैं पहले कभी सेवा किया नहीं था; वहाँ तो मेरा सेवा सीखना ही हुआ। हेमलाल, देवांग और यशवंत भाई के सहयोग से ही कुछ-कुछ कर पाया। अम्बा दीदी की सेवा और बाबाजी के प्रति लगाव से मैं खूब प्रभावित हुआ। उनके व्यवहार से वे बेटी कम और माताजी ज्यादा लगती थीं। बाबाजी उनके साथ छोटे बच्चे जैसे ही लगते थे। दीदी प्रयत्नपूर्वक खिलाना चाहती थीं; बाबाजी नहीं-नहीं करते थे। सेवा करने के लिए तकनीक की आवश्यकता होती है - यह मुझे वहाँ समझ में आया। उनको बिस्तर से उठाना, टॉयलेट बाथरूम लेकर जाना, नहलाना, कपड़े पहनाना, ड्रेसिंग करना, चलनेवाली कुर्सी पर बिठाना, कुर्सी सहित बाबाजी को उठाकर बाहर धूप में बिठाना - यह सारे काम तकनीक से आसान हो जाते थे।

ऐसे तो बाबाजी सोते हुए दिखते थे, पर उन्हे सब पता रहता था। एक दिन जर्मनी से एक महिला आयी थी। हम सब से बातचीत की; पूरा परिसर देखा और जाने लगी। तभी बाबाजी उठे और कहा कि उस महिला को बुलाओ। फ़िर उनसे थोड़ी बात की।

बाबाजी का सान्निध्य खूब प्रेरणादायी रहा। गलती से भी गलत विचार ना आए; ऐसा प्रयास रहता था। सभी सदस्यों का खूब बढ़िया व्यवहार, हँसी मज़ाक, खिलाना-खाना सब कुछ बढ़िया था। बाबाजी का पुराना घर देखा। उनकी वहाँ की यादें सुनी, बाबाजी का खेत देखा, साधना स्थल, संयम स्थल देखा। उनके द्वारा लिखे गए लेख-पत्र देखे। मेरी ज़िंदगी के वह सात दिन खूब यादगार रहे। मैंने सोचा था कि जब भी समय मिलेगा बाबाजी की सेवा में जरूर जाऊँगा; पर आगे यह अवसर नहीं मिला। 5 मार्च 2016 को उनका शरीर शांत हुआ, और फ़िर अंतिम संस्कार में ही जाना हुआ। मानव जाति को जिस अनुभव की रोशनी की आवश्यकता थी, वह उन्होंने उपलब्ध करा दिया। वे हमारे बाबाजी हैं। उनकी योजनाओं को पूरा करने हेतु मेरी आगे की ज़िंदगी ज़िंदगी समर्पित हे। हरि-हर!

सस्नेह नमस्कार,

प्रशांत एम.येवले

(चन्द्रपुर, महाराष्ट्र)

हर व्यक्ति महत्वपूर्ण है

जब से स्मारिका छपने की बात चल रही है और बार-बार कहा जा रहा है कि जिसके पास बाबाजी के जो भी संस्मरण हो वो भेजे जाएँ, लेकिन मैं शांत बैठी थी; क्योंकि मुझे लग रहा था कि ऐसा कुछ शायद मेरे पास नहीं जिसे छपने के लिये भेजा जाये। पर इस बीच में मैं इस बात से अंदर ही अंदर बहुत दुःखी भी थी कि मेरे पास ऐसा कुछ क्यों नहीं है? और मुझे बाबाजी की बहुत याद आ रही थी। फिर अपने ऊपर बहुत अफ़सोस भी हो रहा था कि आखिर मेरे ज़हन में ये बात क्यों नहीं आ पायी कि बाबाजी के पास इस शरीर यात्रा में सीमित समय है।

लेकिन आज मुझे एक संस्मरण याद आ रहा है - मुझे हमेशा अपने मन के किसी कोने में ये बात सताती थी कि सब जैसे गणेश भाई, सोम भाई, साधन भाई, बी.आर. भाई, श्री राम भाई, सभी बाबाजी के पास जाते हैं, चर्चा करते हैं, और तो और बाबाजी इन्हें बुलाते भी हैं कि आओ; पर मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ? क्या मैं कभी इस योग्य बन पाऊँगी कि मुझे भी उनका सान्निध्य मिलेगा, मुझे भी वे बुलायेंगे? ऐसा बहुत कुछ विचारों में चलता ही रहता था।

बात कुछ वर्ष पहले की है। सुबह-सुबह अमरकंटक से सोम भाई का फ़ोन आया। जैसा कि सभी सुबह बाबाजी के साथ चर्चा करते ही हैं; सोम भाई ने मुझसे कहा कि बाबाजी ने कहा है कि वे अग्रवालजी और सुषमा के साथ भोजन करना चाहते हैं, और पूछा, "बोलो कब आओगे? दिन और समय तय करो।" मैं ये दो लाइन सुनकर स्तब्ध ही रह गयी, मैं खुशी से रोऊँ या चिल्लाऊँ - मुझे समझ ही नहीं आ रहा था। मैंने कहा, भैया अभी आ जाती हूँ। तो फिर उन्होंने कहा कि जब बाबाजी अछोटी, रायपुर में आयेंगे, तब के लिये समय और दिन तय किया जा रहा है। मैं बिल्कुल हैरान थी कि ऐसी क्या बात होगी जिसके लिये इतनी तैयारी हो रही है। इस तरह मीना भाभी के यहाँ एक तारीख और दोपहर का भोजन तय किया गया। मेरे अलावा वहाँ सभी में ये उत्सुकता थी कि मेरे श्रीमान जी (तरुण) और मुझे आखिर क्या बात करने बुला रहे हैं बाबाजी?

आखिर वो दिन भी आया। हमें तो बिल्कुल समय से पहले पहुँचना ही था। उस दिन बाबाजी ने मुझे भी वहीं बैठाया; हम दोनों ने और बाबाजी ने भोजन किया। उसके बाद बाबाजी ने मेरे श्रीमान (तरुण) से हाथ जोड़कर कहा कि मैं क्षमा चाहता हूँ। उस दिन हॉस्पिटल में मैं आपसे बात नहीं कर पाया, जो मुझे करनी चाहिए थी। अब मुझे फिर एक बार हैरानी इस बात की हुई कि क्या इस बात के लिये बाबाजी ने हमें बुलाया था? हम तो इस बात को भूल भी चुके थे और इसकी ऐसी आवश्यकता भी नहीं थी। बस फिर हम आ गये। सब ने हमसे पूछा - मीना भाभी ने पूछा, सोम भाई ने पूछा; मैंने, जो हुआ, उसे बताया।

अब आखिर ये घटना क्या थी? बात उस समय की है जब अंजनी भाई को हॉस्पिटल में admit किया गया था। दो-तीन दिन बाद उन्हें थोड़ा ठीक लगा, तो योगेश भाई का मेरे पास फ़ोन आया कि अंजनी भाई की तबियत में कुछ सुधार आया है तो हम उन्हें कुछ surprise देते हैं, उन्हें अच्छा लगेगा। आप बुके और केक लेकर उनके पास जायें। ऐसा उन्होंने मुझसे कहा तो मैंने अंजनी भाई के पुत्र गोपाल को फ़ोन किया कि अगले दिन सुबह-सुबह 6 बजे मैं आऊँगी, और वह सब सामान अंजनी भाई के room में रख देंगे। अगले दिन मैं सुबह-सुबह अपने

श्रीमानजी (तरुण) के साथ हॉस्पिटल पहुँच गयी। मैने गोपाल को बाहर आने के लिए फ़ोन किया, तो इतने में देखा कि अंदर से बाबाजी निकल रहे हैं। उन दिनों बाबाजी आये हुए थे और उस दिन बाबाजी अमरकंटक वापस जाते हुए अंजनी भाई को देखने आये थे। मेरे हाथ में flower और cake था। बाबाजी ने मुझे बस देखा, पर कहा कुछ नहीं। फिर बाबाजी car में बैठे, हम दोनों ने उनके चरण स्पर्श किये। बाबाजी के जाने के बाद हम भी घर आ गये।

बस उस घटना के बाद अमरकंटक से उस दिन मेरे पास फ़ोन आया और जब बाबाजी ने भोजन के बाद ये कहा, "हमसे भूल हुआ, हमें रुकना चाहिए था, बात करना चाहिये था, पूछना चाहिए था;" तो मैं तो आश्चर्यचकित रह गयी। क्योंकि इस सारी घटना में जो एक बात और थी - मुझे मेरे श्रीमानजी का तो नहीं पता पर मेरे मन में एक सेकण्ड के लिये ज़रूर आया था - कि हमने बाबाजी के चरण स्पर्श किये; उन्होंने आशीर्वाद भी नहीं दिया, कुछ कहा भी नहीं, ऐसा क्यों?

पर जो बात है ना कि अनुभव संपन्न व्यक्ति का जीना हमारे लिये दर्शन होता हैं, उनका आचरण उनके लिये दर्शन होता है; और उनके आचरण को जो हम देखते हैं, तो वो प्रेरणा रूप में हमारे लिये दर्शन है। अध्ययन पूर्वक वो प्रेरणा हमारा स्वत्व हो सकता है; और जब ये स्वत्व होगा तो फिर ये हमारा दर्शन भी हो गया। इस तरह ज्ञानावस्था की परम्परा बन सकती है। बाबाजी के आचरण को देख मुझे और भी उनकी कही लाईन याद आने लगी .....

जैसे:- हर व्यक्ति महत्वपूर्ण है। हर मानव अपने महत्व को जानकार ही तृप्त होता है।

सुषमा अग्रवाल

रायपुर (छ.ग.)

बाबा जी के साथ के संस्मरण

जागृत मानव का शरीर भी जागृति को प्रमाणित करता है

पहली भेंट: दिल्ली रेलवे स्टेशन पर जब पहली बार बाबा जी को देखा तो वह नीचे प्लेटफॉर्म से ऊपर सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे। मेरे साथ कंचनवीर थे। सीढ़िया चढ़ चुकने के बाद कंचनवीर ने बाबा जी के कुर्ते के अन्दर हाथ डालकर उनके सीने पर रख दिया। बाबा जी शांत खड़े हो गये। दो मिनट के पश्चात कंचनवीर ने हाथ निकाल लिया। मेरे पूछने पर कंचनवीर ने बताया कि सीढ़ियों पर चढ़ने के कारण जहाँ हम सब के हृदय ज़ोर से धड़क रहे थे वहीं बाबा जी का हृदय बिल्कुल किसी सोये व्यक्ति की तरह सहज धड़क रहा था। तब बाबा जी ने बताया, "जागृत मानव का शरीर भी जागृति को प्रमाणित करता है", यही प्रमाण था बाबा जी की जागृति का, जो प्रत्यक्ष देखने को मिला।

"बाबा जी, मैने नीलगाय का बहुत वध कर रखा है।" बाबा जी ने पूछा कि यह नीलगाय क्या होता है? तब साथ बैठे कुछ साथियों ने बताया कि गाय जैसा एक जानवर होता है जो फसलों को बहुत अधिक नुकसान पहुँचाता है। तब बाबा जी ने कहा, "बेटा, जो व्यवस्था को बिगाड़े वह क्या जानवर, क्या मानव? सब विदा होने लायक हैं"।"

सन् 2007 की 15 जनवरी को बाबा जी के घर में, जो नर्मदा जी मन्दिर के सामने है, बाबा जी से चर्चा में मैंने पूछा "बाबा जी, मेरी समझ में बात आयी या नहीं?" बाबा जी ने कहा, "आयी है तो प्रमाणित करो।" मैंने कहा, "बाबा जी हमारा मूल्यांकन कौन करेगा?" तो कहने लगे, "अभी तो मैं ही करूँगा।" तब मैंने कहा, "कृपया बताइये, मेरी समझ में आया या नहीं।" तब बाबा जी ने कहा, "दर्शन वस्तु के रूप में आपको समझ आ गया, 'शेष विस्तार के लिए पुस्तकों का पठन कर लो।"

तभी मैंने बाबा जी से प्रश्न किया, "बाबा जी लकवा पड़ने पर मानव चल फिर नहीं सकता, न ही आत्महत्या कर सकता है क्योंकि उसका शरीर कार्य नहीं करता, बाबा जी मुझे ऐसी स्थिति स्वीकार नहीं है, क्या ऐसा सोचना ठीक है?" तब बाबा जी ने कहा "आपके साथ ऐसा नहीं होगा, जागृति के पश्चात जीवन मूल्यांकन कर लेता है कि अब यह शरीर नहीं चलेगा और निर्णयपूर्वक शरीर छोड़ देता है।" तब मैंने पूछा, "बाबा जी क्या तब भी शरीर में हृदय और मेधस चलता रहेगा?" इस पर बाबा जी ने कहा कि जीवन के बिना ज़्यादा देर नहीं चलेगा। हृदय और मेधस धीरे-धीरे बन्द हो जायेगा।

मैं अपने गाँव में ग्यारह परिवारों के साथ शाम को प्रतिदिन दो घण्टे और दिन में जिस परिवार में जब-जब आवश्यकता हई तब-तब चर्चा करता रहा। यह क्रम लगभग तीन वर्ष चला। इसी चर्चा में मुझे लगने लगा कि मुझे कोई भी समस्या प्रभावित नहीं करती है और गरीबी से मुक्त महसूस करता हूँ। जितना मेरे पास है वह आवश्यकता से अधिक महसूस होता है। तब मैंने सभी परिवारों की बैठक में कहना शुरू किया कि मैं समाधान समृद्धि पूर्वक जी पा रहा हूँ। सभी साथी मेरी समीक्षा करें। मूल्यांकन में बाबा जी से करा लूंगा। फिर बाबा जी को सम्बोधित करते हुए इस बात को अच्छे से एक कार्ड पर लिखा, "बाबा जी मैं समाधान समृद्धि पूर्वक जी पा रहा हूँ। आपसे अनुरोध

है कि मेरा मूल्यांकन करें।" बाबा जी ने कहा, "मैंने एक फाइल बनायी है, मैं देखूंगा।" तब मैंने कहा, "आप किसी को भेज दें।" तब बाबा जी ने कहा, "तुम्हारा मूल्यांकन करने मैं स्वंय आऊँगा।" उसी दिन दोपहर को अमरकंटक में बाबा जी के घर के हॉल में उनके साथ बैठा था तब साथी व्यवस्था करते हुए कह रहे थे कि महिलाएँ एक ओर, पुरुष दूसरी ओर बैठ जाये। तब बाबा जी मुझसे कहने लगे "अशोक अभी यह लोग स्त्री-पुरुष से भी नहीं उभरे हैं। इस दर्शन की पवित्रता भी बचेगी या नहीं।''

अगले वर्ष मैंने कार्ड पर लिखकर बाबा जी को दिया, "मैं समाधान समृद्धि को प्रमाणित करने का काम कर रहा हूँ और आपको आश्वस्त करता हूँ कि आपके दर्शन की पवित्रता बनी रहेगी, आप आश्वस्त हो सकते हैं।" उसी दिन अमरकटंक बाबा जी के हॉल में बाबा जी ने सबसे पूछा कि किसे-किसे अनुभव हुआ है। फिर बाबा जी ने मुझसे पूछा, "अनुभव हुआ है?" मैंने उत्तर दिया, "जी बाबा जी हुआ है।" तब बाबा जी ने पूछा, "यदि अनुभव हुआ है तो एक प्रश्न का उत्तर दो। अनुभव को अनुभव से ज़्यादा बताया जा सकता है या कम?" मैंने उत्तर दिया, "अनुभव को अनुभव से कम ही बताया जायेगा।" बाबा जी संतुष्ट हुए और बोले, "दोपहर को मेरे पास अकेले आओ।" मैं गया बाबा जी से चर्चा हुई, फिर उन्होंने कहा, "कल सुबह चार बजे मेरे पास आओ।" सुबह ठीक चार बजे मैं बाबा जी के पास गया और चर्चा हुई। बाबा जी बोले, "जो समझा है वह संसार को सर्मिपित करो।''

!! हरि-हर !!

अशोक सिरोही

बिलारी, मुरादाबाद, ऊ०प्र०

The Minimum Beautiful

Chance Encounter

How do you write about a man who came in like a whirlwind and impacted everything you believed in & lived by? All humans live. Some humans define what it is to live. The beauty in what Shri Agrahar Nagraj did was he compelled the rest of us to replicate that definition. He did it by logic, by his easy demeanour, his astounding insight, by the sheer force of his knowledge.

Why do you write about such a person? The purpose of memoirs in human living perhaps serve as an inspiring ideal at best, so we can aspire and achieve what another fellow being has. At the least, it serves to fulfil our need to recollect and retell. We do this, at the risk of idolising that personality. As long as we are aware of that risk, it is one worth taking. Memoirs bring out various facets of a human's personality seen through the lens of various people.

My first encounter with Shri A Nagraj, who I went on to call Babaji (simply because everyone else around me did so), was in Mussoorie, June of 2004. I was 26 yrs old, had quit a good job and was travelling across the country trying to make sense of living. I chanced upon a Jeevan Vidya workshop in English, and while it was underway a banian and dhoti clad man who was being interviewed on camera aroused my curiosity. As he started leaving the room, he suddenly looked me in the eye and said "पहले अपने आजीविका के लिए कुछ देख लेना, उसके बाद इसको करना." I was taken aback. How could he have possibly known my quandary? We hadn't exchanged a word. I was close to the end of my funds, and still perplexed about what to do. I had come to the conclusion that no one in the world, neither the scholars, nor the Universities – no one 'truly' knew anything, or how to 'fix' everything.

A year and a half later, another Jeevan Vidya workshop completed. I was now hooked. While the first one was replete with arguments from my side, in the second, the clouds parted, and I acknowledged that this man had 'figured it all out'. I was in awe of the man behind it. The human endeavour for knowledge had been completed. Here was the 'Grand Unified Theory'. I chanced upon the man responsible for it again in Mussoorie, Sep 2005 during the Jeevan Vidya Sammelan. He was in a small room surrounded by a few dozen people, so I found a tight corner and squeezed myself in. As he continued to talk, and I couldn't really follow his Hindi, I was overcome with an inexplicable sense of regret of not having been able to achieve what he had, and at the

same time a sense of shame at my underlying arrogance, and his remarkable simplicity, in spite of his towering achievement. I felt if I stood up, I would collapse and was ashamed that the others in the room would see me thus. I waited for everyone to leave the room and quietly went up to him and quivering, said "मैं आपको प्रणाम करना चाहता हूँ". He said "वो बात हमको communicate हो चुका है" It was the proverbial case of the camel coming in front of the mountain.

Mutual Trust

And so it was. He challenged what to me was rational, exposing it as a mere belief. Somehow, he just 'knew' things. When I first travelled to Amarkantak in Feb 2006, I was half expecting a shack in the middle of a forest where the sadhana was done. I was surprised to enter a small well lit town and a reasonably furnished house with a telephone and dining table. He had waited until 10 pm so as to have dinner with me and my companion. He was 60 yrs older than I was, and at 88, he could eat as much as I could. And there were no qualms about it. No pretence. His first acceptance of me was that of a friend. Patiently answering questions, no matter how trivial (and I seem naive back then when I view the video recordings of those early sessions today). Slowly guiding us, and prompting us so we could gather the mental courage to envisage his proposal, to see what he had seen, attempt to live what he was living. And it needed courage, since it was so different a tide to the current knowledge, thought, behaviour, work and human society – everything was defined anew. 'यह सब unreal लगता है' – I said to him. He looked me in the eye and said, 'थोड़ी देर के बाद तुम अभी जो कर रहे हो वो unreal लगेगा, यह real लगेगा'. And so it was. Adhyayan had to start with friendship and trust, and that is what he did. A friendship separated by 60 yrs and many miles of knowledge.

The Student

I slowly metamorphosed into being a student. And now, ensconced in trust and affection, came the chiselling, the hammering – in the form of teachings, or drawing attention towards my mental afflictions, my beliefs. He never cast wounds on our material aspects though – food, clothing, shelter, transport was always plentiful around him and he did it in style. There was no idealism in this respect. As long as the understanding (samajh) was in place, everything else would automatically fall in line. To produce and have more than what is needed is Prosperity. And prosperous he was. Dozens of cups of tea and coffee to beat the Amarkantak cold with food aplenty.

When discussing the jeevan kriya during those initial days, I once said, 'यह तर्क में आता है, अभी दिखता तो नहीं'. To which he said, 'देखने के बीच में eyebrow आ गया इसीलिए नहीं दिखता' –

and thus it was. This 'seeing' was to be done inside, not outside. 'I' have to understand 'myself'. We sat for intense 1 hour sessions, 8-10 hours a day. It would be both exhausting and refreshing. A week's session would feel like the journey of many years. Listening to him was like trying to drink water from a fire hose. He would patiently repeat everything that did not penetrate us, breaking into stories and incidents from the past every time he felt we had reached our 'capacity' for listening.

The relationship with him slowly matured, with me accepting him as the guru, the one who knew it all. The acceptance was one of faith, a faith based on the evidence he presented of his knowing and living. I was assured. This proposal was Universal, Liveable and Teachable. There was no mysticism. There were things each one of us thinks we know, things we are prepared to consider as possibilities and things we don't want to even consider as possibilities. He addressed all three. I once took to him the final draft of Section 1 of the Human Values book I had written (with some inputs from Anurag Sahay.). This was based on notes I had taken from Shri Ganesh Bagaria's workshop/shivir (now published as a human values book). This book was then meant for Engineering Students & written at Shri Bagaria's suggestion. Far from appreciating my efforts, he came down on me with a sledgehammer. I accepted his blows but kept questioning the rationale for his response for about 2 hours. In this, I gained important lessons in Probity and Honesty. Of being responsible for ones words and actions. It is easy to wield words. But to wield words that are correct, will always be correct, needed a different level of understanding altogether – immersed in the continuity of the laws that are inherent in this Universe – the material, conscious, social and natural laws which he had discovered, or realized. I decided to never write on simplifying his metaphysics again, short of that kind of authority.

Encouragement to understand was always at hand, but never a request for the same. Jarring reminders were infrequent. Once, when having lunch, he suddenly looked up at me and with those piercing eyes said, 'इसमें खून बहाना पडता है हो! खून बहाए बिना हाथ नहीं लगेगा'. I remember the mango pickle in my mouth suddenly losing its taste. But understanding was always based on our need. So, he would say, 'आपको समझने में देर नहीं लगना चाहिए ....' and say something flattering later. That kept our spirits up. My friend Rakesh Gupta, a companion to Amarkantak during those early days, and I would joke that we were going back to our Metro City lives after being punched all over by a 90 year old boxer. But we came out the better after all those bouts. We improved. We wanted to improve.

Obeying

By the time my wife Gowri and I quit our jobs in 2010, it was clear to us that we needed to first study his work seriously. A year later, he proposed we move to Kanpur. All my reasoning and analysis told me otherwise. But he persisted with his suggestions. In my interactions with him, I witnessed the visions and images I had in me collapsing one by one, until I said, 'क्या मुझे इसीलिए जाना है, क्योंकि मेरे लिए क्या अच्छा है, वह मेरे से अच्छा आप जानते हैं?'. He only grinned at me and nodded. He insisted he travel with us and ended up coming by road all the way to Kanpur – a journey of 30 hours both ways at the age of 92. He later said he did that so we would be accepted at the new place. This was another live display of putting the purpose of the jeevan (conscious self) above that of the body. The Body and its state did not matter. The Body was not ignored, but when it came to it, the program of the Self was always above the pressures from the Body. He was beyond the symbolic. Here was the writer of what I considered the world's best philosophy/ darsana offering his own seminal book vyavhar darshan as a coffee stand for me to place the hot cup on!

I slowly began to see how he had slotted all humans around him into the seven relationships, and based on the capacity and history with that individual, he interacted with and took on certain rights and ownership for those individuals. One could see the 'जीने दो और जियो' – 'Let live and Live' truly in action. You never felt burdened around him; Nor the need to conform. There was never any unasked for advice. Advice was given, if asked for. No judgements. You could obey his directions, if you wanted to. And if you wanted to, he knew so, and responded likewise – by providing directions. I learnt this important aphorism – and tried to practice it myself. Life did start getting easier with those around me...

After Kanpur did not work out as we had hoped, we returned to Amarkantak for advice. After two months, when I asked him on our future course, he said – '#1 अमरकंटक में रहना ; #२ अछोटी चले जाओ ; #३ नानी के गाँव चले जाओ ....'. I was very, very tempted to pick the first option, but shied away from it – how could you just start living in someone's house? I told him we will live in Achoti and continue visiting him. Later, sunning outside in the backyard that winter of Jan 2013, he said 'हमने आपके लिए जो priority सेट किया वो गलत हो गया क्या?' It was the subtlest of nudges. I went back to Gowri and said Babaji is indicating we live in Amarkantak. After discussing with everyone else in Babaji's house, I replied in the affirmative. He seemed pleased and asked us to settle down in the room besides his.

Together

The timing of our arrival to live in Amarkantak too seemed right. The body was old now, 93 and it had been through the rigours of sadhana/penance, and withstood 3 operations. He needed support walking around and completing his daily chores. This presented me with important lessons in seva and becoming in tune with the needs of another's body. Every other day would see the arrival of half a dozen people. For those that came out of curiosity, he would always ask them the purpose of their visit, and then ask for tea or coffee and ensure they consumed something before they left. There was no unnecessary lingering on with niceties. For those that came out of enquiry, to learn, he would set times of the day for when they could meet. Patients came from near and far for his Ayurvedic treatment. A brief moment of reading their pulse, and he would rattle off the state of their internal organs like he had used a scanner.

There were those that underestimated him – thought he had figured something out and 'fixed' the rest of it so it fit; and those that overestimated him – thought he could 'fix' things, anything, for them. He interacted with everyone in the same Mediating, "Madhyasth" manner. Madhyasth was always in action. While we were close to him, there was no favouritism. There were no 'orders of importance'. Everyone had a role to play, an acceptance for the same, and a capacity to do so. He engaged with them based on this. The responses were succinct; digital, even. But it had the warmth of affection. One moment he was like a loving grandfather lying down during those oil-maalish sessions, the next moment he could be sitting up and grab you by the intellectual throat. Whatever he knew, was alive, it continued to live, belying the decaying body. He was fast. Demanded things to be done fast, so that our speed improved. The bathing exercise could leave you sweating because of the pace he would demand during the process. Questions were welcome even at 2 am. Anything for knowledge.

We saw a doting father & grandfather, an accomplished doctor, a pleasing human, a caring friend, an authoritative seer of the world, a knower of the ultimate truth, all these roles fulfilled in the same human. He ensured everyone at the table would have what they needed during meals, and always waited until they completed eating before getting up. I saw ministers, the powerful, famous scientists, ordinary folk, youngsters come and go, and each interaction would be launched into with the same degree of sincerity. It could also result in a verbal beating at times. Once they left, he would say, 'आगे उनको कभी याद आएगा की एक आदमी ने ऐसा भी डाँट कर भगाया था। उससे उसका पात्रता विकसित होगा'. And therein lay the sense of his being 'digital'. His knowledge, the realization enabled him to see the consequence of every action of his in a fleeting moment, and that was

the sole deciding factor for his behaviour. Every move always had an underlying natural law, a niyam. This niyam was then blended in the social and cultural mores of the time as it was expressed in behaviour.

October 2013. I sat with him for what I thought was the grand finale sitting. I had patiently worked for 2 years on a set of pertinent enquiries and readied the video camera and recorder. The drubbing started within a few seconds and lasted the entire week. Every time, he would coax me to move ahead and ask questions and give me a painful drubbing. We went through 200 points – extracted from Madhyasth Darshan. At the end of it, I felt totally vanquished. I felt I knew nothing beyond words and logic. He had made me see the end of logic. When I asked him, 'यह जो आप मेरे साथ कर रहे हैं, यह करुणा है?' "नहीं! यह कृपा है" – he responded. One could see Dheerta, Veerta, Udarta, Daya, Krupa, Karuna in action.

When it got too much to handle sometimes, he would lie down saying he is tired and then ask me with affection, 'ज़्यादा तो नहीं हो रहा है? ज़्यादा हो रहा है तो बोलो, हम बंद कर देंगे'. We persisted through nevertheless, until it was vijay-dashmi day...all the heads of that proverbial demon Ravana had to roll. The journey that he had scripted, from 'demon-like' human living in animal-consciousness to human-consciousness was probably just beginning for me. By now it was clear to me that he inhabited a different plane of consciousness from which the same world that I perceived appeared differently, with more meaning.

If I were to sum it up, we gained lessons in:

- The Cognitive plane – the possibilities of Cognition, the beauty of imaging and logic & its limits. What lay beyond.
- The Intellectual place - Of probity & honesty. Simplicity & fearlessness
- The Behavioural plane - Of responsibility & duty. Letting others be. Love.

We became a part of the family. Everything was provided for. We had a room to stay; sumptuous meals, were given medicines and imparted teaching when asked for. There was nothing I could give back to him – other than replicate what he knew & lived and propagate it forward.

The Departing

A gradual decline in the body and it stopped breathing on 5th March 2016. The physical presence no more, the memories are still fresh, I try and piece together the 50 odd years still left to live this life, the 10 years I knew him for and the 3 years lived with

him. I sometimes wish I had met him when he was younger. But nature has its own pace. We can't 'fix' existence. It is already fixed in some sense. And 'dynamic' in the human sense.

This gets me thinking on what we need to keep in mind as we move ahead with this vision. Babaji was straightforward. There was nothing hidden. If he had seen something, he said he had. If he knew something, he said he knew. If he didn't, he didn't. There were no in-betweens. With knowledge comes humility. This is something I strive to remember, along with the living in coexistence adage – 'letting live and live' – no impositions on anyone. Free of individualism and communalism. These are perhaps some of few things those of us on this path need to maintain in our practice.

In 2008, he once said, 'हमने अपने आप को minimum beautiful declare किया है। Maximum beautiful होने के लिए आपके पास जगह है.' To eulogise him would thus put him beyond reach. 'हमारा ज्ञान replicate होना चाहिए...' And what a 'Minimum Beautiful' it was! I too want it ... I once asked him back in January 2007, 'क्या साक्षात्कार करने के लिए मुझे आपके सामने, अनुभव के रोशनी के सामने रहना पड़ेगा?' He said, 'नहीं, पुणे में भी रहकर हो सकता है।' After a brief pause, he then says. 'अब तो हम आपके स्मरण में आ चुके हैं। अब जहाँ भागना है, भागो!!' We burst out laughing.

And so it is. There is no place left to run. There is no place outside of this Existence, and its laws. The niyam. This is what is left to study, practice, realize and propagate. 'क्योंकि सुधरना है। और करें भी क्या?'

Shriram Narasimhan

Amarkantak, September 2016.

A New Reference for Human Thinking

Shree A. Nagraj (1920-2016), who we used to affectionately call "Baba", breathed his last on the morning of March 5th 2016 at his home in Amarkantak, surrounded by his disciples and family members.

I still get a lump in my throat when I recount my first meeting with Baba ji at Amarkantak in November 2004. I was accompanied by my wife Priyanka and our four years old daughter Gunjan. He was resting on a divan in that quaint little dharmashala opposite Narmada Temple. I mumbled my introduction, adding how happy I was seeing him in person. He said, "Human beings have been trying to find trust ever since they occurred on this Earth. I discovered something through sadhana by which I have become rooted in trust, and I can teach you that." Something shattered inside me on hearing this, and I wept silently, while he continued with his narration... I had found my teacher. I surrendered to his purpose, his vision, and his program even without understanding a word of what he was saying that day. There was no point of my shedding tears over shattered ego any more, I decided. Rest of my story is about my trials of grasping what he had to teach.

There is no mystery in existence, he would say. Existence is orderly and harmonious as coexistence, and it can be studied, understood, realized, and it is upon realization that human beings can produce evidences of knowledge in their living. Knowledge is the calling of every human being. Every human being thirsts for knowledge, which can only be quenched through meaningful education. He presented himself as living evidence, and that was his authenticity. He taught about the order and purpose in existence with this authenticity. He gave logical reasoning to explain his realization in existence. He said, realization can be described in words. Going on to say that realization is the only thing that is worth describing. What else do you want to use words for? It soon became clear that logic was not enough to grasp what he had to say. Then what? What do I have that can grasp what he is saying, to which I feel so profoundly attracted? "Use your imagination" – pat came the answer! Imagination is what distinguishes us humans from animals. Imagination is the prior form of knowledge. Imagination can expand and resonate with reality, which results in its own fulfillment, its own transformation. Thus far in human history, humans used

imagination only for materializing ideas. Now use imagination for its own fulfillment. There is no need of stilling the imagination through some meditation or chanting. Nor is there any point in letting it loose for fancies. Imagination can be guided by the use of definitions. Definition is the set of words that indicate a reality in existence. One who has realization (or the teacher) defines the realities and guides imagination of seeker (or the student) triggering a progression towards awakening. Language is from tradition, but definitions are mine! - He would claim. Each human being has the potential of awakening the latent faculties of their consciousness, by way of education or study. It is simplicity itself.

This simplicity can be deceptive! For it's not that you listen to the definitions once and become awakened the same instant! Why not!? The reason is, he said, this proposal is alternative of whatever has been thought and done in human history thus far. Humankind has thought and done only on the lines of Idealism and Materialism – which could not be adequate for fulfilling imagination or freewill in human being. "My presentation is a new reference for human thinking." – He clarified his stand and remained firm on it until his last breath. You don't understand it until you suspend your prior notions and pay full attention to what is being said here. You need to pay attention for study, the teacher commanded! Upon realization, attentiveness becomes natural. But how does one let go of one's prior notions or hang-ups? If my prior notions are whatever has been thought and done in human history until now, then isn't that all who I am? He would counter – "No. There is more to human being than these incorrect and incomplete notions, which are nothing but illusions. Human beings have a natural expectation for order and harmony, which is their thirst for knowledge. Study and practice under the guidance of a teacher instills understanding which results in one's getting over those incorrect notions." Study is not a lonely pursuit. It is an alive process; it is an affirmative process, with active involvement of both teacher and student, which results in student's accomplishing integrity in thought, word and deed – like the teacher. The process of study results in building an integral view or concept of existence as an order in student – thereupon realization becomes imperative, which forms the basis of living with authenticity, as humanness. Humanness, he said, is the religion of all human beings. All human beings are of one race. In this way he defined what it is to be a human - taking a position that there is nothing higher and nothing more dignified than human existence - as human centric contemplation based on realization in existence, and thereby he postulated and demonstrated universal humane conduct - comprising of values, character and ethics - calling it "Madhyasth Darshan".

There was a sense of urgency in his appeals. He would hold human illusion as the root cause of Earth's condition with climate change, global warming, pollution, terrorism, and fragmentation in society. He was unsparing with his pointed critiques of both Vedic thought and Science, seeking no allegiance to rebels of these thoughts either, while very precisely acknowledging their contribution in humankind's journey towards its awakening. He said what he had to say, with his own definitions, and lived true to his own words.

Study, he used to say, is an "un-wounding process". You don't need to do any excesses or exhibit bravado for doing this study, like leaving a job or practicing an austere life of renunciation or becoming an ascetic nomad. Understand first, Do after that. Take your family along. Fulfill your obligations. His message is about leading an integral life that is universal and therefore inclusive. You don't need to "build" relationships. You need to "recognize" purpose of relationships in which you already are. The world is not an illusion. It is real. It is permanent. It has stability. It has definiteness. Study is a natural and incremental progression to transition from animal consciousness to human consciousness. There is no overlap between animal consciousness and human consciousness. These are two planes of being. All statuses of animal consciousness have a path of incremental progression to awakening or human consciousness. Much to the chagrin of many of his followers, he wouldn't give any toe-space between the two levels of consciousness, or concede any width to this transition, or allow anyone to do any kind of alteration or adulteration to make his message more palatable to crowds! The transition in consciousness, he would say, is irreversible. There is no way of forgetting that which you have understood.

The next generation is always going to be ahead! He used to say – "My model of living out this understanding is the minimum beautiful! That which I understood through sadhana, you can understand through study. Once you have understood, your imagination would further it and result in ever more beautiful expressions of this understanding! Mine in only the minimum beautiful!"

He didn't make anyone heir to his legacy, but only offered his discovery as a gift to all humankind. While he declared himself to have understood existence and being a living evidence of understanding, he denied being a certifying authority for understanding of others. He taught us, supported us while we practiced walking in his footsteps, then encouraged us to take responsibility for ourselves, and do a self declaration of awakening, the way he did.

What next... Should we all go home now, as the class is over and the teacher is gone? Or complete our education by walking resolutely on the path the teacher has shown? I am for taking things to closure. So is Priyanka, my wife. So are many others... What about you?

Rakesh Gupta

Bangaluru

Shraddhanjali to Great Soul

I got introduced to Jeevan Vidya in Jan 2005 by Ganesh Bagaria ji. Initially, I was skeptical about the contents and felt that it was also yet another "solve all" kind of theory. However, as days progressed, I was more and more convinced that this is what I was searching for and I am sure many people like me also need this content. When Ganesh ji told me that the propounder of the content Shri Nagaraj Baba is living and very much available for ordinary people to meet, I had the curiosity to meet him. I met Shri Nagaraj Baba for the first time in Kanpur, during 2006 Sammelan. By that time I started conducting mini shivirs of 3-4 days in Telugu/English. I was introduced to Baba ji by Archana ji and Ganesh Ji. They introduced me so nicely that Baba asked me to sit beside him and said, "अच्छा लग रहा है क्या?" I said," बहुत अच्छा लग रहा है मगर some words are difficult to understand in Hindi." Then immediately he said, "परिभाषा को पकड़ना है भाषा को नहीं, शब्द एक माध्यम है, हमें वस्तु को समझना है।" I was not sure about what he said at that time but later it became very clear and it helped me a lot.

I met baba ji next time in 2009 in Hyderabad. Luckily IIIT got the opportunity to organize sammelan in that year. During sammelan, in one of the Goshthis, Babaji was answering the questions of audience. I did not want to ask any question, I just wanted to feel his presence. He asked everybody, "कुछ अच्छी बात बताओ", then, I told him that I started reading his books. Immediately he asked me "कितना समझे हो और कितना जी रहे हो?" I was totally shocked. Then he asked me, "और कुछ अच्छी बात बताओ." I could not speak anything after that then he only told me, "जीने पे ध्यान देना." And in another goshthi I asked him, "Can we take shivirs while we are in the learning stage?" Somebody sitting very near to baba explained to him the same in different words. i.e., "without understanding fully, can we teach this" for that baba became very angry on me and said, "दिमाग में गोबर भरा है।" And later he said, "बेटा जीने पे ध्यान देना है। किताब पढ़ना और शिविर लेना

अध्ययन नहीं है। शिविर से माहौल बन सकता है, असल बात तो जीने में है."These words of Baba left indelible mark on me.

At many other occasions Baba used to call me as सोनी. I was curious to know why he calls me as सोनी. Ganesh ji told me that because I am from Goldsmith community, baba must have associated my name with सोना. In another occasion baba told, "वेतन भोगी का उद्धार नहीं होगा।" These words of baba disturbed me a lot. Later on another occasion, he said," वेतन भोगी साक्षात्कार-बोध तक पहुँच सकता है पर अनुभव शेष रह जाता है, परन्तु प्रेरक बन सकता है।"

I had the opportunity to spend 3 days in Amarkantak and got the chance to interact with baba for slightly longer time. Once again he re-iterated, "जीने पे ध्यान देना, सही रास्ता को प्राथमिक बनाना पड़ेगा तब ही पार पाओगे."

Contents of Madyasth Darshan which attracted me most:

Existence is co-existence. अस्तित्व सह अस्तित्व है।

This fundamental truth attracted me so much. यह बात जितनी बार भी सुनता हूँ मैं आश्चर्यचकित रह जाता हूँ। एक व्यक्ति इतने बड़े सच को कैसे देख लिया! उतना ही नहीं उन्होंने हम सबको आश्वस्त किया कि हर मानव इसे देख सकता है और जी सकता है।

ज्ञान के तीन भाग हैं। १. जीवन ज्ञान २. सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान और ३. मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान.

This statement has given me assurance that if I understand my own-self and the existence, I will be able to decide my role in the existence and lead a happy and harmonious life. After understanding this concept, I am able to visualize the connectivity between प्रयोजन और मूल्य and the same is helping me in linking one concept of darshan with the other concept. So far I could see that there is no conflict anywhere from any angle. True meaning of Adhyayan is very clear. साधना संघर्ष-मुक्त है।

हर आदमी में सुखपूर्वक जीने की आशा निरंतर है।

Understanding the above statement will help erase boundaries between countries, societies, families and also individuals. In every endeavor of mine, I look for happiness. Similarly, the other person is also expecting the same happiness. The take away from this statement for me is that my actions should not disturb anybody and the same is the testimony of my knowledge.

कल्पनाशीलता ही एकमात्र पूँजी है।

इसे हमको इस्तेमाल करना है घाट (सच या ज्ञान) तक पहुँचने के लिए।

After spending some significant amount of time reading and understanding the content of Madyasth Darshan, I got the clarity that I myself need to fix my priority. Then only I will be able to reach my goal. "I am my obstacle" and to overcome the same, I need to have utmost vigilance in my thinking and conduct. इसके साथ जुड़ी और तीन बात अभ्यास के लिए बहुत उपयोगी हो रहे है। वह है १. शब्द को सुनते रहना, २. दृश्य को देखते रहना और ३. प्रयोजन का आंकलन करते रहना। The above words gave me immense help in not only understanding the contents of Jeevan vidya but also became helpful in understanding technical contents of earthquake engineering. With the help of it, now I am able to understand the complicated topics and make them very easy and help my students with it.

Effect of Jeevan Vidya on my Personal and Professional Life

Real test of a person who is teaching values is within his/her own family. I too have faced the same issue. The topics what I discuss with utmost clarity while conducting workshops, I myself fail in implementing them at home. Especially while dealing with issues with my wife. Slowly as time progressed both of us understood that relationship is permanent whereas issues will come and go. We need not over amplify the issues or brood over the incidents and feel painful. अगला आदमी को अपने सम्बन्धी के रूप में स्वीकारना ही स्नेह है। Clarity of this statement of baba gave me immense relief that I need to accept my wife the way she is i.e. with her background and also with her shortcomings. The same thing I explained to my wife and asked her to accept me as I am, with my shortcomings and help me improve.

Relationship with parents improved a lot. It does not mean that it was bad earlier. But the nature of discussion especially with my father has changed. Feeling and expression of gratitude is always there with parents. Parents are very happy. My parents also sat in my shivirs. I spend good amount of time with my children. It gives immense happiness to share with my kids the details of why and what we are doing. ममता और वात्सल्य के बीच में क्या फ़र्क है इस बात को जान कर बहुत ख़ुशी हुई। Now as parents, I and my wife feel that we are bringing up our children with good values.

I feel workplace as my extended family and there also relationships are improving day-by-day. Atmosphere is becoming more comfortable and people participate in open discussion rather than holding grudges and work only due to compulsion. All students clearly acknowledge that atmosphere in Earthquake Engineering Research Centre is very much different from other centers in the institute. Base of this environment is Trust i.e., feeling that the other person intends for my happiness, unconditionally. अब तो ऐसा है कि research का दिशा भी बदल गया है। जो समाज के लिए उपयोगी हो उस पर ही समय व्यतीत कर रहे हैं। और एक बात मुझे लगती है कि हर आदमी समय के साथ नियंत्रित न होकर सार्थकता से नियंत्रित होना चाहिए।

Contribution to Society: After understanding the importance of the contents of Jeevan Vidya, I decided to contribute my time to spread the same. I also prepared a rough plan to taking it to every family in the state of Andhra Pradesh by 2030. With the help of many well-wishers, we could introduce HV as an essential course in over 3000 colleges in AP and Telangana. We could train around 5000 lecturers for teaching this course. Presently I am conducting refresher courses for strengthening the same.

सही रास्ते पे चलने के लिए बाबाजी का आशीर्वाद हमेशा मेरे साथ रहेगा; ऐसा मैं मानता हूँ.

Ramancharla Pradeep Kumar

IIIT Hyderabad

Encountering a Master

Everyone has somebody looking out for them, caring, guiding, chastising and trying to mould. In parallel, each one of us seeks an idol, a teacher to follow. We start seeking and idolize as soon as we start recognizing other people. As a toddler it is an older child, as a young child it is the teacher at school, as a young adult it could be anybody who casts an impression on us and so we continue to seek until the time, if and when, we find somebody who represents everything that we were seeking - knowingly and unknowingly. What happens then is although we keep looking everywhere, out of habit, everything and everybody falls short of our expectation and we are bound to accept this person, who satisfies, in every manner, the queries of our wandering imagination. This is when, I would think, one believes he or she has found a teacher, a guru. Sometimes, it is the teacher who repeatedly speaks out, shouts, chastises, guides and reminds the seeker that this is what you are seeking and are here for and it can be many years or lives before the seeker acknowledges this and gets ready to follow and live accordingly.

I saw myself as a drifter, mentally, not having any specific goals, not being fixated on anything or being particularly enthusiastic about anything. After my education I wanted to have a job, that would fairly hold my interest and pay me well enough to be independent, and so I did. I was vaguely interested in philosophy and mysticism and read a few books, not deeply pursuing either. I frequented an ashram with my family, thought of myself as a devotee but was constantly questioning everything I saw or experienced as there were many discrepancies. I wondered what it would be like to have

somebody who could explain it all - life, cause and effect, our reason to be here, what I need to do – just lay it all out for me and answer even my most trivial questions. I remember wishing for somebody who would do this for me. Then again, I wondered, why would somebody who knew it all be approachable or accessible to somebody like me?

I met Shri Agrahar Nagaraj, in June of 2008, for the first time in Bangalore. I was working in a multinational company, my workplace was close to where he was staying and so I went to meet him after work. I was familiar with his work, only briefly, through two Jeevan Vidya workshops, facilitated in English. About him, I knew very little, I was told that he had done rigorous penance and had attained enlightenment and that he was also an ayurvedic vaidya. Shriram Narasimhan, now my husband, had told me about the workshops, after attending which I had decided to know more about this knowledge. He had only briefly mentioned about Nagaraj ji and I was curious to meet him.

I went to visit him at his son's, Narahari Sharmaji's, house where he was staying. When I walked in, he was sitting on a cot, cross-legged. A lady, who I was later introduced to as Mrs Meena Agrawal, was briskly applying oil on his head, like a mother would to her son. I prostrated in front of him and felt the full import of his gaze on me, Meena Bhaabhiji continued to rub oil on his head, an action of which he seemed unaware of, he started talking to me while she whisked out a comb, combed his hair and walked away. He was also calling out to his granddaughter giving her some mundane chore to be done immediately. He did not look like an 'enlightened sadhak' to me at all. There was something though about the way in which he focused his entire attention on me, the force of his voice when he questioned me or challenged what I knew that told me he 'knew' something or that he was no ordinary person. I remember only two things from our brief conversation, both of which answered some questions, instantly changed my assumptions, defined my purpose and helped me make important decisions at that point in my life (I didn't know all this happened within me then, I know this now). Firstly, he defined the meaning of marriage (vivah sambandh) and secondly, the meaning of generosity and favour (udaarata and upkaar).

I met him again the next day. There were various people who had studied his work and had questions for him and hearing the discussion, I must admit that I did not understand much and felt at a loss. He spoke to me and enquired after my job asking whether my job was helping people at large. I started to say, "I desire to do so but.....".

He stopped me mid-sentence, gently patted me on the head and said, "You used the right word, the desire is there, but are things happening accordingly?

A year later, I found myself at his residence in Amarkantak. Shriram and I were visiting him for a few days, in between our study sessions, part of our year-long study of his books, which we had taken up in Achoti. The books are in Hindi and I had never read anything in Hindi till then, except my school books, which were mostly learnt by-heart. There were 6 other people visiting him, all studying his work in detail and they had questions for him. They had intense question–and-answer sessions with him, a lot of discussions at the end of which he had satisfied all their questions and hence all were ecstatic and enthused. I was still grappling with everything that I was reading, hearing, trying to understand and wanting to know and was again at a loss with all the enthusiasm around. I remember wondering that these people seem to do this with ease, ask him questions, understand and feel excited. Is gaining knowledge really that easy? Will I ever be able to do it? Early one morning I decided to show my pulse to him and discuss my health. As he was holding my hand checking my pulse, he suddenly looked at me and thundered "Why aren't you happy? Last evening everyone was happy after our discussions, you did not join in our happiness, why?" I did not know what to say and was a bit miffed that he asked me this in everyone's presence. He then gently said "Language is not a barrier for you; it will be easy for you to understand. No problem at all." I began to really read the books after this.

I slowly grew in awe of him, as I saw him more, observed him, and stayed at his residence. My interactions with him were always brief. This was more due to my hesitance in asking him questions. As I got to know his work and him better I started to also see how way ahead he was, in terms of knowledge and living, from everyone I knew or had read about. He seemed fearless. He was plain speaking, direct, precise and demanded the same from everyone he spoke to. There was no pretence, secrets or show about anything in his living. There was no unnecessary politeness, formality or cajoling for anything. He was very much a family man, fulfilling all his roles. He was gentle yet fierce especially when it came to matters of justice and truth. He gave his full attention to anyone who had a genuine question and was always ready to answer. There was no scrounging in his living either. Everything was in plenty with no extravagance. He seemed at peace but had no need to smile all the time, he burst into laughter or what seemed like anger as the situation demanded. He said things as they were. He never made any personal comments or interfered in one's personal life and if he did it was to shake some deep assumption and make one think and question their

authenticity. He once asked me about my education and I said I had a Master's degree in Nutrition. He looked surprised and said "Master in Nutrition and this is the state of your health?" If I had any illusions about the importance of my education, they were immediately cleared. A claim to knowing something is always based on your own experience of knowing it and living it, not just repeating theories or findings of other people.

I found that in his presence I could not think, I went blank. At the same time I felt safe; there was no need for pretence on my part either, as I felt he knew everything and even my darkest thoughts would not surprise him. I was still hesitant to ask him questions like the others did. I could not make small talk with him either. He later showed me the reason for this hesitance. Once at a national Jeevan Vidya Sammelan (Banda, 2010), after his discourse, I accompanied him to his room, along with another person, intending to ask him if he would have something to eat or drink as I was given this responsibility. He suddenly yanked at me with his arm around my shoulder, as he would a young boy. So strong was his hold that I lost my balance and had to sit beside him. "Have you ever witnessed a scene like this before?" he almost roared at me. "You have witnessed many seats of religion, have you ever seen what you saw today?" He was referring to his talk on undivided society and universal order which was received by a varied audience, belonging to various castes, from rural and urban areas. I had not thought of it in this way until he drew my attention to it. I felt, for the first time ever, as if someone had addressed me directly, not as Gowri, not as a girl, not my physical self but my inner self. I had no answer for him. This incident shook me up and made me recognize him better. He was no ordinary sadhak or an 'intellectual philosopher'. I believed I was in the presence of a great sage from eons ago, who had repeatedly striven to know truth and reality and had achieved what he wanted. He had lived it; he truly was a seer of everything.

In another interaction, when I was slow to answer a question he had posed to me, he scolded me saying, "Which acharya is standing between you and me, that you hesitate so?" Somewhere in me I was yet to accept him as my guru, as a person who's order, direction and message I would unequivocally follow with no alternative thoughts or goals. This is also a teacher's way of showing you where you stand and how long a way you still have to progress.

A quiet evening, May of 2014, in Achoti, he was lying down and doing his exercises. I requested Shriram to be my spokesperson, as I could not gather the courage to ask him myself, and pose to him this question, "Have I been able to accept

you as my guru?" He smiled and said, "Where has that happened? No, not yet. These days nobody is able to accept a guru, it is not that easy. To accept, means to follow his every command, his direction, without question, like I did." Probably to encourage me he added, "But you are on the right track".

In the last couple of years, I have had the good fortune of living with him and his family. I had the opportunity to see him interacting with family members, students, assistants, patients, family acquaintances, random visitors and important people of society. He received everyone equally; his interactions brief or long depending on the person's need. When it came to discussing his Darshan or any questions on truth and reality, he was always ready, any time of the day or night. He never took anyone for granted. There were so many instances where he could easily have gotten his personal work done by me or Shriram, when we stayed in the room close to his, for example, when he wanted a glass of water, he would call us, as we were next door and ask us to call his daughter, Amba didi. She would come all the way from the kitchen and he would ask her to get him a glass of water. Only when we asked him, "Babaji, will you have water? Then he would say "Yes, bring it."

There have been so many lessons of life and existence that I feel I have learnt from him that no formal school could give me. What remains is for me to be able to inculcate them in my own living and help replicate them. The way in which babaji lived, his thoughts, his lifestyle, the way in which he fulfilled his relationships, the way in which he gracefully aged while receiving seva and passed away peacefully amongst family and friends, makes me want to live like him. For this, I have to think like him and for this I have to understand existence like he did. It seems a huge, unachievable task and I doubt my ability to do so, but his teachings and his memory give me hope and renews my desire and commitment.

Gowri Srihari

Amarkantak, 2016

RAISE ME UP TO ALL THAT I CAN EVER BE

On 18th February 2005, I visited Amarkantak for the first time with my friends. We had all come to Bilaspur for the wedding of Pradeep Sharma. Pradeep and his wife Mona had decided that instead of going on a honeymoon they will take some selected friends (which included me) on a pilgrimage. Pradeep had talked about Baba. Mona had spent her childhood with him and on the way we had heard many stories about his penance. At that time I was an extremely cynical man. The world, to my mind, was full of people who made big claims and never lived up to them.

In the morning of 19th, we went to Narmada temple for a bath and darshan. After this we crossed the street and entered Baba's house for the first time. I was held up for a few minutes in the temple and all my friends were already seated. When I entered, my first thought was that the room is full and there is no place to sit. I started politely walking out when Baba who was sitting on a huge bed called me and asked me to sit next to him. I found this embarrassing and said that I will wait outside. He would have none of this and made me sit next to him. From that day onwards every time I visited him in his old house he would tell me to sit next to him. Feeling very uncomfortable sitting next to him I was captivated by his knowledge and the way he spoke. I was completely mesmerized although I could not understand anything of what he said. After sometime we started asking him about Ayurveda. In only a few minutes it became apparent that we were in the presence of perhaps the greatest scholar of the subject. This started a long relationship with him where I got my father treated for cancer, he visited us in Mt. Abu and guided us on Ayurveda and many interactions. A strange thing I noticed - I called to take an appointment for showing my father for his cancer. He asked to come for three days as he needed that much time to check his pulse. Every time, every 6 months we would come for 3 days and he would see my Father's pulse every day. I have never seen or heard of him doing this with anyone else. I am not sure about the need for this for treatment but the time spent with him helped me greatly. Before showing my father's pulse I said I wanted him to answer three questions for me. 1. Will he tell me the diagnosis that he makes for my father? He replied that he transparently dictates his diagnosis of all patients in front of them. 2. Will he tell me the medicines he prescribes? He said he will do so and he anyway does not hide his

medicines. 3. Will he teach me to diagnose and make the medicines that he prescribes? He immediately called Sadhan bhaiya (who at that time I did not know) and said, “I have taught him ayurved and making of medicines. If, like him, you are willing to live with me with dedication I am ready to teach.” I was completely satisfied with his answers and asked him to bless me by treating my father. His replies reignited a hope in me for Ayurveda. Till then I believed that Ayurved was finished due to bad practitioners. This inspired me to study and work in Ayurveda and convinced me further that Ayurved could contribute to good health for whole mankind.

In one of my trips he once said that Gyan (knowledge) cannot be broken into pieces, it is whole and hence no trade of knowledge can be done. It can be given only as a boon. This shook me to my core as I was doing a very highly paid consultancy. The realization of the crime I was committing and the beauty of Gyan hit me and I started crying. Seeing me cry he put his hand on my head and blessed me. I decided never to do paid consultancy ever in my life and readily share information with everyone who came and needed it. As a token of appreciation for this boon, I posted a bronze Thali (crockery set) to him anonymously on next Gurupoornima. Many years later Amba didi (his daughter) told me that for years Baba would eat in a bronze thali sent by someone anonymously. During my first interaction with him I haughtily asked him, if he had attained Sammadhi then what of the Siddhies that one gets on its path. I was expecting him to demonstrate a few. He very matter of fact way said, 'I have attained Sammadhi and I am its proof.’ He also said that he encountered all the siddhis but was never even felt like spitting on them. "My spit was more valuable than them", he said. I have never seen him perform any miracle or seen a scientifically unexplainable incidence with him. Many of his other disciples have told of multiple miraculous incidences they have seen with him and I have no reason to disbelieve them. On my asking him about some of them he either skirted the question or gave a simple logical explanation for the same which always convinced me. Those questions he skirted, got answered when I started doing adhyayan and a couple of times he answered old questions without context suddenly. In the first few meetings with him I would endlessly argue with him until one day he mildly told me that I argue too much. From that day my argumentativeness was replaced by a calmer logic. This helped me greatly in my adhyayan and understanding what he said.

Since a very young age I had believed my grandfather (Swami Shree Ramsharan ji) as my Guru. Swamiji had told me that my Guru was someone else and he will be my teacher of higher education. I should consider him (Swamiji) as a junior teacher only.

He also warned me to follow the instructions (Swamiji was well versed with my cynical nature) given by my Guru meticulously. I realized who Swamiji meant when I was once washing Babaji's feet. Baba later told me that I am indebted to Swamiji. All other saints who I was inspired by, Baba had met at some point.

For a few years we didn't meet and in this period he or I would always speak on the phone for some work. He also called when he visited Gujrat and we met after many years. Everytime I met him I was drawn more and more towards him.There was never any pressure from him to attend a shivir or do adhyayan. Infact, for all these years I did not even know such a thing existed. In Gujrat I asked Sadhan Bhaiya what this word Madhyastha that he uses so much means. He spoke for a few minutes about Neutral Energy. I was amazed at the thought and wanted to know more. One day Baba called and said, “I want to visit Sardarshar and meet people in the University your family runs. Can you arrange it?” I was shocked and realized that if he came, no one would understand him. I also realized that if someone who is pure and knowledgeable is insulted or ignored it would be extremely detrimental for an educational institution and society at large. I then found out that a shivir takes place and decided to organize that for teachers and staff before his coming. In order to convince everyone that they must attend the shivir (conducted by Sunita didi and Surendraji Pathak) I decided to attend it myself. This was a major change in my life. The session on existential knowledge where God is described and the relationship between Nature and God was something I loved. I realized that I had finally found what I and everyone on earth had been searching for. Babaji came for the satyapan of the shivir and asked me what I thought. I said that we must be thankful for Dialectic Materialism. If mankind was not pained by it, nobody would listen to you. He was satisfied with my answer and spoke of a 30 day shivir he did in Karnataka many years back and how it had no impact on listeners. After many years he told me that there was potential in me as I was not stuck with Idealism.

A niggling thought remained that he keeps claiming that he does no wrong. He lives what he preaches and his living is the proof of this philosophy. He strongly refused to show any miracles, saying that his living is the proof. Anyone can come and evaluate if what he says is correct he once told me. I had never heard this from anyone in my whole life. Those who said it fell short in my evaluation. This for a cynical person like me was too much to accept even from someone I admired so much. I always thought that if we stay together long enough reality will emerge. In a few years I got the opportunity of staying with him for 6 months. After a few months of living with him and closely keeping a watch on him all day, I went to him and admitted that I

accept that he does no wrong and lives what he preaches. I also told him that this realization had given me two things, first that I am now liberated from the terror of the Gods (Devta) and secondly now I will not bow to miracles, only purity. This started a new chapter in my relationship with him with my accepting him as a resolved human and as my Guru. Slowly I realized that everything that I claimed to be mine now belongs to him and I have his blessings with me always. The best part was that this blessing from him was with every unit in existence. All I had read (and more, much much more) about Gurus and their greatness suddenly was manifested in front of me in this great soul. Every moment with him was a new learning. After lunch he would read the newspaper. Due to his failing eye sight he could read only the headlines. Whereever the headlines were not clear as to the content he would ask me to explain what the article was about. This forced me to read the article in a short time and synopsize for him in a few sentences. This went on for months. Sometimes he would play dumb and ask me to explain again if my synopsis was not accurate. Much later I was surprised at how quickly I could glance through articles and come to a conclusion. Many people still believe this skill of mine is due to my superior intelligence when really it is just something he taught me in the most unassuming manner possible. I am forever getting compliments for my strong memory for details. This was developed when he told me to eat Brahmi (an Ayurvedic herb known for its memory enhancing ability) which was grown by him. He made me eat it for the six months I was with him. He would see patients every day and regularly made casual remarks about them. This helped me develop the skill to understand people using small details of their behaviour. He trained me to breakup large work into small tasks, identify and monitor key variables, work with people based on trust and not manipulation (as taught by my Management education). Basically he taught me almost everything I know. I have repeatedly seen him do this with all who came to meet him and like with me never make a fuss about it. I still keep seeing new things which he taught me and I realize only now. This way of continuously creating opportunity to teach was his normal way with every individual around him. He never gave up or complained about others. There was nobody special, nor any favourites. I once told him, “You have to suffer because of fools like me.” He very matter of fact replied, "I am like this naturally, I can be only this."

An important part of this phase with him was my friendship with his other disciples like Amba Bua (his daughter) and Sadhan Bhaiya and the deep affection and guidance I received from them. Babaji asked me to be a member of the 'Manav Tirth' project. I very naively accepted not realizing what a great responsibility and honor I was

being bestowed. After a few years he proposed the University project and said that this University and Manav Tirth are one. I soon realized that this was a project that encompassed all projects that I could think of. I cannot imagine any useful project on this earth which is not part of this in making this earth heaven. Understanding and implementing this project shall be my way of attaining realization. Among all the boons bestowed on me this is perhaps the biggest by my Guru. I am incapable of planning and implementing this and hence he kept giving minute detailed instructions and then gave me the guidance of Sadhan Bhaiya. In implementation, he gave me other members of the team like Ganesh Varma. As the project unfolds further he has already indicated others who will join this. Manav Tirth is to me the physical body of my Guru and working for it gives me the same pleasure that service to his physical body did. This was his way to ensure that I do not feel alone when he leaves his physical body. One day I will see him as a Jeevan and then my understanding shall be complete. Once he asked me to do something which I thought was near impossible. However as he had ordered it, I tried but failed. He said it is better if they agree and do what I say else he would do it in his own way. The work of course is on the way to being done. This statement shook me to my core and whatever doubt I had on his word, disappeared. Now I firmly believe nothing is impossible if he orders it.

In all my years with him I have seen him get emotional only once when I asked him about his Guru, Shri Chandrashekhar Bharati. His eyes became moist and his voice choked with emotions. I aspire to achieve this devotion towards my Guru.

Every aspect of my life he has planned and taken care of. I feel completely safe. This is love, the complete mulya that all of us want to live. I am blessed that I have seen a glimpse of this. Seeing only a glimpse is due to my limitation of seeing and not from his giving which is always complete, always whole. I feel like a person who has received more than one has ever imagined and realizing that his imagination cannot think any more.

Through my interactions with him I realized that every resolved human being keeps giving always, at every moment, to everyone. This is natural to them. They cannot stop and they need to make no effort to be like this. This is what every human can be. This made me see that every unit is in harmony within itself and with every other unit. There is no conflict in existence. It is only our ignorance. Seeing him live has convinced me that every human on this earth and existence can live happily forever. Human is truly the highest unit in nature and if one Human living correctly can have such a large impact among a sea of inhumanity, imagine what will happen when all

humans on this earth are resolved. This is heaven and it is possible on this earth. It is not utopian. If one Human can do it so can all. This, to my mind, is the crux of his message and forms the foundation of 'Manav Tirth'. As he kept saying that his living is the basic minimum for every human. Generations to come will live better than me. I cannot think of a bigger blessing anyone can give to all mankind.

I don't see anything in myself that I am blessed to see this great man in person and was allowed to live with him. The only explanation is that this is what he is. He knows only to give freely always to all. This is the way all resolved humans are and will be. No matter what, their conduct will not change. I aspire to be like him in all aspects in this birth and every birth after this and serve him always. My relationship with him, like his blessings, is sashvat (forever). Through him I am now forever blessed by every unit in existence.

Himanshu Dugar

Sardarshahr, Rajasthan

My time with Baba's earthly life

My salutations at the feet of Rev. Babaji!

I came in contact with Rev. A. Nagraj's (Baba's) in a rather unusual way. This is how I remember the incident that connected me with Baba. A strange set of circumstances brought me to the Institute of Advanced of Studies in Education, IASE {D}, Sardarshahr in December 2011. During the course of several discussions with Sh. Kanakmal Dugar, Chancellor, IASE {D}, I suggested that we needed to open an Institute of Global Harmony (IGH) in Sardarshahr. He concurred and invited me to an International Seminar for Teacher Education for Peace and Harmony to be held at the auspices of IASE {D} in February, 2012, in New Delhi. There in the conference, Sh. Himansu Dugar told me about Baba, a learned man in Amarkantak, M.P., who had expressed an interest to see me. Unfortunately, after the conference, I had to leave for the US.

Fortunately, the GVM approved my proposal to initiate an IGH at Sardarshahr, where I returned in September 2012. Once again, Sh. Himansu Dugar reminded me of Baba's interest in seeing me. The idea of an unfamiliar person expressing an interest in seeing me aroused an ineffable curiosity to meet with him. In October 2012,

accompanied by Dr. Surendra Pathak, Director, Value Education, IASE, I went to see Baba at his house in Amarkantak. I saw this old man (around 93 lying down on bed, apparently due to some hip problem) attended by two of my juniors from my alma mater, I.I.T., Kanpur. Baba didn't waste any time for introduction and started teaching me Vikalpa (An Alternative). For the next 5 days he taught me regularly for 2 hours daily. While I didn't realize at the time why he chose to teach me Vikalpa, it became apparent to me in another six months that he was really preparing me to think about an alternate system of education. The realization provided a clear direction for me to work toward a paradigm shift in the education system.

In the meantime I learned more about Baba and his greatness. For 25 years, he had practiced extensive austerities of Samadhi (a state of intense meditation on the object of meditation in which one achieves direct revelation of reality) and for 2 years of Samyam Samadhi (a perfect control of mind in which a deeper knowledge of qualities of the object contemplated is received). I also learned that Baba had a vision of the reality that he penned down in 14 books on philosophy, isms, and science of Existence as Coexistence. After this finding, I considered myself very privileged to have the fortune of meeting with such an extraordinary person in my life time. Following this awareness and until his passing on March 5, 2016, I saw Baba 4 more times. His life, his vision, and his teachings became a source of continued development for planning the IGH.

My personal memories with Baba have to do with the fact that Existence has a way of connecting people who are: searching for each other for a certain purpose (in my case for a mentor), working on a common mission or a cause (in my case establishing an IGH, or thinking about common ideas (in my case my purpose in life). In the succession of people that have been my mentors, or in the Vedic sense, my gurus, Baba guided me to strive toward building a universal system for an undivided human society through education. To accomplish this feat Baba offered Vikalpa. So long as I sincerely commit to work under Baba's guidance, it would be a step in the right direction.

Around the 1994 - 2002 timeframe, I met Swami Dayananda Sarasvati, one of the greatest Vedic rishis (sages) who I call my first mentor, in relation to building a Hindu temple around Huntsville, AL. Many of the concepts about life became clear to me through his as well as his disciple, Swami Viditatmananda's discourses on Bhagavad Gita (BG) and Brahma Sutra. I must have exhibited a certain level of sadhna (some level of practice), based on which Swami Viditatmananda instructed me to lead a Gita

Vichara Group at the Hindu temple in North Alabama. We completed the 18 chapters of the BG in five-and-a-half years. Then, I had a chance to teach BG as a credit course at the University of Alabama in Huntsville as well as at OLLIE, its Continuing Education Division.

In May 1999, after a personal tragedy hit me hard, I came in contact with Satya Sai Baba of Puttaparthy. My younger brother had paved the way for me to practice devotion for a person who I'd initially detested. But, in a situation of helplessness, I gave in with Shraddha (intense faith and trust). Strangely enough, I began to find answers to my questions, such as who we are all about. I call Satya Sai Baba my second mentor. Existence provided me mentors at specific times I needed them for reasons intrinsic to me.

In around 2002-07 timeframe I began working on three books: "Who are we?" "What is our origin?," and "What is our purpose." The first book came as a result of my devotion for Satya Sai Baba that helped answer to my question "Who are we?" The second book provided some clues to our origin and I see that as a result of my quest for knowledge. For the trilogy to complete I needed my purpose in life about which I'd no clue then. The answer would come later as I've already mentioned in the introduction with the appearance of a mentor, who would guide me. Undoubtedly, Baba is my third mentor, who appeared when I needed him the most. He guided me through Vikalpa to initiate writing the final book on the unfinished trilogy, "What is our purpose?"

And now, I'd write my personal interactions with Baba and our subject of discussion. While I had a few talks with Baba on my own, I talked with Baba only in the presence of Sadhan Bhai, Ravi Kant Bhai, or Hemlal Bhai, because of Baba's hearing impairment.

On the last day of Rashtriya Sammelan in September 2015 in Buldhana, I went to see Baba for his blessing. As I touched his feet, I said, "Baba aapke marg darshan ki aavashyaktaa hai. (Baba! I need your guidance.)" "Mujhe Utreja kaa koi chintaa naheen hai, (I don't have any worry about Utreja)" he responded. I think, it was an assurance that in his view, I was on the right track.

In December 2015, with his permission, I'd arranged to interview Baba to answer some specific questions based on the situation of the world. I prepared three sets of questions and decided to have a dry run before the videographer would come. Unfortunately, Baba's disposition those days was either that of swooning or hypnagogia. For the dry run, he responded to only the first two sets. For the third set of questions, he mostly kept quiet. On the specific date, when the videographer came to

Achhoti to record his answers, Baba had been unconscious and was taken to a hospital in Raipur.

My questions to Baba were prepared in three sets with three questions in each set. During this question-answer session, Baba would continue to repeat answers in Kannada and go many times into slumber before I'd have an intelligible answer. I was lucky to get answers for the first two sets. Before I'd have time to ask questions in Set 3, we began our journey to Achhoti anticipating that I'd have a chance to continue with the remaining questions there. But that didn't happen. Ravi Kant helped me decipher Baba's answers to the questions. The questions and the answers follow:

Set 1

The state of the world with the Haves, Have-nots and a degraded earth and its environment is well known.

Question 1: What do you think the world needs the most today?

Answer1: Assurance to live.

Question 2: Why is this important?

Answer2: To live peacefully.

Question 3: How do we make this happen?

Answer3: Through the study of human awareness.

Set 2

It seems that there is an existential order in all orders of existence, namely, matter, plants, and animals besides human beings, who seem to violate this order.

Question 1: What is a human being?

Answer1: An animal that possesses imagination and freedom in action.

Question 2: How is a human being different from the other orders of existence?

Answer2: He doesn't fulfill the purpose for which he is born. Discovery is made by one person, and the rest follow.

Question 3: What is the purpose of human life?

Answer3: To experience coexistence. To achieve excellence in every pursuit!

I was glad to receive the answers to the two sets.

On one instance, I asked Baba that there are three distinct states in manifestation: Srishti (creation), Sthiti (preservation or maintenance), and Pralaya (destruction). And that Baba had written only for Sthiti. Baba's response was "Baki janane ki aavashyaktaa naheen hai."("There is no need to know the others.") Ravi Kant then showed me a reference to Srishti and Pralaya in Baba's book, "Samaadhaanaatmak Bhautikavaad."

I had several other small meetings with Baba with some interesting questions. These covered a range of topics from faith, to particle physics and an instant of his transmigration to at least one other habitable planet. His answers remain with me as his cherished memories.

Laj Utreja

United States of America